उम्मीद जताते न्यायिक एवं आर्थिक फैसले

सिद्धेश्वर

उम्मीद जताते
न्यायिक
एवं
आर्थिक फैसले

(सिद्धेश्वर से साक्षात्कार)

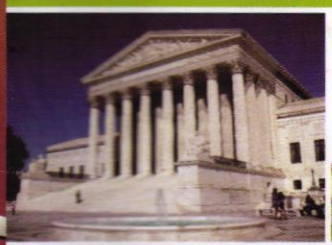

संपादक व रचनाकार : सिद्धेश्वर

उम्मीद जताते
न्यायिक एवं आर्थिक फैसले

(रचनाकार से साक्षात्कार)

सिद्धेश्वर

प्रकाशक
सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन
दिल्ली-92

उम्मीद जताते न्यायिक एवं आर्थिक फैसले

(रचनाकार से साक्षात्कार)

रचनाकार	:	सिद्धेश्वर, राष्ट्रीय महासचिव, राष्ट्रीय विचार मंच 'दृष्टि', यू. 207, शकरपुर, विकास मार्ग, दिल्ली-92, दूरभाष-011-2253065,
उत्तरदाता	:	सिद्धेश्वर, संस्थापक-संपादक, 'विचार दृष्टि', दिल्ली पूर्व अध्यक्ष, बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड,पटना 'संस्कृति', ए-164, ए.जी. कॉलोनी, शेखपुरा, पत्रा.-आशियाना नगर, पटना-25, मो.-9431037221, 9472243949
प्रकाशक	:	सुधीर रंजन, सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन, 'दृष्टि', यू. 207, शकरपुर, विकास मार्ग, दिल्ली-92, दूरभाष-011-2253065, मो.-9811281443,
(c)	:	सुधीर रंजन, प्रकाशक, दिल्ली
मुद्रक	:	लोकवाणी प्रिंटिंग प्रेस, पटना 29, शशि पैलेस, नाला रोड, पटना मो॰: 9801772460
शब्द-संयोजन	:	अमित कुमार,सुशीला सदन,रोड नं.-17,राजीव नगर,पटना
छायांकन	:	डॉ. शाहिद जमील,सी-84,बैंक रोड,मस्जिद के निकट,पटना-1
प्रथम संस्करण	:	वर्ष 2018
पृष्ठ सं.	:	304
मूल्य	:	आठ सौ रुपए (Rs Eight Hundred Only)

Ummid Jatate Nyayik Awam Arthik Faishle :
Collection of question-answer during interview of Sidheshwar.
Edited by Sidheshwar

Price Rs. 800/-

सिद्धेश्वर : एक नज़र

पूरा नाम : सिद्धेश्वर प्रसाद
संक्षिप्त नाम : सिद्धेश्वर
पिता का नाम : स्व. इन्द्रदेव प्रसाद
माता का नाम : स्व. फूलझार प्रसाद
पत्नी का नाम : श्रीमति बच्ची प्रसाद
जन्म तिथि : 18 मई, 1941
जन्म स्थान : ग्राम+पत्र.-बसनियावाँ, भाया-हरनौत, जिला-नालंदा, बिहार(भारत)
शैक्षिक योग्यता : सन् 1962 में पटना विश्वविद्यालय से श्रम एवं समाज कल्याण विषय में स्नातकोत्तर
तकनीकी शिक्षा : सन् 1973 में भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग से एस.ए.एस. (Subordinate Accounts Service)
सरकारी सेवा : भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग के कार्यालय महालेखाकार, राँची एवं पटना में लेखा परीक्षक से प्रोन्नति प्राप्त करते हुए वरिष्ठ लेखा परीक्षा अधिकारी के पद पर छतीस वर्षों तक सेवा प्रदान करने के पश्चात् सन् 2000 के 31 मई से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेकर वृहतर एवं व्यापक समाज व राष्ट्रहित में सार्वजनिक जीवन में प्रवेश।
सार्वजनिक सेवा : 1.भारतीय रेलवे के रेलवे हिंदी सलाहकार समिति के सदस्य
2. बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के राज्यमंत्री का दर्जा प्राप्त अध्यक्ष पद पर 15 सितंबर, 2008 से 14 सितंबर, 2011 तक कार्यरत।
अभिरुचि : समाज व साहित्य सेवा तथा पत्रकारिता, राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए संघर्षशील तथा रचनात्मक लेखन से जुड़ाव।
रचनाएँ प्रकाशित :1.सामाजिक-'आरक्षण','कल हमारा है', 'समता के सपने', 'आत्ममंथन' बिहार के कुर्मी (निबंध संग्रह) एवं बिहार के कुर्मी (निर्देशिका)
2.स्मृति-'यादें'(भोला प्र. सिंह 'तोमर' की स्मृति में)
3.हाइकु काव्य संग्रह-'पतझड़ की सांझ', 'सुर नहीं सुरीले', 'कवि और कविता'

4. सेन्र्यु काव्य संग्रह-'जागरण के स्वर', 'बुजुर्गो की जिंदगी'
5. काव्य संग्रह-'यह सच है'
6. जीवनी- 'एक स्वप्नद्रष्टा की अंतर्कथा',
'डॉ. मोहन सिंह: एक तपस्वी मन'
7. शैक्षिक-'समकालीन यथार्थबोध' एवं 'समकालीन संपादकीय'

जीवनी-साहित्य : 1.'सिद्धेश्वर:व्यक्तित्व और विचार'-प्रो. रामबुझावन सिंह
2.'सिद्धेश्वर:अंकों से अक्षर तक' डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार

रचनाएँ प्रकाश्य:साक्षात्कार-1.'हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर', डॉ. बलराम तिवारी द्वारा संपादित
2. 'इंसानियत की धुँआती आँखें'
3. 'राष्ट्रीय राजनीति'
4. 'उम्मीद जताते न्यायिक एवं आर्थिक फैसले'
5.'वैश्विक कूटनीति'
राजनीति : 'आम आदमी की आवाज'
आत्मकथा-'जीवन रागिनी' तथा हाइकु में 'मेरी जीवन-यात्रा'
संस्मरण-1.'हमें अलविदा ना कहे' 2.'जो जीवित हैं हमारे जेहन में'
संपादन- 'राष्ट्रीयता के विविध आयाम' दो भाग में

सम्मान : देश के विभिन्न सामाजिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संगठनों द्वारा पुरस्कृत एवं सम्मानित।

विदेश यात्रा : 13-15 जुलाई, 2007 को अमेरिका के न्यूयॉर्क में आयोजित 8वें विश्व हिंदी सम्मेलन में बिहार सरकार की ओर से भारतीय प्रतिनिधिमंडल में शामिल होकर सम्मेलन के शैक्षिक सत्र में 'वैश्वीकरण, मीडिया और हिंदी' विषय पर आलेख पाठ एवं परिचर्या में सक्रिय भागीदारी।

संप्रति : राष्ट्रीय महासचिव, राष्ट्रीय विचार मंच, दिल्ली
संस्थापक संपादक, 'विचार दृष्टि', दिल्ली

संपर्क : 'दृष्टि', यू. 207, शकरपुर, विकास मार्ग, दिल्ली-92
दूरभाष: 011-22530652, मो.-9431037221
'संस्कृति' ए-164, पार्क रोड, ए.जी. कॉलोनी, शेखपुरा,
पत्रा.-आशियाना नगर, पटना-800025,
मो.-9431037221, मो.-9472243949

अनुक्रम पृष्ठ

सिद्धेश्वर : एक नजर.....3
अनुक्रम.....5
समर्पण.....6
प्राक्कथन.....7
अभिमत: (1)अवधेश प्रसाद सिन्हा.....20
(2)डॉ. नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम'.....24
शुभाशंसा: (1)डॉ. राम निवास 'मानव'.....31
(2)डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार.....37
(3)डॉ. लखन लाल सिंह 'आरोही'.....41

प्रथम अध्याय

न्यायिक प्रश्नोत्तर.....45

द्वितीय अध्याय

आर्थिक प्रश्नोत्तर.....219

तृतीय अध्याय

प्रष्टाओं का परिचय

(1) श्री अवधेश प्रसाद सिन्हा.....299
(2) श्री कामेश्वर प्रसाद सिन्हा.....299
(3) श्री नागेश.....300
(4) श्री घनश्याम मिश्र.....300
(5) श्री अखिलेश पाठक.....300
(6) श्री सतीश कुमार.....301
(7) डॉ. करण कुमार.....301
(8) आचार्य रामविलास मेहता.....302
(9) श्री कृष्ण प्रसाद 302
(10) श्री के. एन. पी. सिन्हा.....303
(11) श्री नंदलाल सिन्हा.....303
(12) श्री जयप्रकाश.....303
(13) डॉ. रविन्द्र प्रसाद यादव.....304
(14) श्री ध्रुव प्रसाद 304

समर्पण

ममतामयी माँ फूलझार प्रसाद, जिनकी सरलता, सहजता, संवेदनशीलता,
मृदुता और सदाशयता मेरे जीवन पर पूरी तरह छाई रही है, जिनका
मासूमियत चेहरा मेरी नजर के सामने स्पष्ट रूप से तैर रहा है
और वह चेहरा मुझे एक अजीब आश्वासन दे रहा है,
जिनका अभाव मेरे जीवन में आज भी खटकता है,
क्योंकि उनका संस्कार पाकर मैं बड़ा हुआ उसके
बड़े पुत्र के रूप में, पढ़ी लिखी नहीं होने पर
भी जिनके हृदय की कोमलता और
सदाशयता पढ़ी-लिखी स्त्रियों से
किसी भी तरह कम नहीं थीं,
जो तन मन से स्वस्थ
रहते हुए भी
छोड़ गईं
अपने लोगों की दुनिया में अपना कोमल चेहरा, मृदुल हँसी
और सभी लोगों के प्रति अपनापन का वह भाव, जो
आज कहीं नजर नहीं आता, जिन्हें मैं आजीवन
कभी नहीं भूल पाऊँगा, की स्मृति को
नमन करते हुए यह कृति
सादर
समर्पित।

- (सिद्धेश्वर)

प्राक्कथन

सर्वोच्च न्यायालय ने जिस तरह पिछले बीस वर्षों से अदालत में लंबित मामलों को लेकर सभी सरकारों पर प्रश्न चिह्न लगाया है उससे सवालों के घेरे में हर राजनीतिक दल अपने आप ही शामिल हो गया है। भले ही नेता कुछ कहें, पर उनके दिलों में क्या बसता है, यह सर्वोच्च न्यायालय की कठोर टिप्पणियों के सामने आ ही गया है। सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ ने जिस तरह से देश की संसद और विधायिका को आड़े हाथों लेते हुए धर्म के राजनीति में दुरुपयोग से जुड़े मामलों पर सवालों की लंबी सूची रखी है उससे नेताओं की पोल खुल जाती है। आज हमारे नेताओं और सरकारों को इस बात की आदत हो गई है कि किसी भी विवादित मुद्दे को तबतक खींचा जाए जबतक अदालत जाकर उसके बारे में स्पष्ट आदेश न ले आए। चूँकि यह विभाजन राजनेताओं को अपनी राजनीति को मजबूत करने का काम भी करता है तो किसी भी दल को इस बात में कोई दिलचस्पी ही नहीं होती है कि इस प्रक्रिया पर कोई रोक लगायी जाए।

सर्वोच्च न्यायालय ने अपने हालिया फैसले में धर्म, जाति, भाषा और समुदाय के नाम पर वोट माँगने को गैर-कानूनी एवं दंडनीय घोषित कर न केवल जात-जमात की राजनीति करने वाले नेताओं को कड़ा संदेश दिया है, बल्कि विसंगतियों के ढेर पर बैठी राजनीति में भी शुचिता स्थापित करने की कोशिश की है। हकीकत में स्वार्थ के लिए नेता जाति विशेष का मसीहा बनने का ढोंग करते हैं। उनकी ऐसी रीति-नीति की वजह से ही देश के काउ बेल्टवाले इलाकों की पहचान जातिवादी राज्य के रूप में बनी है। राजनीतिक व समाजशास्त्री डॉ. रजनी कोठारी ने भी अपनी पुस्तक 'कॉस्ट पॉलिटिक्स इन इंडिया' में इसकी पुष्टि करते हुए स्पष्ट लिखा है - 'काउबेल्टवाले इलाकों में लोकतंत्र की जगह जातितंत्र कायम है।'

दरअसल, व्यवस्था के जातीयकरण ने सत्ता में दुबारा वापसी की इस हद तक गारंटी दे दी है कि सभी सियासी दल जातिवादी राजनीति को खाद-पानी मुहैया कर रहे हैं। धर्म और जाति की घटिया राजनीति की तरह भाषा को लेकर भी शिवसेना तथा द्रमुक राजनीतिक दलों द्वारा देश तोड़क राजनीति की जाती है। ऐसी विषम परिस्थिति में सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के मद्देनजर अब कोई भी राजनीतिक दल चुनाव जीतने के लिए धर्म, जाति, भाषा और समुदाय के नाम पर वोट माँगने की हिम्मत नहीं जुटा पाएगा।

इसी प्रकार भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड (बीसीसीआई) की बागडोर भारत के नियंत्रक महालेखा परीक्षक के पद पर रहे विनोद राय की अध्यक्षतावाली चार सदस्यीय प्रशासक समिति को उच्चतम न्यायालय ने सौंप दी, उससे जनता और खिलाड़ियों की आशाएँ बढ़ी हैं। सर्वोच्च न्यायालय के इस अभूतपूर्व कदम और नई इबारत को ऐतिहासिक और खेल जगत को नई दिशा देने वाला कहा जाएगा और इससे क्रिकेट खेल में अब पारदर्शिता आएगी।

आए दिन देश और समाज की बिगड़ती आबो-हवा पर जब न्यायपालिका सरकारों से सवाल पूछती है तो यह आवश्यक हो जाता है कि सरकार राजनीतिक दलों के अनैतिक और असीमित कारनामों पर नियंत्रण लगाए। साथ ही चुनाव आयोग भी अनैतिक भ्रमित करने वाली और जनभावनाओंवाली कार्रवाई पर नियंत्रण कर सकता है कारण कि उससे ही देश की दिशा और प्राथमिकता को बदलने का काम हो सकता है। उदाहरण के तौर पर तमिलनाडु राजनीति से शुरू हुए चुनाव के वक्त राजनीतिक दलों द्वारा अपने-अपने घोषणापत्रों में लोक-लुभावन वादों को रोकने के लिए ऐसी व्यवस्था बनाने की जरूरत है जिससे आम जनता राजनीतिक दलों के घोषणा पत्रों को चुनौती दे सके, क्योंकि अब ऐसे लोकलुभावन वादे उत्तर भारत में भी खासतौर पर 2017 में पाँच राज्यों के विधान सभाओं के चुनावी घोषणापत्रों में लैपटॉप, प्रेशर कुकर, टीवी, सस्ते चावल-गेहूँ, चीनी आदि बाँटने की प्रवृत्ति देखी गयी, जो प्राय: व्यावहारिकता से दूर होती है। तरह-तरह की चीजें मुफ्त में बाँटने का वादा करने वाली राजनीति को देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि यह वह राजनीति है जो देश को सबल-सक्षम और आत्मनिर्भर बना सकती है। मेरा ख्याल है कि राजनीति के सही पटरी पर आने में जितनी देरी होगी देश के आत्मनिर्भर बनने में उतना ही विलम्ब होगा। इसलिए न्यायपालिका से इसमें अपेक्षित आदेश दिए जा सकते हैं, क्योंकि वही ज्यादा कारगर साबित होंगे।

हालांकि इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता है कि कभी-कभी न्यायपालिका से भी निराशा हाथ लगी है। नब्बे के दशक में जिन लोगों को उपहार की भयावह त्रासदी की याद होगी, दशकों बाद आए इंसाफ से मायूस ही हुए होंगे, क्योंकि इसके लिए दोषी अंसल भाइयों में से एक को मात्र एक साल की जेल की सजा सुनाई गई जबकि दूसरे को ज्यादा उम्र की वजह से राहत दे दी गई है। आखिर तभी तो पीड़ित परिवारों की ओर से न्याय की वेदी पर इंसाफ करने वालों से कुछ ने तो यकीनन कहा कि

उनका न्याय-प्रक्रिया से भरोसा उठ गया। उपहार त्रासदी पीड़ित संगठन की अध्यक्ष नीलम कृष्णमूर्ति तो यहाँ तक कह गई कि इससे तो बेहतर होता कि 'उसी दिन अंसल भाइयों को गोली मार देती, जिस दिन मेरा बेटा मारा गया।'

आपको याद होगा 13 जून, 1997 को दक्षिण दिल्ली के ग्रिन पार्क इलाके में उपहार सिनेमा में फिल्म 'बार्डर' के प्रदर्शन के दौरान हुए अग्निकांड में 59 लोग मारे गए थे और करीब 100 लोग जख्मी हो गए थे। एक तो दो दशक के बाद फैसला आता है और वह भी नाउम्मीद कर जाए तो न्यायपालिका पर भरोसा कैसे बनेगा। वैसे भी कहा गया है-'Justice delayed, Justice denied' क्या यह कहावत इस मामले में चरितार्थ नहीं हुआ है? इसी संदर्भ में मैं यह भी कहना चाहूँगा कि न्यायिक फैसलों में बेवजह देरी का समाज पर कुप्रभाव पड़ता है। विलंब की वजह से दंड का स्वरूप पीड़ित पक्ष के लिए सिर्फ सांत्वना भर रह जाता है। खासतौर पर आतंकवाद से जुड़े मसलों पर न्याय में देरी से अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बेवजह बहस होती है, यह आतंकवाद परस्तों को प्रश्रय देने का काम करती है। किसी भी आतंकी घटना के बाद इसे अंजाम देने वालों को रंगे हाथ गिरफ्तार किए जाने पर न्यायिक प्रक्रिया को द्रूत गति से निपटाने पर जोर देना चाहिए। इससे अपराध में निश्चित तौर पर कमी आएगी। लंबी प्रक्रिया से पीड़ितों का मनोबल टूट जाता है।

सर्वोच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने यह भी कहा कि जो लोग मतदान नहीं करते हैं उन्हें सरकार से सवाल पूछने या दोष देने का हक नहीं है। आपने यह भी देखा कि निवेशकों के हजारों करोड़ रुपए बकाया मामले में सहारा इंडिया और उसके मुखिया सुब्रत राय के प्रति सर्वोच्च न्यायालय का सख्त रूख उम्मीद जगाता है कि कानून की घर देर है अँधेर नहीं। अपने संपर्क और संसाधनों के बल पर मेरे ख्याल से नियम-कानून को अक्सर ठेंगा दिखाते रहे सहारा और सुब्रत राय को संभवत: पहली बार न्यायपालिका से सख्त सबक मिल रहा है। हालांकि अब भी वे तर्कों-कुतर्कों के जरिए कानूनी छिद्रों की तलाश की कवायद से बाज नहीं आते।

दरअसल, सुब्रत राय का मामला अब एक टेस्ट केस बन गया है जिसके तार्किक परिणति तक पहुँचने से एक मिसाल कायम होगी कि निवेशकों या बैंकों को चूना लगाने वाले यों ही बच कर नहीं निकल सकते। ऐसे सभी मामलों में ऐसी ही सख्ती की उम्मीद गलत नहीं होगी।

इसी प्रकार हाल में सर्वोच्च न्यायालय ने तब एक बड़ा सबक दिया

जब उसने 1991-96 के दौरान मुख्यमंत्री रहते जयललिता को भ्रष्टाचार के लिए प्रेरित करने और साजिश रचने के लिए शशिकला और दो अन्य लोगों को जेल का रास्ता दिखा दिया। इस देश के मेरे जैसे और जो लोग चाहते हैं कि न्याय प्रणाली अमीर और ताकतवर वर्ग को जवाबदेही बनाए वे सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले को अवश्य मील का पत्थर मानेंगे। आखिरकार कानून के लंबे हाथ आरोपियों की गर्दन तक पहुँच ही गए। निश्चित रूप से यह न्यायतंत्र पर भरोसा बढ़ाने वाला फैसला है। इस अर्थ में कहा जाए तो देश की जनता में घोर निराशा की स्थिति में न्यायिक फैसले उम्मीद जताते हैं।

इसी प्रकार पक्ष-विपक्ष के सांसदों को इससे परिचित होना चाहिए कि ऊँची अदालतों के पास ढेर से वे मामले भी पहुँच रहे हैं जिन पर शासन-प्रशासन या फिर संसद एवं विधानसभाओं को संज्ञान लेना चाहिए। एक लंबे अरसे से यह देखने में आ रहा है कि संसद एवं विधानसभाओं में राजनीतिक दल जटिल मसलों का निपटारा करने से बचते हैं। अब तो वे हंगामें में ही अधिक वक्त जाया करते हैं। कई बार तो राजनीतिक दल यह चेष्टा करते हुए भी दिखाई पड़ते हैं कि समस्या विशेष की न्यायपालिका ही निपटाए तो बेहतर। ऐसे में स्वाभाविक है कि न्यायपालिका द्वारा किए जा रहे फैसले उम्मीद जताते हैं, क्योंकि कानून के हाथ बहुत लंबे हैं। अपराधी चाहे जितना भी शातिर हो कानून दबे पांव अपनी गिरफ्त में ले लेता है।

रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद का मुकदमा छह दशक से ज्यादा समय से चल रहा है तो ढाँचा ध्वस्त के मामले को इस साल 2017 में 25 साल हो जाएँगे। ये फैसले जिसके भी पक्ष या विरोध में हो, इतिहास की दिशा बदलने वाले हो सकते हैं। फैसला जब भी हो, लेकिन इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि ढुलमुल न्यायव्यवस्था का इतिहास रचा जा रहा है। सर्वोच्च न्यायालय यदि भाजपा नेताओं के खिलाफ आपराधिक षड्यंत्र चलाने का फैसला सुनाता है तो देर से ही सही न्याय मिलता हुआ दिखेगा। कहा जाता है कि न्याय सिर्फ होना ही नहीं चाहिए, बल्कि होता हुआ दिखना भी चाहिए। नि:संदेश भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश टी. एस. ठाकुर तथा नए मुख्य न्यायाधीश जे. एस. खेहर ने आर्थिक, पर्यावरण नीति के अतिरिक्त प्रशासनिक सुधारों पर सरकार को निर्देश देने की बजाय आपराधिक न्याय तंत्र में सुधार को लेकर जो गंभीरता दिखाई है और इनसे संबंधित मामलों पर जो फैसले सुनाए हैं उनसे इस देश की जनता की उम्मीदें बढ़ी हैं। पिछले दिनों 22 अगस्त, 2017 को सर्वोच्च न्यायालय के पाँच धर्मो के 5

न्यायाधीशों की खंडपीठ ने हजार वर्षों की 'तलाक-तलाक-तलाक' की निर्दयी बेड़ियों-जंजीरों को तोड़ते हुए मुस्लिम महिलाओं को गुलामी से निकालने का पाँच जजों में से तीन जजों ने बहुमत से फैसला देकर शताब्दी का सर्वोच्च सामाजिक न्याय किया है। अन्यथा पति के, पत्नी पर 'एकतरफा' फरमान सुनाने के अत्याचार की दारुण दुख भरी कहानी का ऐसा सुखद अंत तो असंभव ही लग रहा था। मोदी सरकार की हिम्मत की दाद देनी पड़ेगी कि उन्होंने मुस्लिम महिलाओं की तकलीफ को समझा और इस संदर्भ में स्पष्ट रूख अख्तियार किया। निश्चित रूप से यह फैसला मुस्लिम महिलाओं के जीवन में एक नया उजाला लेकर आया है।

अगस्त, 2017 के अंतिम सप्ताह में तीन बड़े न्यायिक फैसलों ने निश्चित रूप से न्याय व्यवस्था पर भरोसा बढ़ाया। खासतौर पर पंचकुला कोर्ट राम रहीम को साध्वी के यौन शोषण के मामले में दोषी ठहराकर यह जरूर जतला दिया कि न्याय पर किसी का जोर नहीं पड़ता। इस फैसले ने यह साबित कर दिया कि न्याय को कोई भी व्यक्ति अपने हाई प्रोफाइल स्टेट्स से दबा नहीं सकता है। पहले तीन तलाक के मुद्दे पर सुप्रीम कोर्ट ने ऐतिहासिक फैसला सुनाते हुए यह जता दिया कि जरूरत पड़ने पर और लोगों के अधिकार के लिए कोर्ट धार्मिक मामलों में भी दखल देने में पीछे नहीं रहेगी। तीन तलाक को धार्मिक मामला मानने वाले मुस्लिम धर्मगुरुओं को झटका देते कोर्ट ने मुस्लिम महिलाओं को उनका हक और तीन तलाक से आजादी दे दी। वहीं निजता के अधिकार के मामले में भी कोर्ट ने ऐतिहासिक फैसला देते हुए देश के लोगों को एक नया मौलिक अधिकार दे दिया। कोर्ट ने यह साफ संदेश दिया कि निजता के साथ खिलवाड़ नहीं किया जा सकता है, मगर साथ ही कोर्ट ने यह भी कहा कि 'जीवनशैली निजता का मूल तत्व है।' असल में निजता की व्यवस्था का मूल आधार सभ्यता और संस्कृति है और भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का मूल आधार मर्यादा है। यहाँ अंतरंग प्रीति पर भी मर्यादा के बंधन रहे हैं। मगर चिंता का विषय यह है कि आज निजता के तमाम समर्थक स्वयं अपनी निजता को उधाड़ रहे हैं। टी.वी. चैनलों पर आज जिस तरह का प्रदर्शन खुलेआम निजता और जीवन शैली के नाम पर हो रहा है, क्या यह प्रदर्शन लोक व्यवस्था और मर्यादा को क्षति पहुँचाने के साथ-साथ खुला उल्लंघन नहीं कहा जाएगा? अंतर्विरोध ढेर सारे हैं। इसलिए निजता के अधिकार का विधिक निर्वचन जरूरी हो गया है। अब संसद को इसके प्रयोग और सीमा पर सुविचारित

अधिनियमन करना चाहिए।

विगत 28 अगस्त, 2017 को भारत के मुख्य न्यायाधीश जे. एस. खेहर के सेवानिवृत होने के बाद न्यायाधीश दीपक मीश्रा भारत के नए मुख्य न्यायाधीश को राष्ट्रपति कोविंद ने शपथ दिलाई। जाने वाले और आने वाले दोनों ही मुख्य न्यायाधीशों के फैसले अहमियत के लिहाज से मील के पत्थर हैं। सिनेमाघरों में राष्ट्रगान बजाने का आदेश और आधी रात में याकूब मेमन की फाँसी पर मुहर के अलावा दिल्ली दुष्कर्म कांड के दोषियों को मौत की सजा देने का आदेश न्यायाधीश दीपक मिश्रा ने ही दिया था। जबकि न्यायाधीश खेहर एनजेएसी को रद्द करने के अलावा तीन तलाक व निजता के फैसलों के लिए हमेशा याद किए जाएँगे।

वैसे तो सामने आए मामले में फैसला देना न्यायाधीशों का कर्तव्य होता है, लेकिन कुछ फैसले ऐसे होते हैं जो इतिहास रच देते हैं। उन्हीं में से एक था राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग (एनजेएसी) कानून को रद्द करने का फैसला, सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय में न्यायाधीशों की नियुक्ति की नयी व्यवस्था देने वाले एनजेएसी कानून को असंवैधानिक ठहराने के लिए न्यायाधीश जे. एस. खेहर हमेशा याद किए जाएँगे। यही नहीं विगत कई वर्षो के दौरान निचली अदालतों से लेकर उच्च न्यायालयों तथा उच्चत्तम न्यायालय से जनता के मुद्दों पर बहुत सारे ऐसे फैसले आए हैं जिससे उम्मीद जताए जाते हैं। अभी-अभी कुछ दिनों पूर्व गया रोडवेज में आदित्य सचदेवा हत्याकांड में प्रथम एडीजे की अदालत द्वारा एमएलसी मनोरमा देवी के पुत्र राकेश रंजन यादव उर्फ रॉकी, बॉडी गार्ड राजेश कुमार व राजीव कुमार उर्फ टेनी यादव को आजीवन कारावास तथा रॉकी के पिता बिंदी यादव को पाँच वर्ष की सजा सुनाए गए फैसले से आम लोगों में कोर्ट के प्रति सम्मान बढ़ा है। वैसे भी जब राज्य नामक संस्था अपना कर्तव्य निभाने से चूकती है, तो न्यायपालिका को उसे झिझोंड़कर जगाना ही पड़ता है।

इस प्रकार देखा जाए तो लोकतंत्र में न्याय पर भरोसा कायम रहना बहुत जरूरी है, क्योंकि समय-समय पर न्यायपालिका ने ही इस देश में उम्मीद की किरण जगाई है। लगभग सभी राजनीतिक प्रशासनिक सुधार न्यायपालिका की वजह से हुए हैं। न्यायिक सक्रियता देश के लोकतंत्र की आखिरी आशा बन गई है, क्योंकि जब कहीं कोई कार्रवाई नहीं होती, तो लोग उम्मीद करते हैं कि अदालत को संज्ञान लेना चाहिए। वैसे भारत में न्यायपालिका पर लोगों का अटूट विश्वास है, लेकिन कभी-कभी अदालत

के फैसलों को राजनीतिक विवाद में घसीटने से भी खासतौर पर राजनीतिक दल और उसके राजनेता बाज नहीं आते।

लोकतंत्र सिर्फ चुनाव जीतकर सरकार बनाने का काम नहीं है, उसमें न्यायपालिका और मीडिया की भी भूमिका है। लोकतंत्र सिर्फ सरकार निर्माण व संचालन की कवायद पर न होकर एक व्यवस्था है जिसमें न्यायपालिका ने अपनी भूमिका सकारात्मक रूप से निभाई है। कुछ इसी वजह से न्यायपालिका पर लोगों का भरोसा अपने चुने हुए प्रतिनिधियों से ज्यादा है और ये राजनीतिक दलों के 70 साल के व्यवहार और आचरण के कारण से भी है।

सर्वोच्च न्यायालय खासतौर पर इस साल यानी 2017 में अपनी न्यायिक सक्रियता के लिए चर्चा में रहा है। तीन तलाक के खिलाफ और निजता को संवैधानिक अधिकारवाले उसके फैसले सचमुच ऐतिहासिक रहे, क्योंकि एक झटके में तीन तलाक को अमान्य कर उसने एक मिसाल कायम की। इसी प्रकार 7 मई, 2018 को उत्तर प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्रियों को आजीवन सरकारी बंगला देने वाले कानून को रद्द कर सर्वोच्च न्यायालय ने ऐतिहासिक फैसला दिया यह कहते हुए कि पूर्व मुख्यमंत्रियों को सरकारी बंगले आवंटित करने का कोई औचित्य नहीं। इसे लोकतंत्र की विकृति के अलावा और कुछ नहीं कहा जा सकता है। कोर्ट ने यह भी कहा कि कोई भी मुख्यमंत्री अपना कार्यकाल समाप्त होने के बाद आम नागरिक रह जाता है। उन्हें पूर्व के सरकारी पद के आधार पर सरकारी संपत्ति की सुविधा देना नागरिकों की अलग श्रेणी बनाने जैसा है। सरकारी संपत्ति देश के नागरिकों की है। इतना तो तय है कि देश की शीर्ष अदालत के तौर पर सर्वोच्च न्यायालय शासन-प्रशासन के साथ समाज पर अपनी छाप छोड़ता रहेगा। यह शीर्ष अदालत सुधारों की दिशा में आगे बढ़े तो यह काम और अच्छे से होना और पक्का हैं।

जहाँ तक भारतीय अर्थव्यवस्था का सवाल है वर्ष 2014 में जब नरेन्द्र मोदी ने केंद्र सरकार की सत्ता संभाली थी तब निर्विवाद रूप से बेहद विषम परिस्थितियों में उन्होंने काम करना शुरू किया था। निवेशकों का भरोसा रसातल में था और अर्थव्यवस्था गिरावट की मार झेल रही थी। न केवल पूँजी निर्माण या राजकोषीय घाटा, बल्कि ऐसे तमाम अहम संकेतक लाल निशान यानी खतरे के स्तर पर थे, मगर सत्ता संभालने के कुछ बाद अर्थव्यवस्था का कायाकल्प हुआ है जिसने उसे मजबूती प्रदान की है और

इसमें सरकारी खजाने की सेहत में सुधार के साथ-साथ सरकारी खर्च में आई बढ़ोतरी की मुख्य भूमिका रही है, पर कुछ अवरोध अभी भी कायम है, जो हमारी अर्थव्यवस्था की तेज गति की राह में लगातार आड़े आ रहे हैं। ये अवरोध हैं गैरनिष्पादित आस्तियों यानी एनपीए की मार से कराह रहा बैंकिंग क्षेत्र और अवरूद्ध पड़ा निजी निवेश चक्र। उपभोग और सरकारी व्यय एवं निवेश ने अर्थव्यवस्था को उस भंवर से बाहर निकाला है, जिस भंवर में सप्रंग सरकार ने उसे फँसाकर छोड़ दिया था।

पिछले कुछ वर्षो के दौरान हमारी तेज वृद्धि में उपभोग की अहम भूमिका रही है और यह हमारे आर्थिक इंजन को लगातार ऊर्जा देता रहेगा। नि:संदेह नोटबंदी के जरिए अब हमारी अर्थव्यवस्था की गुणवत्ता में सुधारकर एक बड़ा कदम उठा है। नोटबंदी ने अर्थव्यवस्था की गुणवत्ता के मुद्दे को साधा है और यह लघु एवं दीर्घ अवधि में अर्थव्यवस्था को कम से कम नकदी और डिजिटल स्वरूप की ओर ले जाएगी। भारत के कायाकल्प के लिए आने वाले दिनों में रोजगार सृजन और निवेश के लिहाज से उसे अधिक आर्थिक तेजी और दिशा दे सकता है। इस लिहाज से देखा जाए, तो प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने विगत 8 नवंबर, 2016 की आधी रात से नोटबंदी जैसा कड़ा फैसला लेकर देश को आर्थिक बदहाली के दलदल में धँसने से बचा लिया। अन्यथा जिस गति से देश में 500 और 1000 रुपए के नोट छापे जा रहे थे, भविष्य में वे कालेधन के रूप में प्रयुक्त होने के साथ-साथ देश की महंगाई दर को बढ़ाने में भी सहायक होते। नोटबंदी के बाद करीब 18 लाख लोगों ने 4.17 करोड़ रुपए की संदिग्ध राशि बैंक खातों में जमा कराई है जिसकी आयकर विभाग द्वारा जाँच एवं छानबीन की जा रही है।

मेरा ख्याल है कि इस आर्थिक सुधारों की सार्थकता के लिए बढ़ती हुई आबादी को नियंत्रित करते हुए देश को नकदविहीन और डिजिटल व्यवस्था की ओर ले जाने की जरूरत है। तभी हम विकासशील भारत के स्वप्न को पूरा कर पाएँगे। वैसे अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष, एशियाई विकास बैंक और संयुक्त राष्ट्र ने हाल ही में कहा है कि इस साल यानी 2017 में भारतीय अर्थव्यवस्था फिर तेजी पकड़ेगी। हम दुनिया में सबसे तेज आर्थिक वृद्धि हासिल कर सकते हैं। इसके विपरीत वैश्विक वित्तीय कंपनी क्रेडिट सुइस की भारतीय ईकाई का अनुमान है कि चालू वित्त वर्ष भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए ढीला रह सकता है। हालांकि अभी यह नहीं कहा जा सकता कि इनमें कौन सा आकलन सही साबित होगा, लकिन इतना जरूर

कह सकते हैं कि भारतीय सरकार की नीतियाँ और उनके अनुरूप आर्थिक फैसले ही तय करेंगे कि इनमें कौन सा अनुमान सही बैठेगा। बहरहाल, सरकार ने आर्थिक क्रांति के द्वार तो अवश्य खोल दिए हैं नोटबंदी और जीएसटी पर फैसले लेकर।

दरअसल, नीतियाँ तो बनती हैं, मगर उनपर अमल नहीं हो पाता, क्योंकि सरकार की इच्छाशक्ति प्रबल नहीं रहती। आखिर तभी तो प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी को पिछले दिनों राज्यसभा में राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव पर बोलते हुए कहना पड़ा कि देश में आर्थिक क्षेत्र से शायद ही कोई दूसरा व्यक्ति हो, जो आजादी के सत्तर साल में से 30-35 साल देश के आर्थिक नीतिगत फैसलों में सीधे तौर पर डॉ. मनमोहन सिंह जैसा व्यक्ति सम्मिलित रहा हो। इस दौरान इतने सारे घोटाले हुए, लेकिन उनके दामन पर एक भी दाग नहीं लगा, बाथरूम में रेनकोट पहनकर नहाने की यह कला तो डॉक्टर साहब से ही सीखी जा सकती है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि डॉ. मनमोहन सिंह की छवि एक ईमानदार व्यक्ति की रही है, मगर कुछ बात ऐसी हैं कि जिसे लेकर उनका हाथ बँधा था। उनके तत्कालीन मीडिया सलाहकार संजय ने अपनी पुस्तक 'द एक्सीडेंटल प्राइम मिनिस्टर' में स्पष्ट लिखा है कि सिंह ने स्वीकार किया था कि उने गलतियाँ तब हुईं जब काँग्रेस अध्यक्ष और काँग्रेस ने उनके कार्यो में हस्तक्षेप शुरू किया। प्रधानमंत्री कार्यालय की हर संचिका उनके पास जाती थी। वस्तुतः इस चुनावी समय में काँग्रेस को मनमोहन के अपमान से भी ज्यादा डर विकास के मुद्दों पर प्रधानमंत्री के जवाब से था। ऐसा भी नहीं कि संजय बारू के लिखने के बाद इसकी जानकारी लोगों को हुई हो, सच तो यह है कि इस देश के सभी नागरिक भी डॉ. मनमोहन सिंह की इसी लाचारी से वाकिफ हैं। अब आप समझ सकते हैं डॉ. मनमोहन सिंह जैसे आर्थिक नीतिगत फैसलों में सीधे तौर पर सम्मिलित रहने के बावजूद वे 'बेचारे' बने हुए थे और आर्थिक नीतियों पर फैसला लेने और उसे कार्यान्वित करने में लाचार थे।

डॉ. साहब के ठीक विपरीत प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी विगत 8 नवंबर, 2016 को नोटबंदी के कड़े फैसले लेकर लोगों को यह जता दिया कि देशहित में कड़क कदम उठाने में उन्हें कोई डर नहीं। आखिर तभी तो चालू वित्त वर्ष 2016-17 की तिसरी तिमाही में केंद्रीय सांख्यिकी कार्यालय की ओर से जारी ऑकड़ों ने साबित कर दिया कि नोटबंदी का अर्थव्यवस्था पर

कोई असर नहीं हुआ। इससे न केवल दलों के मुँह पर ताले लग गए, बल्कि आईएमएफ, विश्व बैंक और रिजर्व बैंक जैसी संस्थाओं के अनुमान भी गलत साबित हुए। ताजा आँकड़ों के मुताबिक मौजूदा वित्तवर्ष 2016-17 की तीसरी तिमाही अक्टूबर से दिसंबर में विकास दर 7.1 फीसद रहने का अनुमान है। यानी नोटबंदी के बावजूद दुनिया की प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में भारत की रफ्तार अब भी सबसे तेज बनी रहेगी। प्रति व्यक्ति आय 94,178 रुपए से बढ़कर 1,03,818 रुपए रहने का अनुमान है। इसी प्रकार पिछले वित्त वर्ष 2016 में जहाँ राष्ट्रीय आय 120.83 लाख करोड़ रुपए थी, वहीं इस वर्ष 2017 में यह बढ़कर 134.86 लाख करोड़ रुपए हो गयी। एशियन विकास बैंक के मुताबिक भारत की विकास दर 2017-18 के दौरान 7.4 प्रतिशत रहेगी और उससे अगले वित्त वर्ष में विकास दर बढ़कर 7. 6 प्रतिशत पर आ जाएगी। इस तरह से भारत की विकास दर चीन से ज्यादा बनी रहेगी। बैंक के आर्थिक प्रकाशन 'द एशियन डेवलपमेंट आउटलुक' के मुताबिक नोटबंदी का असर खत्म हो रहा है, क्योंकि नए नोट बाजार में आ चुके हैं। उपभोग के बढ़ने और आर्थिक सुधारों की उम्मीदों की वजह से देश में बिजनेस कन्फिडेंस और निवेश की संभावनाएँ बढ़ेंगी। बिजनेस के माहौल को बेहतर बनाने और विकास को बढ़ावा देने के मकसद से जीएसटी को लागू करने और विदेशी निवेश के तौर-तरीकों में ढील देने जैसे आर्थिक सुधार के मोर्चे पर फैसले किए गए हैं।

इन दिनों 'नया भारत' एक नया नारा जैसा बनता जा रहा है। 'नया भारत' से सत्ता का आशय विकसित भारत से है और विकसित भारत से अर्थ है-आर्थिक रूप से विकसित भारत। आज भारत जिस मुकाम पर है वहाँ समूचे राष्ट्र का वास्तविक आर्थिक विकास भी इस बात पर ही निर्भर है कि हम भूमि, कृषि, उद्योग और प्राकृतिक संसाधन का कितना नियोजित कर पाते हैं और यह इस्तेमाल कितना इस दिशा में बढ़ पाता है कि इसके लाभों का समाज में समान वितरण हो सके। इसके लिए एकमात्र और प्राथमिक शर्त समूची अर्थव्यवस्था को उन आधारों से ही मुक्त करना होगा जिन पर वह खड़ी है। यह काम अर्थव्यवस्था में न तो दिखावटी सुधारों से होगा और न ही उसे गतिशीलता दे देने से ही।

मुझे यह कहते हुए अफसोस हो रहा कि समूची वैश्विक अर्थव्यवस्था जिस तरह अँधगति में शामिल होकर 'नया भारत' बनाना चाह रहा है जो असंभव है। भारत को सबसे पहले तो अपने पूरे समाज के मानसिक

रूपांतरण की ओर बढ़ने के उस लक्ष्य को पूरा करना होगा, जिसे उसने बीसवीं सदी के आरंभ में शुरू भर किया था फिर वह दशक दर दशक सिर्फ भटका है, मगर खुशी की बात यह है कि आज से तीन साल पूर्व नरेन्द्र मोदी के केंद्र में सत्ता संभालने के बाद जो भी आर्थिक फैसले लिए गए हैं वे आमजन के बीच उम्मीद जताते हैं, क्योंकि इसके लिए आवश्यक सरंजाम किए जा रहे हैं और जिसका विस्तार विकसित भारत के अधिकाधिक आबादी तक है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के आर्थिक कदम से यह स्पष्ट होता है कि वाणी और कर्म की एकता क्या होती है, जीवन में कैसे उतरती है, यह भारत के एक राष्ट्र के रूप में सीखना पड़ेगा। सीखना इसलिए पड़ेगा, क्योंकि वाणी और कर्म के विभेद का नरेन्द्र मोदी के पूर्व की सरकारों का अभ्यास बहुत पुराना रहा है।

भारत की आर्थिक बुनियाद ऐसे ही बनी रही और वह अपनी रक्षा नीति को सही आकार देने में सफल रहता है तो इससे उपजे आत्मविश्वास के दम पर भारत को चुनौतियों से निपटने में परेशानी नहीं होगी, क्योंकि विरासत में मिली जर्जर अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने के लिए सरकार ने अनेक आर्थिक सुधार किए। मई, 2014 के बाद जितने आर्थिक फैसले लिए गए वे 1992 के बाद 22 साल तक नहीं लिए गए थे। अर्थव्यवस्था को पारदर्शी बनाने के लिए आर्थिक मामलों में सरकारी दखल को कम किया गया जिससे ब्राडबैंड, कोयला खादानों की नीलामी बिना किसी गफलत के हुई और सरकारी खजाने को भारी लाभ हुआ। नोटबंदी के बड़े फैसले से जहाँ करोड़ों का कालाधन अर्थव्यवस्था में वापस आया, वहीं अर्थव्यवस्था के डिजिटलीकरण को बल मिला। यह नोटबंदी और अन्य आर्थिक सुधारों का ही नतीजा है कि 90 लाख से अधिक नए करदाता बढ़े हैं और राजस्व में 18 प्रतिशत का इजाफा हुआ है।

दूसरी बात यह है कि आर्थिक विकास तो देश की बौद्धिक और सांस्कृतिक विकास का परिणाम होता है और उसके सांस्कृतिक विकास का सूचक भी। आज पश्चिमी दुनिया में ब्रिटेन, फ्रांस, अमेरिका आदि देश आर्थिक विकास के सर्वोच्च धरातल पर हैं, तो इसके पीछे उन देशों में घटी बौद्धिक और सांस्कृतिक क्रांति की मजबूत पृष्ठभूमि थी। अगर हमें अतीत के गौरवशाली भारत, जिसे विस्मृत कर सामाजिक रूप से पतन की विकराल अवस्था में आ गए हैं, को बदलते हुए नए भारत का निर्माण करना है तो उसके लिए बुनियादी काम जाति, धर्म, क्षेत्र से संचालित अपनी मनोरचना

और सामाजिक ढाँचे का त्वरित रूपांतरण करना होगा। यह कैसी विडंबना है कि एक तरफ तो हम 'नया भारत' का नारा दे रहे हैं और दूसरी तरफ जाति, धर्म, क्षेत्र की राजनीति को घनीभूत कर उनसे राजनीतिक लाभ के गणित सिद्ध करने के सतत प्रयास कर रहे हैं।

पिछले दिनों हैदराबाद में आयोजित आठवें सालाना वैश्विक उद्यमिता सम्मेलन को संबोधित करते हुए अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप की बेटी और व्हाइट हाउस में सलाहकार इवांका ट्रंप ने विगत 27 नवम्बर, 2017 को कहा कि लोकतंत्र में ही यह ताकत है कि एक चायवाला भी प्रधानमंत्री बन सकता है। इवांका ने पुनः कहा कि प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी को एक संपन्न अर्थव्यवस्था, लोकतंत्र का प्रकाशस्तंभ व दुनिया में उम्मीद का प्रतीक बनाने के लिए काम कर रहे हैं।

इवांका ट्रंप ने महिला उद्यमियों के लिए पूँजी पहुँच तथा समान कानूनों की वकालत करते हुए कहा कि उद्यमिता में लैंगिक अंतर को पाटने से वैश्विक जीडीपी में दो प्रतिशत तक की अतिरिक्त वृद्धि के साथ-साथ नौकरियों में स्त्री-पुरुष में भेदभाव कम होने से 150 अरब डॉलर बढ़ सकती है अर्थव्यवस्था। मानवता की प्रगति महिला सशक्तीकरण के बिना अधूरी है। उन्होंने यह भी कहा कि भारत दुनिया की सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था में से एक है और वह व्हाइट हाउस का सच्चा मित्र है।

आपने देखा नहीं विभिन्न देशों को क्रेडिट रेटिंक देने वाली अमेरिकी संस्था मुडीज के क्रेडिट रेटिंक स्केल पर भारत का 2017 में ऊपर चढ़ना इस बात का संकेत है कि केंद्र सरकार द्वारा आर्थिक सुधारों की दिशा में उठाए गए कदम सही राह पर हैं। आखिर तभी तो वर्ष 2017 में भारत की इस रेटिंग का बीएए-2 का दर्जा दिया गया है जबकि आज से 13 साल पहले 2004 में इस रेटिंग का दर्जा बीएए-3 था। इसी प्रकार बीते कुछ वर्षो में इस देश की केंद्र सरकार द्वारा लागू किए गए आर्थिक सुधारों की खासी भूमिका रही है। ये सुधार आंतरिक तौर पर भले ही कुछ महीनों तक देशवासियों को कुछ दिक्कतें हुई हों, लेकिन वैश्विक स्तर पर इन्हें सकारात्मक और महत्वपूर्ण माना गया है, क्योंकि इससे अंततः तेज और सतत आर्थिक वृद्धि का मार्ग प्रशस्त होगा। अच्छी खबर यह है कि 2018 में दुनिया के सभी विकसित और विकासशील अर्थव्यवस्थाएँ एक साथ बढ़ने जा रही है। बढ़ोतरी देखने वालों में अमेरिका, यूरोपीय संघ के साथ एशिया व मध्य पूर्व के देश भी शामिल है। अर्थव्यवस्था बेहतर करने के लिए

अमेरिका ने अबतक का सबसे बड़ा टैक्स सुधार किया है। इसी परिदृश्य को देखते हुए गोल्डमैक सैक ने अनुमान लगाया है कि 2018 में वैश्विक जीडीपी 4 प्रतिशत की दर से बढ़ेगी। जहाँ तक भारत का सवाल है नोटबंदी का असर खत्म और जीएसटी स्थापित हो रहा है। ऐसे में 2018 में अर्थव्यवस्था तकरीबन 8 प्रतिशत की रफ्तार हासिल करने जा रही है। इस साल चीन को भी पीछे छोड़ भारत में फिर सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था होगी। इस प्रकार वैश्विक महामंदी जो 2008 में शुरू हुई थी, उसके दस साल बाद 2018 पूरे होने पर यह सुखद समाचार है कि पहली बार पूरी दुनिया एक साथ बढ़ेगी जिसमें पचहत्तर प्रतिशत देश तरक्की करेंगे और भारत उसमें सबसे तेजी से बढ़ेगा।

इस प्रकार कुल मिलाकर देखा जाए तो वर्तमान दौर की भारतीय राजनीति जिस स्थिति से गुजर रही है और भारत जैसे सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश की सामाजिक स्थिति निरंतर पीछे की ओर जा रही है, उसमें न्यायिक एवं आर्थिक फैसले निश्चित रूप से उम्मीद जगाते हैं। इस दृष्टिकोण से प्रबुद्ध प्रष्टाओं द्वारा पूछे गए न्यायिक तथा आर्थिक फैसले से संबंधित क्रमशः 152 तथा 72 प्रश्नों अर्थात कुल 224 प्रश्नों के उत्तर देकर उनकी जिज्ञासाओं को भरसक मैंने पूरा करने की कोशिश की है जिसका लाभ हमारे सुधी पाठक तथा शोधकर्ता भी उठा सकेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है। उत्तर प्रस्तुत करने के दौरान मैंने अपने विचार और विवेक को सर्वाधिक सम्मान दिया है, क्योंकि वे मेरे मस्तिष्क की उपज हैं। इसलिए मैं उम्मीद करता हूँ कि ये मेरे विचार जहाँ आम पाठकों की कल्पना को जाग्रत करेंगे, वहीं विद्यार्थियों, शोधकर्ताओं, प्राध्यापकों तथा प्रबुद्धजनों के लिए लाभप्रद तो होंगे ही, साथ ही हमारे ये विचार उन्हें मानसिक खुराक भी प्रदान करेंगे।

हम हृदय से आभारी हैं प्रबुद्ध प्रश्नकर्ताओं के साथ-साथ उन सभी विद्वत्जनों का जिन्होंने साक्षात्कार के दौरान प्रश्नोत्तर के संकलित प्रस्तुत पुस्तक में सन्निहित मेरे विचारों पर अपने विद्वतापूर्ण अभिमत तथा शुभाशंसा लिखकर मुझे प्रोत्साहित किया है और दीर्घायु होने की मंगलकामना की है।

संपर्क:
संस्थापक-संपादक, 'विचार दृष्टि'
'संस्कृति', ए-164, पार्क रोड
ए.जी. कॉलोनी, शेखपुरा,
पत्रा.- आशियाना नगर
पटना-800025,मो. 9431037221

पूर्व अध्यक्ष
बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड,पटना
'दृष्टि', यू.207, शकरपुर,
विकास मार्ग, दिल्ली-92
दूरभाष-011-22530652

अभिमत

हमारी आपकी कल्पना को जाग्रत करेंगे इनके प्रश्नोत्तर

□अवधेश प्र. सिन्हा

सत्य और निष्ठा के साथ अपने कर्तव्यों का निर्वाह करने वाले सिद्धेश्वर जी कानून की गुत्थियों को समझने में भी माहिर हैं, क्योंकि महालेखाकार, बिहार के कार्यालय में तीन दशक से अधिक वर्षो तक अपनी सेवा प्रदान करने के दौरान नियम-कानून की गुत्थियों को इन्होंने बखूबी सुलझाया है। सभ्यता, संस्कृति, राजनीति और कानून जैसे विषयों पर इनकी प्रतिभा उन्मुक्त रूप से उजागर हुई है उनकी इस कृति 'उम्मीद जताते न्यायिक एवं आर्थिक फैसले' में। समय-समय पर विगत तीन-चार वर्षो के दौरान देश की निचली अदालत से लेकर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा देश की आम जनता से जुड़े मुद्दों पर दिए गए फैसलों पर प्रबुद्धजनों, उच्च एवं सर्वोच्च न्यायालय के अधिवक्ताओं ने इनके समक्ष साक्षात्कार में जो प्रश्न प्रस्तुत किए गए हैं उनके उत्तर इन्होंने बड़े सलीके से दिए हैं जिससे इनके अद्यतन ज्ञान और विचार की जानकारी मिलती है। दरअसल, सिद्धेश्वर जी ने विचार और विवेक को सर्वाधिक स्थान दिया है, क्योंकि इनका मानना है कि विचार किसी की बपौती नहीं है। उसका स्वतंत्र विकास होता है। फूल मुरझा जाते हैं, पर विचार मुरझाते नहीं। हर विचार मस्तिष्क की उपज है जिसका आधार जीवन है। सिद्धेश्वर जी का मानना है कि अगर व्यक्ति विचारशील, शिष्ट और व्यवहारकुशल है, तो वह आपके कार्य का ठीक से निर्वहण करेगा अन्यथा उसके अपने कार्य में कठिनाइयाँ होंगी। अनुशासन के साथ स्नेह एव सहृदयता का विलक्षण समन्वय इनके जीवन का व्रत है। इनके लिए सिद्धांत केवल कोरे शब्द नहीं, बल्कि जीवन के व्यावहारिक आधार हैं। अपनी विद्वता और सद्गुणों की वजह से वे सामान्य स्थिति से न केवल वरिष्ठ लेखा परीक्षा अधिकारी के पद पर इन्होंने प्रोन्नति पाई, बल्कि बिहार सरकार ने बड़े आदर के साथ बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष का दायित्व राज्यमंत्री के दर्जे के साथ इनके सबल कंधों पर सौंपा जहाँ

इन्होंने अपनी विद्वता के साथ-साथ प्रशासनिक क्षमता का भी परिचय दिया। बोर्ड के अधिवक्ता रिटेनर के रूप में इनके तीन साल के कार्यकाल में मुझे भी इनके सान्निध्य से जीवन में सरसता आई और उस दौरान उनके प्राचीन संस्कृत भाषा और संस्कृत साहित्य के प्रति समर्पण के भाव के साथ-साथ अपने कर्तव्य के प्रति ईमानदारी और निष्ठा को नजदीक से देखने का मुझे अवसर मिला। न तो इनके दिल में कभी मैंने खोट देखा और न इनके मन में कभी कुंठा देखी गई। स्पष्टवादी इतने कि वे अपनी बात बड़ी सफाई से प्रस्तुत करते हैं। किसी-किसी व्यक्ति में अपनी ऐसी खासियतें होती हैं, जो उसे दूसरे से भिन्न बनाती हैं और खास भी। सिद्धेश्वर जी कई मामलों में बहुत ही खास और अलहदा हैं जो उन्हें दूसरे से अलग बनाता है।

सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व में मैंने एक खासियत यह देखी कि वे संघर्ष के साथ-साथ लेखन से जुड़े हैं। यह कृति उनकी इसी खासियत का प्रतिफल है। इसी खासियत के चलते वे इस देश के प्राय: सभी राज्यों में जाने जाते हैं। एक कुशल सृजनकार के तौर पर अपने राज्य बिहार के साथ-साथ देश के अन्य राज्यों में अपने विचार और सृजन के माध्यम से इन्होंने अपनी एक अलग पहचान बनाई है। लौह पुरुष सरदार वल्लभभाई की जयंती के अवसर पर गुलाबी शहर जयपुर में आयोजित राष्ट्रीय चेतना के वैचारिक संगठन - 'राष्ट्रीय विचार मंच' के राष्ट्रीय अधिवेशन के शैक्षिक सत्रों में इनकी कर्मठता, व्यापकता और लोकप्रियता को मैंने वहाँ एक प्रतिनिधि के रूप में सहभागी बनकर स्वयं देखा है जिसकी जितनी तारीफ की जाए कम है जिन्होंने इतना भव्य आयोजन देश भर के प्रबुद्धजनों, साहित्यकारों, न्यायविदों, प्राध्यापकों और कुलपतियों की उपस्थिति एवं उनके उद्‌गार से सैकड़ों सुधी श्रोताओं के जनमानस को देश के लिए कुछ कर गुजरने के लिए प्रेरित किया। इन्होंने यह साबित कर दिया कि अगर इन्हें मौका दिया जाए, तो ये कुछ भी कर सकते हैं। इस अधिवेशन ने इनकी कर्मठता और व्यक्तित्व के स्याह सच से रूबरू कराया और नव ऊर्जा का संचार किया, क्योंकि ये अपने दिल दरवाजे हमेशा खुले रखते हैं।

सिद्धेश्वर जी ने अपने जो विचार प्रश्नोत्तर के रूप में प्रस्तुत किए हैं वे न केवल हमारी आपकी कल्पना को जाग्रत करेंगे, बल्कि ये उत्तर रहस्य, आश्चर्य पैदा करते हैं और ये पाठक को सीखने की ललक पैदा करते हैं। उत्तर के माध्यम से जो विचार आप ग्रहण करते हैं वे सभी आपके ज्ञान में वृद्धि करते हैं। आपका पुस्तकालय मन और आत्मा के लिए यह एक

भंडार है। अपने प्राक्कथन में न्याय पर जो सिद्धेश्वर जी ने अपने विचार व्यक्त किए हैं वे सचमुच मार्मिक हैं। द्रष्टव्य हैं उनके ये विचार–

'कहा जाता है कि न्याय सिर्फ होना ही चाहिए, बल्कि होता हुआ दिखना भी चाहिए। निःसंदेह भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश टी. एस. ठाकुर तथा नए मुख्य न्यायाधीश जे. एस. खेहर ने आर्थिक, पर्यावरण नीति के अतिरिक्त प्रशासनिक सुधारों पर सरकार को निर्देश देने की बजाय आपराधिक न्यायतंत्र में सुधार को लेकर जो गंभीरता दिखाई है और इनसे संबंधित मामलों पर जो फैसले सुनाए हैं उनसे इस देश की जनता की उम्मीदें बढ़ी हैं। पिछले दिनों 22 अगस्त, 2017 को सर्वोच्च न्यायालय के पाँच धर्मों के पाँच न्यायाधीशों की खंडपीठ ने हजार वर्षों की 'तलाक-तलाक-तलाक' की निर्दयी बेड़ियों-जंजीरों को तोड़ते हुए मुस्लिम महिलाओं को गुलामी से निकालने का पाँच जजों में से तीन जजों ने बहुमत से फैसला देकर शताब्दी का सर्वोच्च सामाजिक न्याय किया है। अन्यथा पति के, पत्नी पर 'एकतरफा' फरमान सुनाने के अत्याचार की दारुण दुखभरी कहानी का ऐसा सुखद अंत तो असंभव ही लग रहा था। मोदी सरकार की हिम्मत की दाद देनी पड़ेगी कि उन्होंने मुस्लिम महिलाओं की तकलीफ को समझा और इस संदर्भ में स्पष्ट रूख अख्तियार किया। निश्चित रूप से यह फैसला मुस्लिम महिलाओं के जीवन में एक नया उजाला लेकर आया है।'

सिद्धेश्वर जी ने कभी नहीं चाहा कि सृजन कर रचनाओं से पैसा कमाएँ। उनकी एकमात्र इच्छा रही और आज भी चाहते हैं कि उनकी आवाज सुनी जाए। आज जब सब अपना फायदा देख रहे हैं और इस देश का आदमी आज के जैसा इतना स्वार्थी कभी न था, तब ऐसे समय में सिद्धेश्वर जी ने अपना रास्ता खुद बनाया और बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष जैसा पद छोड़कर पुनः सृजन का रास्ता चुना। सृजन का रास्ता कोई दूसरा नहीं बनाता, यहाँ अपना रास्ता खुद बनाया जाता है सो इन्होंने वैसा किया। लेखन के माध्यम से समाज, संस्कृति, राजनीति, साहित्य और देश-दुनिया की बात कहते हैं और अपनी व्यथा-कथा को भी पाठकों के सामने रखते हैं। 'जीवन रागिनी' नामक इनकी आत्मकथा जो शीघ्र ही प्रकाशित होगी इन्होंने बचपन से लेकर अबतक के अपने जीवन के अनुभवों को अभिव्यक्त किया है। इनका दृष्टिकोण बहुत साफ है इसलिए जबतक इनमें सोचने की शक्ति है काम कर रहे हैं और यह समय धरती पर टिककर काम करने का है। सिद्धेश्वर जी अपने मस्तिष्क की क्षमताओं, अपनी विचार

अभी तक के जीवन में सिद्धेश्वर जी ने इस बात को सच कर दिखाया है कि इनकी कथनी और करनी में कभी कोई अंतर नहीं आया। मितभाषी और बात हमेशा समझदारी से करने वाला यह सिद्धपुरुष अपना आपा कभी नहीं खोता। बेहद संयमित, संतुलित, आडंबरहीन तथा सौजन्यपूर्ण व्यवहार एवं स्वाभाविक सहज विनम्रता से ये किसी का भी दिल जीत लेते हैं। बनावट न इनके व्यवहार में है और न पहनावे में। बुजुर्गो व विद्वानों को आदर वह उदारता से बाँटते हैं। ऐसा नहीं है कि वह इंसान को पहचानने में कभी कोई चूक करते हों। मानवीय मनोविज्ञान के सिद्धेश्वर जी सचमुच पारखी हैं और वैचारिक खुलापन के पक्षधर भी। सभ्यता एवं संस्कृति सच से डरती है और अपनी छद्मता में घिरी रहना चाहती है। लेखक भी तो इन्हीं छद्मों से भागता है, लेकिन सिद्धेश्वर जी सच को कड़े शब्दों में कहना जानते हैं। जैसे दिखेगा, जिस भाषा में दिखेगा उसे वैसा ही शब्द-बद्ध करते हैं। शलील, अश्लील, सही, गलत, सभ्य, जंगली के चक्कर से तो कालिदास भी नहीं बच सके, फिर इनकी क्या बिसात! बद से बदनाम सही, उससे बदजुबान सही!

"अपनी हस्ती से ही जो कुछ हो
आग ही गर नहीं, गफलत ही सही।"

कई पुरस्कार से सम्मानित साहित्यकार सिद्धेश्वर जी का साक्षात्कार वस्तुत: वक्त का विचार प्रवाह है। समाज की विसंगतियाँ, राजनैतिक प्रभाव, वैचारिक उपस्थिति तथा बिखरते नाते-रिश्ते आदि पर उनसे बातचीत में कई समसामयिक मुद्दों पर स्पष्ट और बेबाक विचार उभर कर सामने आए हैं। भाषा, साहित्य, समाज, संस्कृति, धर्म, शिक्षा से जुड़े विभिन्न सामयिक चिंतन और दृष्टिकोण के कई महत्वपूर्ण सवालों के उत्तर बेहद मार्मिक और दिलचस्प हैं। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि राष्ट्रीय राजधानी नई दिल्ली सहित बिहार के राजधानी पटना तथा देश के अन्य कई शहरों के मूर्धन्य साहित्यकार, पत्रकार, अधिवक्ता, सामाजिक एवं राजनीतिक कार्यकर्ताओं द्वारा साक्षात्कार के दौरान विभिन्न विषयों से संबंधित अबतक 1111 प्रश्नों के उत्तर सिद्धेश्वर जी ने दिए हैं जिन्हें पाँच पुस्तकों में संकलित कर आपके समक्ष प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त राजनैतिक, वैश्विक, आर्थिक, न्यायिक, अंतरराष्ट्रीय संबंधों पर प्रष्टाओं के प्रश्नों के जो उत्तर इन्होंने प्रस्तुत किए हैं, वे अध्यापकों, विद्यार्थियों, विचारकों और शोधकर्ताओं के लिए इसलिए अत्यंत मूल्यवान हैं, क्योंकि कक्षाओं में व्याख्यान देने, परीक्षा में पूछे

गए प्रश्नों के उत्तर देने तथा शोध प्रस्तुत करने के लिए काफी कुछ सामग्रियाँ इनके उत्तरों से उपलब्ध हो जाएँगी।

वर्ण और वर्ग से परे हटकर, विचारधारा और वाद से निरपेक्ष रहकर सिद्धेश्वर ने मनुष्य के भावावेगों, जीवन-स्थितियों और इंसानियत की धुँआती आँखों की पीड़ा को उकेरने में इन्होंने जिस साहस और मर्म का परिचय दिया है उससे इनका मानवतावाद, समाज, उसकी समस्याओं, शोषण, उत्पीड़न और कुरीतियों के चित्रण में रूपायित होता है।

परंपरा और आधुनिकता का बराबर निर्वाह करते हुए सिद्धेश्वर ने अपनी वैचारिकता और अपने उत्तर को किसी कटघरे में कैद न होने के बावजूद वह गहरे अर्थों में समाजवादी और मानवतावादी हैं। इसलिए इनके उत्तर अपने समय का मुकम्मल यथार्थ प्रतिबिंबित करने के साथ-साथ भविष्य के लिए भी सपने संजोते हैं। बहुआयामी प्रश्नों के इनके उत्तर में गोते लगाने वाले पाठक न केवल उनके विचार एवं भाषाप्रवाह में बँधे बहते चले जाएँगे, बल्कि उस बड़े फलक को भी देख पाएँगे जहाँ हमारा जनजीवन, व्यवस्था, लोक के विविध आयाम ऊजागर होते हैं। निश्चित रूप से स्वातंत्र्योत्तर भारत के न केवल सामंती समाज के जीवन और समस्याओं से रूबरू कराते हैं इनके उत्तर, बल्कि उन्हें आधुनिक भारत के जनजीवन और समस्याओं से भी जोड़ते हैं, जो सिद्धेश्वर जी के बाद आई पीढ़ियों को इनके उत्तर के मार्फत भारतीय समाज और जनजीवन को समझने का सुख प्रदान करेंगे।

सिद्धेश्वर जी के उत्तर से यह भी स्पष्ट होता है कि वह केवल सामाजिक यथार्थ का चित्रण ही नहीं करते, बल्कि उसका विश्लेषण भी करते हैं। समाज बदलता है, उसे बदलना भी चाहिए, पर भारतीय समाज क्यों नहीं बदलता, यह जाति प्रथा अबतक क्यों जड़ जमाए हुए है-ये प्रश्न उन्हें बेचैन करते हैं।

सिद्धेश्वर जी के वैचारिक और रचनात्मक साहित्य का मूल्याँकन होने के पश्चात् साक्षात्कार विधा का इनका लेखकीय महत्व नए सिरे से होगा, क्योंकि इनके जीवन-राग का यह रेखांकन मात्र नहीं है, बल्कि इस देश के लोगों के संघर्ष और उनके आक्रोश का जीवंत दस्तावेज भी है, जो समाज का यथार्थ चित्रण के साथ-साथ सकारात्मक सोच भी देता है। इस दृष्टिकोण से देखा जाए, तो यह पाठकों के साथ-साथ शोधार्थी भी इससे अवश्य लाभान्वित होंगे। इसलिए इसे विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों के साथ-साथ शोध संस्थानों के पुस्तकालयों में रखा जाना

चाहिए। इनके प्रश्नोत्तर में एक अलग तरह की ताजगी तो आप पाठक महसूस करेंगे ही इसके साथ ही विरोध का भी एक नया और अनूठा स्वर भी आपको सुनाई देगा जिससे विद्यार्थियों के साथ प्राध्यापक भी लाभ उठा सकेंगे। उत्तर आधुनिक युग के इस वैश्विक परिवर्तन की उपभोक्तावादी संस्कृति के अंधड़ समय में वैश्वीकरण और बाजारवाद के बरअक्स उत्पन्न विभिन्न स्थितियों, संकटों और समस्याओं से पपड़ाए संबंधों को तलाशने का भी इनका प्रयास रहा है। इसी प्रकार सिद्धेश्वर जी के उत्तर में बहुत ही बारीकी से मौजूदा दौर की जटिल राजनीति से दो-दो हाथ करने की जिजीविषा को महसूसा जा सकता है और इनमें व्याप्त अभिव्यंजना की संश्लिष्टता को भी देखा जा सकता है, जो जाने-अनजाने हमारे-आपके जीवन को प्रभावित करते हैं। राजनीति और राजनीतिज्ञों से दो-दो हाथ करने के पीछे प्रमुख वजह यह रही है कि सिद्धेश्वर जी आज तक प्रलोभन के पतन से अपने को बचाए चल रहे हैं। पेशे से सिद्धेश्वर जी सरकारी सेवक और संपादक रहे हैं, लेकिन जहाँ भी ये रहे हैं ईमानदारी, व्यवहारकुशलता और निष्ठा में इन्होंने अपना प्रतिमान बनाए रखा। आखिर तभी तो देश के मूर्धन्य साहित्य साधकों के ये प्रिय पात्र बने रहे और सरकारी सेवा में भी शीर्ष अधिकारियों सहित सहकर्मियों के बीच इनकी लोकप्रियता बनी रही। मुझे अच्छी तरह याद है सिद्धेश्वर जी की वह क्षमता, कार्यकुशलता, राष्ट्रीय चेतना जागृत करने के प्रति इनकी निष्ठा और लोगों के प्रति इनकी व्यवहार-कुशलता जब कुछ वर्ष पहले हमारे राजस्थान की राजधानी और गुलाबी शहर के नाम से मशहूर जयपुर के अणुव्रत भवन सभागार में लौह पुरुष सरदार पटेल की जयंती के अवसर पर राष्ट्रीय विचार मंच की राजस्थान शाखा के सौजन्य से आयोजित उसके दो-दिवसीय वार्षिक अधिवेशन के उद्घाटन एवं अकादमिक सत्रों में निर्धारित विषयों पर सार्थक विचार विमर्श कराने और उसे यादगार बनाने में इन्होंने अपनी असीम क्षमता, कार्य-कुशलता का परिचय देकर जयपुर के प्रबुद्धजनों का दिल जीता था। आखिर तभी तो भाई पंचशील तथा पल्लवी सिंह चौहान जैसे युवा व कर्मठ सहयोगियों ने दिन को दिन और रात को रात नहीं समझा था। तब से हमारे दिल में सिद्धेश्वर जी के लिए और ऊँचा स्थान हो गया। साथ ही अपने समाजधर्मा रचनाकारों एवं सहयोगियों के बीच भी इनकी सम्मानजनक स्वीकृति आज भी बनी हुई है।

पटना विश्वविद्यालय, स्नातकोत्तर विभाग के पूर्व अध्यक्ष और हिंदी के मूर्धन्य मनीषी डॉ. बलराम तिवारी ने 'हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर' रचना का संपादन कर अपने पांडित्यपूर्ण संपादकीय से इसे अलंकृत किया है जिसके लिए उनके प्रति मैं सम्मान-भाव प्रकट करता हूँ। प्रश्नोत्तरी के आधार पर तैयार पाँच कृतियों का मैं मधुर स्वर से स्वागत करता हूँ और हर्षित होकर सिद्धेश्वर जी की शेष निरापद जीवन-यात्रा के लिए मंगलकामना के साथ यह उम्मीद करता हूँ कि जिस प्रकार इन कृतियों के माध्यम से उनकी रागात्मक अनुभूतियों की तीव्र संवेदना के हृदयस्पर्शी स्वर प्रस्फुटित हुए हैं उसी प्रकार साहित्य सृजन के पथ पर आने वाले दिनों में भी इनकी कलम जगमगाते हुए शब्द-रत्न गूँथकर निरंतर मनोरम वैजयंती बनाती रहेगी। मेरी शुभकामना सदैव इनके साथ है। विश्वास है साहित्य की साक्षात्कार विधा में आई इनकी पाँचों पुस्तकों का मूर्धन्य स्थान होगा। हमारी हार्दिक बधाई।

संपर्क :
7. च/ज, जवाहर नगर,
जयपुर, राजस्थान
दूरभाष-0141.2650937
मों.-09414829376

डॉ. नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम'
पूर्व प्राचार्य
महिला महाविद्यालय
सांगानेर, जयपुर
राजस्थान

शुभाशंसा

अक्ल की खिड़कियाँ खोलतीं कृतियाँ

□ डॉ. रामनिवास 'मानव'

सिद्धेश्वर जी अपने प्रश्नोत्तर के दौरान वर्तमान भारतीय समाज और राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार, बलात्कार, सत्ता की चाटुकारिता के प्रति जहाँ अपना आक्रोश व्यक्त करते हैं, वहीं उभरती जनशक्ति के प्रति आस्था भी। क्रूर व्यवस्था के उत्पीड़न-शोषण से समाज के विपन्न वर्ग प्रायः द्वंद्व-ग्रस्त रहते हैं। वे सोचते हैं कि हम किससे अपना संबंध जोड़ें। संघर्षशील लोक से अथवा शोषक प्रभुवर्ग से, लेकिन भीतरी द्वंद्व की तीव्रता उन्हें समाज की परिवर्तनकामी जनशक्ति से जोड़ता है।

देश की वर्तमान दुर्दशा, अन्याय, अनाचार, दुराचार, उत्पीड़न, शोषण की वेदना को अपनी संवेदना के साँचे में ढालकर स्वीकारते भी हैं कि भूख की आँच से नहीं होती है कोई आँच बड़ी। सत्ता अपने लक्ष्यघाती लक्ष्य छिपाती है, परंतु अपराधियों के चेहरे छिपते नहीं हैं। हमारा देश रात-दिन उत्सवों में आकंठ मग्न रहता है। फटी बिवाइयाँ गरीब की कोई नहीं देखता है। यह सच है कि पूँजीवादी समाज से हमारा चारित्रिक पतन हुआ है। हम लाभ-लोभ के दलदल में धँस गए हैं। फँसने वालों में हम ही नहीं सत्ताधारी नेता और अधिकारी तथा उनके अनुचर भी। लोग यह भूल बैठे हैं कि समाज सर्वोपरि है, उसके लिए प्रतिबद्धता के बिना कुछ संभव नहीं है।

सिद्धेश्वर जी ने अपने प्रश्नोत्तर में इन सभी घटनाओं पर दृष्टि डालते हुए यह महसूस किया है कि अनैतिकता और मानसिक गिरावट देश का चरित्र बन गया है। निर्ममता, अमानवीयता, यातना भोगकर युवा पीढ़ी ढेर होती जा रही है। उन्होंने अपने परिवेश की विकृतियों को उजागर किया है जो हमारी अक्ल की खिड़कियाँ खोल देती हैं। आजादी के बाद की विसंगतियाँ समय, समाज और राजनीति को अपनी शर्तों पर परिभाषित करने लगी जो आजादी और गाँधी के नाम पर चल रहा है जिससे न भूख मिट रही है और न मौसम बदल रहा है। सिरकटे मुर्गे की तरह फड़कते हुए सुबह में सिर्फ चालबाजी है। अपने यहाँ जनतंत्र एक तमाशा है जिसकी जान मदारी की भाषा है और इस जनतंत्र में देशभक्ति एक धोखा है। आखिर तभी तो

आए दिन देश के विभिन्न क्षेत्रों में देश-विरोधी नारे लग रहे हैं।

यश और आदर के भूखे सिद्धेश्वर जी की एक तमन्ना जरूर है कि इस बढ़ती उम्र को देखते हुए अबतक तकरीबन अपनी नौ किताबों, जिसे वे नवरत्न कहते हैं और जिसकी पांडुलिपियाँ लगभग तैयार हो चुकी हैं उसकी छपाई अवश्य हो जाए। सच पूछा जाए, तो बस उनकी एक ही साध अब बच गई है कि लिखते-लिखते कोई ऐसी चीज उनकी कलम से निकल जाए कि वह सदा के लिए इंसान के दिल में जगह पा ले। मेरे ख्याल से उनकी यह साध भी साक्षात्कार के आधार पर प्रश्नोत्तरी की इन पाँचों पुस्तकों के प्रकाशन से पूरी हो जाएगी। सिद्धेश्वर जी की तेज-तर्रार बातें कभी-कभी कार्यक्रमों में शामिल होने वाले अतिथि-लेखकों को भीतर तक झकझोरते हुए चुभ जाती हैं, क्योंकि उनकी रचनाधर्मिता को भी प्रश्नांकित करने से वे बाज नहीं आते।

दरअसल, ख्वाब और ख्वाहिश इंसान के जीने की वजह है, जिनके सहारे इंसान जिंदा रहता है। अगर किसी की जिंदगी में कोई ख्वाब और किसी चीज को पाने की ख्वाहिश ना हो, तो ऐसी जिंदगी ही क्या भला! सिद्धेश्वर जी की यह ख्वाहिश ऐसी है जो अवश्य पूरी होगी, क्योंकि वे कोशिश बराबर करते रहते हैं और कोशिश करने वाले को ही लक्ष्य हासिल होता है। समकालीन जन-संस्कृति के प्रतीक सिद्धेश्वर जी हमलोगों के बीच हिंदी साहित्य के ऐसे ज्योति-स्तंभ हैं, जिनकी लोकप्रियता समकालीन रचनाकारों एवं सामाजिक कार्यों से जुड़े लोगों की जिह्वा पर जीवित है, क्योंकि उनकी शख्सियत में अपार अनुराग, सच्ची खरी बौद्धिकता और गहरी असहमति सब एक साथ दिल्ली, जयपुर तथा पटना में राष्ट्रीय विचार मंच और राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक उसके मुख-पत्र 'विचार दृष्टि' की ओर से आयोजित कार्यक्रमों में हमें देखने को मिलता रहा है। अपेक्षित सहयोग भी वे मुझसे लेते रहे हैं, यह मेरे लिए सौभाग्य की बात है। मैंने देखा है सिद्धेश्वर जी न तो किसी से आतंकित होते हैं और न ही स्वयं किसी को आतंकित करते हैं। अलबत्ता वे स्वयं लोगों से अभिभूत होते हैं और औरों को अभिभूत करने की उनमें असीम एवं सहज क्षमता है। जो उनके नजदीक पहुँच जाता है या सान्निध्य में आ जाता है, वह उनके परिवार का सदस्य बन जाता है। आखिर तभी तो पटना तथा दिल्ली जैसे महानगर से हजारों किलोमीटर दूर राजस्थान की राजधानी जयपुर अथवा तमिलनाडु की राजधानी चेन्नई में भी इनके द्वारा आयोजित समारोहों में पटना तथा दिल्ली जैसी ही

इनके चाहने वालों की भीड़ रहती है। दरअसल, वे किसी पर कोई बोझ नहीं डालते, बल्कि अनेक लोगों का बेवजह बोझ उठाकर खुशी का अनुभव करते हैं। उनकी बौद्धिक प्रखरता और आत्मीयता ने कई पीढ़ियों को स्वयं अपना समय और सच समझने में मदद की, जबकि मौजूदा दौर के स्वार्थी समय में सहज, पर बौद्धिक रूप में सघन-समृद्ध तकरीबन लोग असंभव हो गए हैं।

ऐसी स्थिति में भी सिद्धेश्वर जी सत्यधर्म, जो छिप गया है उसे दिखाने का प्रयास करते हैं और यही बुद्धिजीवी का सबसे पहला कर्तव्य है- उसको उद्घाटित करना, प्रत्यक्ष करना। विवेकानन्द ने भी बुद्धिजीवी का पहला कर्तव्य सत्यान्वेषण ही माना था। गाँधी जी की समस्त विचारधारा इसी पर आधारित है। सिद्धेश्वर जी इस दृष्टि से देखा जाए तो सही मायनों में एक सार्वजनिक बुद्धिजीवी हैं जिसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं साक्षात्कार के दौरान इस देश के अनेक इलाकों के प्रबुद्धजनों के द्वारा कुल सोलह विषयों से संबंधित तकरीबन एक हजार से भी ज्यादा प्रश्नों का इनके सामने रखकर उनसे उत्तर की अपेक्षा करना। एक हजार से अधिक प्रश्नों का उत्तर देना वैसे भी एक दुरूह काम है जिसे उन्होंने किया है।

दरअसल, सिद्धेश्वर जी संपूर्ण स्वतंत्रता से बोलने और लिखने में विश्वास करने वाले एक ऐसे योद्धा हैं जिनके पास अनुभव का संसार व्यापक है जिसके बल पर ही उन्होंने अपने अनुभवों को बेहतरीन तरीके से उकेरा है इन पुस्तकों में। इनके उत्तर को पढ़ते-पढ़ते मैं जैसे-जैसे आगे बढ़ता गया मेरी उत्कंठा बढ़ती गई और विभिन्न विषयों के बारे में कुछ और जानने की इच्छा बची न रह गई, क्योंकि जिस प्रश्न का उत्तर इन्होंने दिया है उसमें कंजूसी नहीं की है, बल्कि प्रष्टाओं को पूरी तरह संतुष्ट करने की कोशिश की है। वैचारिक विषय के तहत देश की समस्त समस्याओं के समाधान से संबंधित प्रश्न के उत्तर में सिद्धेश्वर जी ने वैचारिक क्रांति की लौ जलाने की बात जिस लहजे में की है वह काबिलेतारीफ है। गौर करें आप भी-

'मैं भी महसूस करता हूँ कि यहाँ के लोगों में मानवीय गरिमा के अनुरूप मर्यादाओं का पालन करने के साथ-साथ वर्जनाओं का अनुशासन अपनाने के लिए हर किसी को बाधित किया जाए। इसके लिए हमें व्यापक विचार क्रांति की तैयारी करनी होगी और समझदारों के सिर पर चढ़ी हुई नासमझी का उन्माद उतारना होगा। आज जरूरत इस बात की है कि लोहा

से लोहा काटने और काँटा से काँटा निकालने की नीति अपनानी होगी। सद्विचारों का इतना उत्पादन और वितरण करना पड़ेगा कि शोक, संताप कहीं ढूंढ़े ना मिले।' इतनी सशक्त अभिव्यक्ति और सटीक उत्तर बहुत कम रचनाकारों के पास होते हैं। इनके सभी उत्तर ज्ञानवर्द्धक तो हैं ही विविधता से परिपूर्ण भी हैं। इसके अतिरिक्त उत्तर प्रायः मानवीय पीड़ा की सिसकियों से भरे हैं।

सिद्धेश्वर जी ने उत्तर देने और लेखन के साथ कभी समझौता अथवा दुराव-छिपाव नहीं किया है। इसलिए इनके सामने प्रस्तुत प्रश्नों के उत्तर से जहाँ हमें ज्ञान और जानकारी मिलती है, वहीं गौरव का भी अनुभव होता है, क्योंकि उन्होंने हमारे मन और मस्तिष्क दोनों को हिलाकर रख दिए। इनके उत्तर से स्पष्ट झलकता है कि लोग कितने संवेदनशून्य हो गए हैं और प्रेम, सद्भाव, मानवता एवं मूल्य सिर्फ नाम के रूप में विद्यमान हैं। उत्तर यथार्थवादी और मर्मस्पर्शी तो हैं ही दिशा सूचक भी हैं। यह मानव जीवन के बिगड़े हुए स्वरूप के दर्शन कराते हैं और इनमें भाव बहुत प्रबल है।

सिद्धेश्वर जी के द्वारा प्रस्तुत उत्तर भी अपने आप में स्वतंत्र लेख जैसे हैं और रचनात्मक आस्वाद से भरपूर हैं, क्योंकि प्रश्नोत्तर में अनुभव और भाषा की ताजगी के बीच ऐसे अंशवाक्य और बिम्ब आते हैं जो संपूर्ण उत्तर को अर्थ प्रदान करते हैं। कृति के प्रश्नोत्तर संसार वैविध्यपूर्ण हैं जिनसे पाठकों को भविष्य का मार्ग इन्हीं के बीच कहीं तलाशना होगा।

सिद्धेश्वर जी के उत्तर की भाषिक जादूगरी तो सम्मोहक है ही, आत्मिक ऊर्जा, विवेक और मानवीय संवेदना अद्वितीय तथा उत्तर इनके गंभीर चिंतन-मनन के सुपरिणाम हैं। भारतीय वैचारिकता को बढ़ाने में इनके विचारों से पर्याप्त मदद मिल सकती है। दरअसल, विद्वानों द्वारा विभिन्न विषयों पर पूछे गए प्रश्नों के उत्तर सिद्धेश्वर जी के बहुआयामी व्यक्तित्व को सार्थक ढंग से अभिव्यक्त करते हैं। साक्षात्कार के आधार पर तैयार इनकी पाँचों कृतियों में संगृहीत उत्तरों से गुजर कर मैंने जाना कि सिद्धेश्वर जी भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग के एक वरिष्ठ लेखा परीक्षा अधिकारी के रूप में अंकों से खेलने वाले शख्स का ही नहीं, बल्कि जन-जन के मानस में गहरी पैठ रखने वाले एक बेहद रचनात्मक व्यक्ति का नाम है। इनके उत्तर न केवल समय, समाज और राजनीति के प्रति उनकी जागरूकता और समाज को दर्शाते हैं, बल्कि उनके वैचारिक और रचनात्मक धरातल का पता चलता है। सच कहा जाए, तो सारे उत्तर उनके भीतर बैठे

भावुक और संवेदनशील सिद्धेश्वर जी का खाका खींचते हैं। यद्यपि हर वैयक्तिकता का विस्तार ही समाज की व्याप्ति में होता है. पर सिद्धेश्वर जी की अनुभूतियाँ जैसे लोक में पहले से ही ढलकर सार्वजनिकता का रंग लिए हुए ही साक्षात्कार और प्रश्नोत्तर की दुनिया में दाखिल होती हैं और हमारे जैसे अनेक रचनाकारों के मनोमस्तिष्क और संवेदनाओं में स्थायी प्रभाव रच देती हैं तथा विचारों को बार-बार कुरेदती हैं। सिद्धेश्वर जी के उत्तरों में यह आवेशित नहीं, बल्कि उनकी संवेदना में गहरे रचे-बसे होने का सच है और सच यह भी है कि उत्तर में उत्तरदाता की प्रतिभा उभरकर सामने आई है।

सिद्धेश्वर जी के उत्तर से यह स्पष्ट झलकता है कि आम आदमी और समाज के दु:ख-दर्द एवं भाव को भी अच्छी तरह महसूसते और समझते हैं। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय, राजनीतिक एवं वैश्विक मुद्दों की भी इनकी समझ काबिलेतारीफ है। जीवन, समाज और संस्कृति पर इनका दृष्टिकोण जीता-जागता है, मगर अब संस्कृति धीरे-धीरे छीजती जा रही है और यह सभ्यता और संस्कृति से मानवीय तत्वों का लोप होना भी है। मनुष्य के भाव, विचार और संवेदनशीलता जीवाश्म के रूप में सुरक्षित नहीं रहते, इसके लिए समाज, संस्कृति और मनुष्य की संवेदनशीलता का बचा रहना जरूरी होता है, तभी रचनात्मक भविष्य की निर्मिती संभव होती है।

यूँ तो सिद्धेश्वर जी नैतिक मूल्यों और परंपराओं के पोषक हैं, किंतु वस्तुत: वे ऐसे नैतिक मूल्यों और परंपराओं का त्याग करना आवश्यक समझते हैं जब वैसी हर परंपराएँ आती जाती साँस के लिए बेड़ियाँ बन जाती हैं। हाँ, इतना जरूर है कि सिद्धेश्वर जी के संस्कारों में जब रचे-बसे आदर्श और नैतिकता है तब व्यवहार में यह आदर्श और नैतिकता उनके कर्म को मर्यादित करती हैं।

वैसे तो सिद्धेश्वर जी ने अबतक साहित्य की कई विधाओं में सृजन किया है। कविता विधा में खासतौर पर हाइकु और सेन्र्यू, निबंध, संस्मरण आदि पर इनकी डेढ़ दर्जन रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं, किंतु साक्षात्कार के आधार पर तैयार इनकी नवीनतम पाँच पुस्तकें हैं जिनमें से 'हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर' कृति का संपादन पटना विश्वविद्यालय के पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ. बलराम तिवारी जी ने किया है और बाकी चार पुस्तकों में 'इंसानियत की धुँआती आँखें', 'उम्मीद जताते न्यायिक एवं आर्थिक फैसले', 'राष्ट्रीय राजनीति' और 'वैश्विक कूटनीति' हैं जिनमें साक्षात्कार के दौरान सिद्धेश्वर जी द्वारा दिए गए कुल एक हजार एक सौ ग्यारह संगृहित प्रश्नोत्तरों

के माध्यम से हम एक भरी-पूरी दुनिया से रू-ब-रू होते हैं और उनके रोचक एवं प्रेरणादायी उत्तरों से भरपूर पाँचों पुस्तकें मानसिक पौष्टिकता को बरकरार रखते हैं।

सिद्धेश्वर जी के उत्तर इतने प्रभावशाली हैं कि व्याख्या करने या अभिमत देने के लिए दो-चार नहीं अनेक पृष्ठ चाहिए, पर पुस्तक के पृष्ठों की भी एक सीमा के तहत रहना है। बहरहाल, मैं इतना बता दूँ कि इनके उत्तर भारतीय संस्कृति और लोक संस्कृति से तो परिचित कराते ही हैं, साथ ही वे हमें धर्म, भाषा, संप्रदाय और जाति को लेकर कट्टरता का रवैया न अपनाने की सीख भी देते हैं जिसे धार्मिक, आध्यात्मिक, साहित्यिक, व्यक्तिगत, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, वैचारिक, प्राकृतिक, नैतिक एवं वैश्विक विषयों से संबंधित प्रश्नों के उत्तर में आसानी से देखे जा सकते हैं। उत्तर के अंदर जो साहित्यिक विचारात्मक आभूषण हैं वे अनोखे हैं और परत-दर-परत हटाकर नग्न कटू वास्तविकता को सामने रख देते हैं। सत्साहित्य धीरज और गहन अध्ययन माँगता है जिसके प्रत्यक्ष साक्षी हैं इन साक्षात्कारों के दौरान विद्वान प्रष्टाओं द्वारा इनके समक्ष प्रस्तुत प्रश्नों के उत्तर।

इतने खूबसूरत विचारों के साहित्यिक स्वरूप की बुनियाद पर लोकहित एवं देशहित के पक्ष में इन बौद्धिक विचारों के 'हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर' नाम्नी पुस्तक के विद्वान संपादक डॉ. बलराम तिवारी तथा उप संपादक डॉ. अरुण कुमार भगत, सहायक संपादक डॉ. शाहिद जमील, विजय कुमार सिंह, सतीश सागर, अखिलेश्वर प्रसाद तथा रामविलास मेहता ने अपनी बौद्धिकता का परिचय दिया है जिसके लिए उन सभी लोगों को साधुवाद एवं बधाई। शेष चार पुस्तकों के रचयिता और नायक सिद्धेश्वर जी को हमारी शुभकामना। इतनी अच्छी कृतियों के लिए इन्हें हार्दिक बधाई और दीर्घायु की मंगलकामना। साक्षात्कार विधा की इन पुस्तकों का साहित्य-जगत में जोरदार स्वागत होगा, ऐसी मेरी शुभाशंसा है।

संपर्क:
दूरभाष- 01662-238720
मो.- 8053545632

डॉ. राम निवास 'मानव'
पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष
स्नातकोत्तर हिंदी विभाग,
पीआरएम महाविद्यालय, हिसार,
हरियाणा

शुभाशंसा

कृति में उभरा है राजनीति सहित समाज का विश्लेषणात्मक पक्ष

□ डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार

कोई भी व्यक्ति अनेक स्तरों पर सक्रिय रहकर सारे काम एक साथ कर सकता है, सिद्धेश्वर जी इसके ज्वलंत उदाहरण हैं, क्योंकि आप एक सम्मानित सामाजिक कार्यकर्ता तो हैं ही, साहित्य एवं पत्रकारिता में भी इनकी अभिरुचि सराहणीय है। देश के प्रबुद्धजन, साहित्यकार, पत्रकार और राजनेता बहुत सम्मान और आदरभाव से सिद्धेश्वर प्रसाद को 'सिद्धेश्वर जी' कहते हैं। पश्चिमी ज्ञान और उपभोक्तावादी संस्कृति की चकाचौंध इन्हें अन्य प्रबुद्धजनों की तरह कभी गुमराह नहीं कर सकी। साहित्य सृजन और संगठन का काम करते हुए भी सिद्धेश्वर जी राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक संस्था- 'राष्ट्रीय विचार मंच' और दिल्ली से प्रकाशित उसके मुख पत्र 'विचार दृष्टि' के माध्यम से देशवासियों में राष्ट्र निर्माण की चेतना जागरित करने का इनका प्रयास स्वागत योग्य है। दिल्ली में रहकर मंच का संचालन और उसके मुख पत्र का प्रकाशन करने के सिलसिले में प्रभाष जोशी तथा आलोक मेहता जैसे एक से बढ़कर एक दिग्गज साहित्यकारों एवं पत्रकारों को सुनने-समझने के साथ-साथ उनमें से कई साहित्यकारों एवं पत्रकारों का सान्निध्य इन्हें मिला।

सिद्धेश्वर जी को हम प्रगतिशील लेखक के रूप में इसलिए मानते हैं, क्योंकि इन्होंने हमेशा वर्गहीन समाज का सपना देखते हुए अपने साहित्य में मजदूरों, किसानों, ग़रीबों, असहायों, निर्बलों तथा समाज के हाशिए पर पड़े लोगों की चिंता की है। दरअसल, साहित्यकार को अपने भीतर और बाहर कुछ कभी महसूस होती है जिसकी पूर्ति के लिए उसकी आत्मा बेचैन रहती है। समाज को वह सुख, शांति और आजादी की जिस अवस्था में देखना चाहता है, वह उसे नजर नहीं आता है। इसलिए मानसिक और सामाजिक रूप से समाज की वर्तमान अवस्थाओं से उसका मन कुढ़ता रहता है। अपनी कृति 'आम आदमी की आवाज' में समाज की अवस्था के लिए वह राजनीति और राजनेताओं को भी बहुत कुछ जिम्मेदार मानते हैं। तभी तो वह

कहते हैं-'सत्ता का समाजशास्त्र रचने वाली जनता जनार्दन राजनेताओं के पाखंड और व्यभिचार से बच नहीं पाती। सामाजिक कार्यकर्ता और लेखक होने के नाते इस यथार्थ को मैं महसूस करता हूँ कि नैतिकता और आदर्श जहाँ हमारे संस्कारों में रचे-बसे हैं, वहीं व्यवहार में यह आदर्श और नैतिकता हमारे कर्म को मर्यादित करती है, मगर हमारी दमित इच्छाएँ तृप्ति के लिए मनोलोक का सहारा लेती हैं। जिंदगी और मौत के सायों से घिर इंसान कभी इससे निरपेक्ष, कभी तटस्थ और कभी उसकी भयावहता से त्रस्त चिंता और खामोशी में डूबता चला जाता है। राजनीति की ऐसी स्थिति है कि उनके दुख को सहलाने वाला, उसपर अपने संवेदना का मरहम रखने वालास नहीं है कोई।'

सिद्धेश्वर जी की अधिकांश कृतियाँ पाठकों के साथ-साथ रचनाकारों के समक्ष एक नवीन सोच, नवीन ऊर्जा प्रवाह और नवीन विश्लेषण से साक्षात्कार कराती हैं। सामयिकता की प्रखरता और भविष्य की तस्वीर इनकी रचनाओं की मुख्य धुरी है। मौजूदा दौर की भारतीय राजनीति पर केंद्रित पुस्तक 'आम आदमी की आवाज' में राजनीति संहित समय और समाज का अहम विश्लेषणात्मक पक्ष उभर कर सामने आया है। इसी प्रकार 'हमें अलविदा ना कहें' नामक इनके संस्मरणात्मक निबंध संग्रह में हमारे बीच अब नहीं रहे कई अहम साहित्यकार, कलाकार, पत्रकार, राजनीतिज्ञ तथा समाजसेवियों की रचनात्मक व सकारात्मक उपादेयता की स्मृति के आलोक में श्रद्धांजलि अर्पित की गई है। इधर हाल के वर्षो में प्रकाशित सिद्धेश्वर जी के साक्षात्कार के दौरान इनके एक हजार एक सौ ग्यारह प्रश्नोत्तर से राजनीति, साहित्य, समाज, संस्कृति, पत्रकारिता आदि विभिन्न विषयों पर जहाँ इनकी गहरी पकड़ का सहज अंदाजा लगाया जा सकता है, वहीं प्रश्नोत्तर इनके रचनाकर्म के मर्म को समझने के नए द्वार खोलते हैं। साक्षात्कार के दौरान साहित्य, शिक्षा, भाषा और नैतिकता से संबंधित प्रष्टाओं के द्वारा इनसे पुछे गए अनेक प्रश्नों के उत्तर सिद्धेश्वर जी ने दिए हैं जिन्हें संगृहीत कर पटना विश्वविद्यालय के पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ. बलराम तिवारी द्वारा संपादित 'हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर' नाम्नी पुस्तक तैयार की गई है। यह पुस्तक अपने-आप में इनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालती है।

इसमें तनीक संदेह नहीं कि बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष का पद स्वेच्छा से छोड़ने के बाद से सिद्धेश्वर जी द्वारा विरचित तकरीबन आधा दर्जन पुस्तकों के प्रकाशन से न केवल हिंदी साहित्य के लेखकों को,

बल्कि पाठकों एवं शोधकर्ताओं को भी सुविचारित, सुगंभीर, सुसिंचित रचनाशीलता से परिचय कराने में इन्होंने अपनी अलग किस्म की भूमिका निभाई है जिसकी प्रतीक्षा अब तमाम लेखकों-पाठकों को रहती है। मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि रचनात्मक गंभीरता को बिना प्रभावित किए रचनाशीलता में पठनीयता को प्रमुखता देने का सिद्धेश्वर जी का यह प्रयास स्तुत्य कहा जाएगा। कुल मिलाकर देखा जाए, तो इधर हाल की इनकी कृतियाँ लेखकों-पाठकों के बीच एक सेतु बनाने की दिशा में प्रेरणा देने का काम कर रही हैं। जाहिर है इस रचनाकार की चिंतनशीलता का दायरा पहले से अब कहीं और विस्तृत हो गया है जिसकी शुभाशंसा किए बिना मैं नहीं रह सकता, क्योंकि इनकी कृतियाँ हमारे अंदर की अवरूद्ध भावनाओं को उजागर और उद्वेलित करने के अमोघ अस्त्र तो हैं ही, लेखक ने अपनी रचनाओं में समकालीन भावनाओं का प्रभावी रूप से चित्रण किया है।

सामाजिक उपादेयता की सदैव चिंता कर रहे सिद्धेश्वर जी ने साहित्य और संगठन के जरिए समाजोत्कर्ष में अपना सारा जीवन लगा दिया है। आपके जीवन को सदैव वैशिष्ट्य की तलाश रही। आपको अपने जीवन में हमेशा श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर और श्रेष्ठतर से श्रेष्ठतम बनने एवं करने का जुनून रहा और आप छद्म से सदैव दूर रहे। परिस्थितियों को देखते हुए तुरन्त निर्णय लेने की क्षमता इनमें है। बँधे-बँधाएँ साँचों में वे अपनी अलग नीतियाँ निर्धारित करने की क्षमता रखते हैं। आपने देखा नहीं बिहार विधान सभा के विगत 2015 के चुनाव के वक्त जैसे ही बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने भ्रष्टाचारियों एवं घपले-घोटाले में आकंठ डूबे राजनीतिक दलों एवं उसके नेताओं के साथ गलबहियाँ की, तो सिद्धेश्वर जी ने उसका न केवल मुखालफत किया, बल्कि सभा-संगोष्ठियों में उनके इस कदम की आलोचना करते हुए उन्हें चेतावनी भी दी कि इस बेमेल गठबंधन के लिए उन्हें पछताना पड़ेगा और भ्रष्टाचारी उनकी एक न चलने देंगे, क्योंकि इनका उस समय भी मानना था कि जिस नेता को सदैव अपने वंश और परिवार की चिंता रहती है वे भला नीतीश जी को क्यों तरजीह देंगे। राजनीति पर बेबाक टिप्पणी देने वाले सिद्धेश्वर जी को प्रायः सभी दलों के नेता इन्हें अच्छी तरह पहचानते हैं। आखिर तभी तो बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष पद पर रहते हुए इन्होंने बड़े से बड़े ओहदेवाले नेताओं की एक न सुनी और उनकी पैरवी को नजरअंदाज किया जिसका मैं प्रत्यक्ष साक्षी रहा हूँ। यही वजह है कि बोर्ड के तीन साल तक अध्यक्ष का दायित्व का निर्वहण कर उन्होंने

स्वेच्छा से पद छोड़ दिया, क्योंकि वर्तमान दौर की राजनीति के दलदल में वे फँसना नहीं चाहते थे। इस प्रकार जीवन की तपती आँच को उन्होंने प्रत्येक क्षण महसूस किया है। यही वजह है कि न तो उन्होंने कभी किसी के अधिकारों पर हस्तक्षेप किया है और ना ही किसी को अपने अधिकार में हस्तक्षेप करने दिया है। हाँ, इतना जरूर है कि दूसरों की निजता का उन्होंने हमेशा आदर सत्कार किया है और अपनी सारस्वत साधना में परम जीवन्तता का परिचय देकर उन्होंने एक अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया है। रचना संसार में सामाजिक एवं साहित्यिक चेतना के ऐसे संवाहक को इनकी विभिन्न विषयों से संबंधित कृतियों के साथ-साथ राजनीति पर इनकी इतनी अच्छी पकड़ के लिए मैं हार्दिक बधाई देता हूँ और दीर्घायु होने की कामना करता हूँ।

स्थानीय पता:
75 सी., पाटलिपुत्र कॉलोनी
पटना

डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार
पूर्व कुलपति
कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय
दरभंगा, बिहार

शुभाशंसा

प्रश्नोत्तर में जीवन की उत्कट-तीव्रता और अनुभव की तीव्र-तीक्ष्णता

□डॉ. लखन लाल सिंह 'आरोही'

सिद्धेश्वर जी समाज के प्रबुद्धजनों से लेकर सामाजिक एवं राजनीतिक कार्यकर्ताओं तक के दिलों की धड़कन हैं और आज भी सभा-संगोष्ठियों में मुक्त भावों के साथ सुने जाते हैं, क्योंकि वे उन्हें नेह की डोर से बाँधे हैं। समाज, साहित्य और पत्रकारिता में किया गया इनका योगदान अविस्मरणीय के साथ-ही-साथ प्रतियोगितात्मक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। सिद्धेश्वर जी अपनी कृतियों में विविध आयामों को दर्शाया है, जिसे पढ़कर इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि देश और समाज की दुर्दशा को देखने, परखने और साहित्यिक कृतियों के रूप में पाठकों के समक्ष रखने के लिए इस लेखक के पास एक बहुआयामी और जनोन्मुखी अंर्तदृष्टि है।

सिद्धेश्वर जी की 'जीवन-रागिनी' नाम्नी आत्मकथा मनभावन इसलिए लगी, क्योंकि यह प्रतिष्ठित साहित्यकार एवं पत्रकार अपनी उम्र का 77वाँ पड़ाव पार कर रहे इनकी जीवन यात्रा पर केंद्रीत है और इस प्रतिभाशाली व्यक्तित्व से जुड़ी यादें मन को छू गईं। दरअसल, साहित्यिक पठनीयता सूधी पाठकों की संवेदनशीलता पर निर्भर करती है। उसका रचनाकार से भावात्मक तादात्मय होता है। कलम के धनी शब्द साधक सिद्धेश्वर जी द्वारा लिखित आत्मकथा में इनके बचपन से लेकर आज तक की जीवन-यात्रा तारतम्यता के साथ रेखांकित है जो रोचक तो है ही गुणवत्तापूर्ण भी।

प्रस्तुत आत्मकथा बहुत प्रभाव डालने वाली है पाठकों पर, क्योंकि सिद्धेश्वर जी ने इसे गहराई से लिखा है। इस आत्मकथा की यह खूबी है कि केवल प्रचलित-प्रचारित पर ही मुकुट पहनाकर, ताली बजाकर भीड़ का हिस्सा बनने की बजाय वक्त की धूल और गर्दिश की धुएँ को हटाकर पाठकों को चमकदार साहित्यिक रत्नों से रू-ब-रू कराती है। आत्मकथाकार ने बड़ी मार्मिक और हृदय में प्रवेश करने वाली बात-भावना

को प्रस्तुत किया है। यह आत्मकथा इनके जीवन संगीत से परिपूर्ण है और पाठक को अंत तक अपने सम्मोहन में बाँधे रखती है। हास्य और मार्मिकता दोनों तत्वों से मिलकर बनी यह आत्मकथा हँसते-हँसाते अचानक मर्म को छू लेती है और एक पाठक भी आत्मकथाकार की तरह ही गंभीर हो उठता है, क्योंकि उनके जीवन और कर्म से जुड़े अनेक छुए-अनछुए हुए पहलुओं से अवगत कराया गया है। भारतीय संस्कृति के सौन्दर्य से सजी और कला से लेकर साहित्य की विभिन्न विधाओं का यह सुन्दर गुलदस्ता है जो देर तक और दूर तक महकता है।

जहाँ तक साहित्य की साक्षात्कार विधा का सवाल है सिद्धेश्वर जी से किए साक्षात्कार के दौरान प्रष्टाओं के प्रश्नोत्तर को संग्रहित कर पाँच पुस्तकें तैयार हैं। जबतक साक्षात्कार में तर्को और तथ्यों का समावेश न हो, तबतक उसमें रोचकता नहीं आती। एक प्रश्नावली तैयार कर लेने भर से साक्षात्कार नहीं हो जाता। साक्षात्कर्ता को चाहिए कि साक्षात्कृत व्यक्ति को प्रश्नों के ब्यूह में बाँधकर अपने मतलब की बात निकाल ले, जिसमें डॉ. अरुण कुमार भगत, कुमार शैलेन्द्र, डॉ. ब्रह्मचारी, सुरेन्द्र कुमार, डॉ. बलराम तिवारी, रामविलास मेहता, डॉ. शाहिद जमील, डॉ. आनंदवर्द्धन, अर्जुन भाई, अवधेश जी, मनोज कुमार, मदन कुमार, नृपेन्द्र प्रति तिवारी, अखिलेश्वर प्रसाद, डॉ. अमलेश वर्मा जैसे प्रष्टा सफल दिखाई देते हैं।

आंतरिक उथल-पुथल को समझने और इस समझ से संकल्पबद्ध होकर निकलने का एक तरीका यह है कि हम किसी समझ-बूझ वाले प्रबुद्धजन के समक्ष अपने प्रश्न प्रस्तुत कर उनसे उत्तर की अपेक्षा करें। उनके उत्तर से संतुष्ट न होने पर भी प्रश्नकर्ता उनसे जुड़ा होता है। बहुत गंभीर और जिम्मेदारी से प्रश्नतकर्ता धीरे-धीरे बाहर और भीतर की लड़ाइयों को समझ लेते हैं और यह प्रश्नोतरी निकटतम अतीत की पड़ताल, वर्तमान संकटों की समझ और आगे के दिशा निर्धारण का एक साधारण प्रयास है जिसे संवाद भी कह सकते हैं। मै मानता हूँ कि प्रश्न ही चीजों को समझने और सुलझाने की पहली सीढ़ी है। इस लिहाज से साक्षात्कृत सिद्धेश्वर जी ने भी प्रष्टाओं की अनेक आशंकाओं एवं अब तक अलक्षित तथ्यों का तर्कपूर्ण उत्तर देने में सफल हुए हैं और प्रश्नोत्तर को संग्रहित करने के बाद पाँच पुस्तकें प्रकाशित कर एक बेहतरीन थाती को संजोया है। इन्होंने भारतीय समाज और राष्ट्रीय राजनीति एवं अंतरराष्ट्रीय कूटनीति सहित न्यायिक एवं आर्थिक फैसले के सामाजिक चेतना को स्वीकृत करा के राष्ट्रवादी संस्कार

के स्वरूप में प्रज्ज्वलित करने की रचनात्मकता को निर्धारित किया है। इतिहास और वर्तमान के पूरे सच को समझने के लिए पाठकों का ध्यान साहित्यिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, वैचारिक पत्रकारिता एवं नैतिक स्तरों पर लोगों के व्यवहार सदियों से चली आ रही कहावतों, मुहावरों, रंग एवं सामाजिक भेदों आदि का विस्तृत वर्णन कर लेखन की चेतना को ताकत प्रदान की है। आखिर तभी तो आजादी के सत्तर वर्ष पूरा होने के बाद सारी स्थितियों को समझने का प्रयास करते हुए साहित्यिक-सामाजिक एवं राजनीतिक स्रोतों पर विचार करना जरूरी लगता है, ताकि अहिंसक रूप से जितना संभव हो सके खुलकर जन-संघर्ष के लिए लोगों को प्रेरित किया जा सके।

वस्तुतः सिद्धेश्वर जी ने अपने उत्तर में प्रस्तुत सोच और विश्लेषण के जरिए नई पीढ़ी को नई दिशा में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करने का प्रयास किया है। इस दृष्टि से देखा जाए तो इनके उत्तर बताते कम हैं, मगर जताते-जगाते ज्यादा हैं। सिद्धेश्वर जी हमारे समय की पूर्व निर्धारित विचार प्रणाली से मुक्त वास्तविक अनुभूति के रचनाकार हैं। समय बोध के प्रति सदैव सचेत रहने वाले सिद्धेश्वर जी सरल स्वभाव के विरल व्यक्ति हैं। अक्षरों के लिए भी उनके यहाँ पर्याप्त समय और जगह है। वे अपने किसी भी साधारण अनुभव को असाधारण अभिव्यक्ति प्रदान कर देने में सिद्धहस्त हैं। उनकी कृतियों और साक्षात्कार के दौरान प्रस्तुत उत्तर में जीवन की उत्कट-तीव्रता और अनुभव की तीव्र-तीक्ष्णता दिखाई देती है। इस मायने में सिद्धेश्वर जी हमारे समय की ऐंद्रिय बोध-चेतना और अभिव्यक्ति की असाधारणता के साहित्यकार हैं। कहने की ज्यादा जरूरत नहीं है कि प्रखर मानवतावादी विचारक सिद्धेश्वर जी से बहुत कुछ सीखा-समझा जा सकता है। सामान्य बातचीत और दूरभाष- चर्चाओं में उनकी प्रतिबद्धता तथा सक्रियता प्रायः देखी जाती रही है। देश, काल और परिस्थिति के मुताबिक इनकी कृतियों में खासतौर पर 'राष्ट्रीय राजनीति', 'आम आदमी की आवाज' और 'वैश्विक कूटनीति' में राजनीतिक हस्तक्षेप की सघनता का विचार-विस्तार साफ-साफ देखा जा सकता है। दुःख, दर्द, प्रेम, वात्सल्य, संघर्ष और विरोधाभासी विडंबनाएँ इनकी रचनाओं में बेहद ही सहज हैं। सिद्धेश्वर जी तथाकथित संभ्रांतता से मुक्त हमेशा प्रतिष्ठा के प्रति सजगता और निडरता से भरे रहते हैं। यही उनके व्यक्तित्व की मासूमियत भरी खास पहचान बन गई है। किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व उसके कर्मों से निखरता है। सिद्धेश्वर जी का

व्यक्तित्व उनके अच्छे कर्मों का ही प्रताप है कि उन्हें लोग सम्मान व प्रतिष्ठा देते हैं। इनके जीवन का रहस्य ईमानदारी और निष्पक्ष आचरण है। आखिर तभी तो प्रस्तुत आत्मकथा के तीसरे अध्याय में अपने दाम्पत्य जीवन के प्रसंग में अपनी अर्द्धांगिनी के बारे में सिद्धेश्वर जी कहते हैं- 'मेरी अर्द्धांगिनी निरर्थक आस्थाओं से भ्रमित नहीं हैं और न अर्थ की दृष्टि से बंदनी। उन्होंने अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति से हमारे सपनों को सप्त रंग देकर नई राहें खोली हैं जिसके परिणामस्वरूप मेरे पास कामयाबी के शिखर को छूने की अपार क्षमता आई।'

मुझे लगता है सिद्धेश्वर जी ने अपनी आत्मकथा के माध्यम से जो संवाद बनाया है और नई संभावनाएँ तलाशी हैं वह ज्ञान के विस्तार के एक महत्वपूर्ण कड़ी हो सकती है और हम अपने आपको आधुनिक और प्रासंगिक बनाए रख सकते हैं। आत्मकथाकार ने अपने निजी अनुभवों को लेकर नई जानकारियाँ और नई दृष्टि दी है। इसी प्रकार साक्षात्कार के दौरान प्रस्तुत प्रश्नों के उत्तर में इन्होंने सजीव और प्रेरक विवरण प्रस्तुत किया है। निश्चय ही आत्मकथा के साथ साक्षात्कार की पाँच पुस्तकों का प्रकाशन भारत से जुड़े साहित्य को समृद्ध करने का कार्य किया है। मेरे ख्याल से नए भारत के निर्माण के लिए इनके साहित्य को जन-जन तक पहुँचाने की आवश्यकता है। इस बात पर गंभीरतापूर्वक विचार किया जाना चाहिए कि इस वटवृक्ष की शाखाएँ दूर-दराज के क्षेत्रों में कैसे पहुँचे, ताकि इस समृद्ध साहित्य का लाभ समाज के आखिरी जन को भी मिल सके। इन पुस्तकों में सिद्धेश्वर जी द्वारा प्रस्तुत बहुमूल्य विचारों और मार्गदर्शन के लिए मैं इन्हें हार्दिक बधाई देता हूँ। इन पुस्तकों का प्रसार ज्यादा से ज्यादा हो तथा लेखक दीर्घायु हों इसके लिए हमारी मंगलकामना है।

संपर्क:
पूर्व प्राध्यापक, हिंदी विभाग
तिलकामांझी विश्वविद्यालय, भागलपुर
ग्राम- पत्रा.-
जिला-बाँका (बिहार)
मो.

डॉ. लखन लाल सिंह 'आरोही'
अध्यक्ष, अंगिका अकादमी
बिहार, पटना

प्रथम अध्याय
न्यायिक प्रश्नोत्तर

(1)प्रश्नः क्या राष्ट्रीय एकता के लिए समान नागरिक संहिता बनाने की आवश्यकता आप महसूस करते हैं? यदि हाँ, तो क्यों?

उत्तरः संविधान के अनुच्छेद 44 कहता है कि सरकार सभी नागरिकों के लिए समान नागरिक कानून लागू करने का प्रयास करेगी। यह व्यवस्था देश में बढ़ रही सांप्रदायिकता से मुकाबले में भी कारगर साबित हो सकती है। राष्ट्रीय एकता के लिए समान नागरिक संहिता की आवश्यकता है, क्योंकि समान नागरिक संहिता के अभाव में महिलाओं और विशेष रूप से ईसाई और मुस्लिम समाज की महिलाओं के अधिकारों का हनन हो रहा है। संविधान निर्माताओं की ओर से भी यह स्पष्ट कहा गया था कि देश के सभी नागरिकों के लिए समान नागरिक संहिता बनाने का प्रयास करना होगा, मगर आजादी के अड़सठ साल बीत जाने के बाद भी आजतक समान नागरिक संहिता नहीं बन पाई है।

दरअसल, समान नागरिक संहिता बनाने की बात तो एक लंबे अरसे से की जाती रही है, मगर जब आम सहमति बनाने की बारी आती है, तो आम तौर पर भाजपा को छोड़कर प्रायः अन्य सभी राजनीतिक पार्टियाँ किंतु-परंतु के साथ हीला-हवाला करने लगती हैं। इतना ही नहीं कुछ दल तो यह दुष्प्रचार करने में जुट जाते हैं कि समान नागरिक संहिता की आड़ में भाजपा विवाह, तलाक, उत्तराधिकारी आदि के मामले में अन्य धर्मावलंबियों को एक ही कानून से बाँध देना चाहती है। सच तो यह है इसी के साथ तुष्टीकरण की राजनीति ने भी जन्म ले लिया। बीच-बीच में सर्वोच्च न्यायालय ने भी कई बार समान नागरिक संहिता की जरूरत पर जोर दिया, लेकिन कोई भी सरकार इस दिशा में आगे नहीं बढ़ी और ठीक इसके विपरीत 1985 में सर्वोच्च न्यायालय ने जब शाहबानो के चर्चित मामले में मुस्लिम महिलाओं के लिए भरण-पोषण का अधिकार सुनिश्चित किया तो काँग्रेस की तत्कालीन सरकार ने संविधान में संशोधन के जरिए सर्वोच्च न्यायालय के फैसले को पलट दिया।

इन परिस्थितियों में यह आवश्यक है कि सर्वोच्च न्यायालय ही अपनी ओर से कोई ठोस पहल करे। मुझे तो कोई उचित नहीं लगता कि विवाह, तलाक, संपत्ति, बच्चों की देखभाल, गुजारा-भत्ता आदि के मामले में

अलग-अलग समुदायों के लिए अलग-अलग कानून हों। यदि राजनीतिक पार्टियाँ वोट बैंक और तुष्टीकरण की राजनीति का परित्याग करे, तो सभी समुदायों की धार्मिक-सांस्कृतिक स्वतंत्रता का सम्मान करते हुए सर्वमान्य समान नागरिक संहिता का लक्ष्य हासिल किया जा सकता है। इस लक्ष्य को हासिल करने से अनेक सामाजिक समस्याओं का समाधान भी किया जा सकता है। देश में बढ़ रही सांप्रदायिकता के दांत तोड़ने के लिए भी समान नागरिक संहिता बेहद जरूरी लगती है।

समान नागरिक संहिता का होना किसी भी देश के लिए एक आदर्श स्थिति है, मगर यदि यह इतना आसान होता, तो क्या अब तक लागू नहीं हो गया होता? जहाँ तक इस देश का सवाल है अभी तो स्थिति यह है कि अलग-अलग रीति-रिवाजों और परंपराओं के आधार पर बने कानूनों को सीधे धार्मिक पहचान से जोड़कर देखा जाता है और इन्हें हटाने के प्रस्ताव को बहुसंख्यक वर्चस्ववाली राजसत्ता की ज्यादती की तरह पेश किया जाता है। समान नागरिक संहिता को लेकर देश के अल्पसंख्यकों के मन में भी कई तरह की शंकाएँ हैं। अफसोस है कि आजादी के बाद से अबतक किसी भी सरकार ने इन शंकाओं को दूर करने की कोशिश नहीं की।

समान नागरिक संहिता लागू होने का मतलब सिर्फ इतना है कि धर्म के नाम पर सदियों पहले बनाए गए कानून का पालन होना बंद हो। देश को आधुनिक, निष्पक्ष और मजबूत समान नागरिक संहिता की बहुत जरूरत है। सरकार का यह दायित्व है कि वह लोगों को इस बारे मे जागरूक करे और शंकाओं को दूर करे। समान नागरिक संहिता आने से महिलाओं को भला होगा। परंपराओं को कानून में ढालने से किसी भी देश या समुदाय का सिर्फ नुकसान ही हो सकता है, क्योंकि परंपराएँ मिटने के डर से बदलती नहीं और समाज अगर बदलता नहीं, तो मिट जाता है।

(2)प्रश्नः भारतीय न्यायिक व्यवस्था का भारत में कानून व्यवस्था स्थापित रखने में अबतक का क्या योगदान रहा है? अँग्रेजों द्वारा बनाए गए ज्यादातर कानून भारतीय व्यवस्था में अबतक उनके प्रयोग को किस हद तक सफल माना जा सकता है और उसका भारतीयकरण कहाँ तक हो पाया है? न्याय प्रक्रिया में पुलिस की भूमिका आज कितनी असरदार है?

उत्तरः औपनिवेशिक कानून और अधिकारों से लैस पुलिस न्याय की पहली और आखिरी अदालत है, क्योंकि पंक्ति के आखिरी छोर पर खड़े दलित,

शोषित, पीड़ित, आदिवासी और निरीह जनता के पास महंगी और विलंबकारी न्याय व्यवस्था में जाने की न तो समझ है और न ही विकल्प। इस वजह से पुलिस लाभकारी के मामलों को तो निपटा देती है और बाकी लोगों को अदालत की लंबी लाइन में लगा देती है। वहीं पुलिस गाँव में छुटभैए लोगों को अवैध शराब आर्म्स एक्ट में जेल भेजने वाला कानून यादव सिंह जैसे माफिया इंजीनियर और बैंकों के पैसे का गबन करने वाले शराब-फैक्ट्री के मालिक विजय माल्या को लंबी जाँच के नाम पर आखिर क्यों बरी कर देती है?

न्यायिक तंत्र की विफलता से बेखबर सत्तासीन राजनेताओं ने न सिर्फ पुलिस सुधार के लिए कानूनों को लागू करने से हमेशा इनकार किया, वरन् अँग्रेजों के बनाए कानूनों को बदलने में भी नाकाम रहे हैं। इसलिए मिश्र जी, मैं आपके इस कथन से पूर्णत: सहमत हूँ कि कानून का शासन लागू न कर पाने की नाकामी और न्याय देने में अदालत की विफलता यानी न्याय प्रक्रिया में पुलिस की भूमिका न केवल काफी असरदार हो गई है, बल्कि देश का सबसे ताकतवर बनकर उभरी है।

(3)प्रश्न: क्या आप यह भी मानते हैं कि विज्ञापनों और ब्रांडिंग पर अरबों रुपए खर्च करने वाली सरकार द्वारा न्याय प्रक्रिया में सुधार और विस्तार के लिए संसाधन मुहैया कराने में विफल होने की वजह से न्यायिक तंत्र और भी बदहाल हो गया है?

उत्तर: मिश्र जी, आपको मैं बताऊँ कि आज देश में 3 करोड़ से अधिक मुकदमें लंबित हैं, जिसमें बहुत बड़ा हिस्सा सरकारी मुकदमों का है, जो राष्ट्रीय मुकदमा नीति की अवहेलना कर दायर किए गए हैं। देश के 24 उच्च न्यायालयों में सरकार की निष्क्रियता से 384 पद रिक्त हैं जिसकी वजह से न्याय न मिलने से देशव्यापी निराशा है, जिसका दुष्परिणाम आदिवासी एवं पिछड़े इलाकों में नक्सलवाद, आतंकवाद और शहरी इलाकों में अराजकता के रूप में दिखाई पड़ रहा है।

कातिलों के लिए मृत्युदंड से माफी की माँग करने वाले तथाकथित सभ्य समाज में आम जनता को इंसाफ नहीं मिलने से न्याय का मंदिर अब जनता की वधशाला में परिवर्तित हो गया है। संविधान की धारा 14 के प्रावधान के मुताबिक समानता के आधार पर न्याय तथा जीवन के अधिकार की सुरक्षा पाने में विफल आम जनता अब क्या करे? तीन पीढ़ी से मुकदमें लड़ने वाले आम आदमी के पास अब तो मांस की जगह हड्डी बची है। सुशासन और विकास के झुनझुने के दौर में न्यायिक विफलता से उपजा

सबसे बड़ा सवाल यह है कि क्या उन हड्डियों से कोई दधीचि न्याय का मजबूत वज्र बन सकेगा? इस सवाल के जवाब में मैं भी मानता हूँ कि विज्ञापनों और ब्रांडिंग पर अरबों रुपए खर्च करने वाली सरकार द्वारा न्यायपालिका में सुधार और विस्तार के लिए जरूरी संसाधन मुहैया कराने में विफल हो रही है जिसके परिणामस्वरूप न्यायिक तंत्र और भी बदहाल हो गया है। न्याय न मिलने से देशव्यापी निराशा और हताशा है।

(4)प्रश्नः देश की अदालतों में लाखों-लाख अधिवक्ताओं के पास काम न रहने से रोजमर्रा की हड़ताल में जाना आम हो गया है। क्या आपकी नजर में ऐसी गैर-कानूनी हड़ताल का खामियाजा गरीब जनता को नहीं उठाना पड़ता है?

उत्तरः पूरे देश में लगभग 15 लाख अधिवक्ता हैं जिनमें से अधिकांश के पास काम न रहने से रोजमर्रा की हड़ताल में जाना आम हो गया है, पर ऐसी गैर-कानूनी हड़ताल का खामियाजा तो गरीब जनता को ही भुगतना पड़ता है। सरकार और अदालतों के शह-मात के खेल में सभी की विफलता सामने आ रही है, परंतु आम जनता जहाँ न्याय न मिलने से त्रस्त है, वहीं अदालत की अवमानना के डर से खामोश भी। केंद्र और राज्य सरकार भी अधिवक्ताओं को सरकारी वकील बनाकर उपकृत करती है, जो जनता के पैसे से मिली फीस लेकर प्रतिदान में राजनीतिक हितों का पोषण करते हैं। अब तो कई न्यायाधीश महत्वपूर्ण मामलों से अपने को अलग कर लेते हैं या निर्णय की जिम्मेदारी से बचने के लिए मामले को लंबे समय के लिए टाल देते हैं जिससे भी आम जनता को परेशानी का सामना करना पड़ता है।

(5)प्रश्नः राजनीतिक दलों एवं उसके राजनेताओं ने संविधान की धज्जी उड़ाकर रख दी है। ऐसे में न्यायपालिका के लिए संविधान की रक्षा करने की जिम्मेदारी क्या अधिक नहीं बढ़ गई है?

उत्तरः हमारे देश में अभिव्यक्ति की आजादी का प्रावधान संविधान में किया गया है, लेकिन राजनीतिक दलों एवं उसके राजनेताओं द्वारा कुछ भी अनाप-सनाप बोलकर न केवल संविधान की धज्जियाँ उड़ा रहे हैं, बल्कि समाज में नफरत फैलाने का काम धड़ल्ले से कर रहे हैं जिसे हम क्या अभिव्यक्ति की आजादी के नाम पर समाज में नफरत फैलाने की आजादी नहीं कहेंगे? पिछले दिनों बिहार विधानसभा चुनाव के दौरान विभिन्न राजनीतिक दलों एवं उसके नेताओं ने चुनावी सभा में जिस लहजे में प्रधानमंत्री को दंगों का दोषी ठहराया और उन्हें दरिंदा, शैतान और जालिम

तक कह डाला क्या इस प्रधानमंत्री के साथ-साथ देश की जनता और जनता के जनादेश का अनादर नहीं कहा जाएगा?

पिछले दिनों उ.प्र. के दादरी में अफवाह की वजह से गोमांस खाने का आरोप लगाकर एक व्यक्ति को पीट-पीटकर मार डालने जैसे जघन्य अपराध को विभिन्न दलों के नेताओं ने जिस प्रकार आग में घी डालने का काम किया, यहाँ तक कि संयुक्त राष्ट्र को चिट्ठी लिखकर हिंदुस्तान में सीरिया जैसे हालात पैदा करने की कोशिश के साथ-साथ सांप्रदायिक सौहार्द बिगाड़ने का प्रयास किया गया इन नफरत फैलाने वालों के खिलाफ कानूनी कार्रवाई की जानी चाहिए। इस देश में धर्म के नाम पर तो दंगे बहुत हुए हैं लेकिन पिछले दो वर्षों से जिस तरह से इस देश के हर कोने से सांप्रदायिक दंगों की लपटें उठनी शुरू हुई हैं उससे यही प्रतीत होता है कि आने वाले दिनों में भारत में गृहयुद्ध जैसी स्थिति पैदा हो सकती है। इसमें राजनीतिक पार्टियाँ जिस तरह की भूमिका रही हैं उससे यह कहना गलत नहीं होगा कि इन सबके पीछे राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय पार्टियाँ सबसे अधिक दोषी तो हैं ही उसके राजनेता भी कम दोषी नहीं हैं। ऐसे में न्यायपालिका की जवाबदेही बढ़ जाती है कि वह संविधान में अभिव्यक्ति की आजादी की व्याख्या करते हुए दोषी लोगों को कानून के घेरे में लाए और उन्हें कड़ी से कड़ी सजा दे।

(6)प्रश्नः आजादी के बाद देश के समुचित संचालन वास्ते संसदीय लोकतांत्रिक पद्धति अपनाई गई जिसके तहत विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका को लोकतंत्र के तीन प्रहरी के रूप में माना गया और चौथे प्रहरी के रूप में मीडिया को कहा जाता है। आजादी के अड़सठ वर्ष बीत जाने के बाद लोकतंत्र के चार स्तंभों में से तीन स्तंभ विधायिका की दासी होते चले जाने पर क्या देशवासी की नजर न्यायपालिका पर नहीं जा टिकी है? क्या न्यायपालिका 'अँधेर नगरी चौपट राजा' की कहावत को चरितार्थ होने से नहीं बचाएगी?

उत्तरः आपकी इस बात से मैं पूर्णतः सहमत हूँ कि संसदीय लोकतांत्रिक पद्धति के तहत लोकतंत्र के अन्य तीन स्तंभों पर विधायिका भारी पड़ती जा रही है। आप देश के उस स्वर्णिम इतिहास को याद करें जब विधायिका के सांसद एवं विधानमंडल के सदस्यों सहित पूरी राजनीति राष्ट्र एवं समाज-सेवा के लिए संकल्पित थी, मगर मौजूदा दौर में तो उनका यह राष्ट्र व समाज ने व्यवसाय का रूप ग्रहण कर लिया है जिसे भुनाना राजनीतिज्ञ अपना लक्ष्य मानते हैं। आज राष्ट्रीयता का मंत्रोच्चारकर्तृ राजनीति का आपादमस्तक

अपराधीकरण हो चुका है अथवा यों कहें कि अपराध का ही राजनीतिकरण हो गया है।

(7) प्रश्नः भारतीय संविधान के अनुच्छेद 370 पर विगत कई वर्षो से चर्चा चलती रही है। पिछले दिनों जम्मू-कश्मीर उच्च न्यायालय का अनुच्छेद 370 पर जो फैसला आया उस पर आप क्या कहना चाहेंगे?

उत्तरः भारतीय संविधान की धारा 370 पर पिछले कई वर्षो से वाद-विवाद चलता रहा है खासतौर पर उसे हटाने या कायम रखने के सवाल पर। मगर जम्मू-कश्मीर उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति हसनैन मसूदी एवं राजकोटवाल की खंडपीठ ने कहा कि 'अस्थायी प्रावधान' के शीर्षक के तौर पर और पैरा 21 में अस्थायी, परिवर्तनकारी एवं विशेष उपबंधों के शीर्षक से शामिल किया गया अनुच्छेद 370 संविधान में स्थायी जगह ले चुका है यह संशोधन हटाने या रद्द किए जाने से परे है। संविधान के अनुच्छेद 35ए जम्मू-कश्मीर में लागू मौजूदा कानूनों को संरक्षण प्रदान करता है। अतएव धारा 370 को संशोधित या हटाया नहीं जा सकता है, क्योंकि संविधान सभा ने उसे भंग करने से पहले इसको हटाने की अनुशंसा नहीं की थी। मैं क्या कोई भी उच्च न्यायालय के इस फैसले से सहमत होगा जबतक उच्चतम न्यायालय से इस पर कुछ और निर्णय नहीं आता है।

(8)प्रश्नः विगत 16 अक्टूबर, 2015 को सर्वोच्च न्यायालय ने अपने एक फैसले में राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग (एनजेएसी) कानून को असंवैधानिक करार देते हुए कॉलेजियम प्रणाली को ही बहाल कर दिया है, क्या इस फैसले से विधायिका और न्यायपालिका के बीच टकराव की आशंका आप महसूस करते हैं? कॉलेजियम प्रणाली का स्थान न तो संविधान में है और न ही संसद द्वारा पारित कानून में है। ऐसे हालात में इसका क्या औचित्य है?

उत्तरः सर्वोच्च न्यायालय के पाँच सदस्यीय संविधान पीठ ने विगत 16 अक्टूबर, 2015 को एक ऐतिहासिक फैसला देते हुए सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालय में न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए सरकार द्वारा न्यायिक नियुक्ति आयोग को निरस्त कर पुराने कॉलेजियम प्रणाली को ही बहाल कर दिया जिससे न्यायाधीशों की नियुक्ति न्यायाधीशों की सिफारिश पर होगी। इससे केंद्र सरकार अथवा विधायिका एवं न्यायपालिका में न केवल टकराव की आशंका पैदा हो गई है, बल्कि इसके औचित्य पर भी सवाल खड़ा हो गया है। एक जीवंत लोकतंत्र की निशानी यह है कि उसका नेतृत्व

विधायिका करे और न्यायपालिका उसके पीछे रहकर उसका मागदर्शन करे, लेकिन व्यवहार में स्थितियाँ कुछ और दिख रही हैं। आज देश के हालात ऐसे हो गए हैं कि न्यायपालिका को ही कार्यपालिका की भूमिका निभानी पड़ रही है। बुरे अनुभवों की वजह से न्यायपालिका, राजनेताओं व कार्यपालिका को शक की नजर से देखती है। राजनेताओं ने भी अपनी विश्वसनीयता गंवाने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी है। जिन संवैधानिक पदों पर नियुक्ति का अधिकार सरकार का है, उनपर अक्सर राजनीतिक रूप से मुफिद लोगों को बिठाया जाता है। यहाँ एक ओर जहाँ जरूरत न्यायपालिका की है, वही दूसरी ओर राजनेताओं और अधिकारियों की विश्वसनीयता की भी है।

दरअसल, विवाद की जड़ कॉलेजियम तंत्र है, जिसके तहत अबतक उच्च न्यायपालिकाओं में न्यायाधीशों की नियुक्ति होती आई है, कॉलेजियम तंत्र का अर्थ यह है कि सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश अन्य वरिष्ठ न्यायाधीशों के साथ मिलकर अन्य न्यायाधीशों के नाम तय करते हैं, जबकि कॉलेजियम का जिक्र संविधान में कहीं नहीं है। तब सवाल यह उठता है कि क्या संसद द्वारा सर्वसम्मति से पारित कानून को न्यायपालिका रद्द कर सकती है, अगर वह कानून संविधान की मूल प्रतिज्ञाकारों के विरूद्ध नहीं है? लोकतंत्र में जनता की इच्छा सर्वोपरि है तो क्या न्यायपालिका इस इच्छा के खिलाफ जा रही है?

इस संदर्भ में संवैधानिक मामलों के विशेषज्ञ और लोकसभा के पूर्व महासचिव सुभाष कश्यप के इस विचार से मैं सहमत हूँ जिसमें उन्होंने कहा कि 31 दिसंबर, 2014 को सभी दलों की सहमति के बाद संसद ने राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग के गठन के लिए एक संविधान संशोधन को मंजूरी दी जिसके तहत पिछले 22 वर्षो से जारी कॉलेजियम सिस्टम को खत्म करने पर सहमति बनी। लेकिन अब सुप्रीम कोर्ट की संविधान पीठ ने राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग को यह कहते हुए असंवैधानिक करार दिया है कि यह संविधान के बुनियादी ढाँचे का उल्लंघन करता है, जिसके तहत न्यायपालिका में किसी भी तरह का हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए। दुनिया के किसी भी देश में ऐसा नहीं है कि न्यायाधीशों की नियुक्ति न्यायाधीशों के हाथ में हो, कॉलेजियम सिस्टम में अभी तक यही होता आया है कि सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश की अध्यक्षता में वरिष्ठ न्यायाधीश ही सुप्रीम कोर्ट एवं हाईकोर्ट के लिए न्यायाधीशों की नियुक्ति को अंतिम रूप देते हैं और राष्ट्रपति इसे मंजूरी देते हैं।

सच तो यह है कि इसमें शायद ही किसी को आपत्ति हो कि न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रक्रिया पारदर्शी और निष्पक्ष होनी चाहिए, लेकिन इसके लिए जरूरी है कि सरकार और सुप्रीम कोर्ट के बीच बेहतर तालमेल हो और संविधान निर्माताओं की मूल भावना भी यही थी कि लोकतंत्र के इन दो प्रमुख स्तंभों के बीच किसी तरह का टकराव न हो। लोकतंत्र में लोक अथवा जनता ही संप्रभु होती है और संसद जनता का प्रतिनिधित्व करती है। इस संदर्भ में यदि देखा जाए, तो सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले से संसद की भावनाओं का असम्मान और जनसामान्य की भावनाओं का अनादर होगा। लेकिन इस मामले को किसी भी हालत में विधायिका बनाम न्यायपालिका की जंग के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए, क्योंकि ये दोनों ही लोकतांत्रिक व्यवस्था के ऐसे बुनियादी स्तंभ हैं जो एक-दूसरे के प्रतिस्पर्धी नहीं, बल्कि पूरक हैं। ऐसे में इस विवाद का सर्वमान्य हल शीघ्र निकाला जाना चाहिए।

(9)प्रश्नः पुलिस हिरासत में मौत को आप मानवीयता के दृष्टिकोण से किस रूप में लेते हैं?

उत्तरः मैं भी मानता हूँ कि पुलिस हिरासत में यातना देना मानवीयता के खिलाफ सीधा हमला है। मौजूदा दौर में ऐसा देखा जा रहा है कि गरीब और मध्यम वर्ग के लोग पुलिस के शिकार हो रहे हैं, यहाँ तक कि पुलिस हिरासत में पुलिस द्वारा यातना दिए जाने पर उसकी मौत हो रही है, इसके पीछे कारण यह है कि पुलिसवाले समझते हैं कि वह सबसे ज्यादा संरक्षित हैं। पुलिस यह भी समझती है कि अगर किसी की हिरासत (कस्टडी) में मौत हो जाए, तो उनकी कोई जिम्मेदारी नहीं है। हिरासत में प्रताड़ना और मौत की घटनाएँ बढ़ रही हैं, जो चिंता का विषय है।

पिछले दिनों दिल्ली के नंदनगरी थाना क्षेत्र में पुलिस हिरासत में कथित तौर पर पिटाई से हुई मौत के मामले को दिल्ली उच्च न्यायालय के न्यायाधीश सिद्धार्थ मृदुल सुनवाई के वक्त भावुक नजर आए और उन्होंने शकील बदायूंनी के इस शेर का जिक्र किया-

'मेरा अज्म इतना बुलंद है कि मुझे
पराए शोलों का डर नहीं
मुझे खौंफ आतिशे गुल से है ये कहीं
चमन को जला न दें'

(10)प्रश्नः आजादी के बाद भारत में सरकार, न्यायालय और समाज के बीच का जो त्रिभुजात्मक संबंध बना है, क्या वह आपकी निगाह में काफी कुछ उलझा हुआ प्रतीत होता है? आखिर क्यों? मौजूदा न्यायिक व्यवस्था भारतीय समाज की भारतीयता बनाए रखने में कितनी सफल रही है?

उत्तरः हाँ, आजादी के बाद इस देश में सरकार, न्यायालय और समाज के बीच जो संबंध बना है वह मेरी नजर में काफी कुछ उलझा हुआ प्रतीत होता है, क्योंकि सरकार और न्यायालय एक-दूसरे का हाथ थामकर समाज का निर्देशन और नियमन करने की बजाय इस प्रयास में लगे हुए दिखाई देते हैं कि केवल हम समाज का नियमन और निर्देशन करेंगे। इसलिए दोनों अक्सर एक-दूसरे के सीधे-सीधे विरोध में खड़े दिखाई देते हैं। विरोधाभास की स्थिति यहाँ यह है कि इस टकराव में समाज साथ देने के लिए अपनी उसी सरकार के पक्ष में खड़ा होने से कतरा रहा है, जिसका चयन उसने स्वयं किया है। क्या किसी लोकतांत्रिक प्रणाली की इससे भी बढ़कर विडंबना हो सकती है?

ऐसी स्थिति में यह कहना गलत नहीं होगा कि इस 21वीं सदी में अब न्यायालय की भूमिका न केवल संविधान के रक्षक और कानून के व्याख्याकार के रूप में रह गई है, बल्कि कानून से बढ़कर जनहित का दायरा भी हो गया है। इसीलिए आज के जनतंत्र में आमजन की निगाहें आशा भरी निगाहों से न्यायालय की ओर ताकने लगी हैं।

(11)प्रश्नः सिद्धेश्वर जी, आपको याद होगा गाँधी जी ने कभी कहा था कि 'अदालतें न हों तो हिंदुस्तान में गरीबों को बेहतर न्याय मिल सकता है। क्या बापू की यह बात न्यायपालिका में बढ़ते भ्रष्टाचार और मुकदमों के बढ़ते ढेर एवं वर्षों-वर्षों तक लंबित होने की वजह से गरीबों को न्याय नहीं मिल पाने की ओर संकेत नहीं है? न्याय मिलने में विलंब के लिए न्यायाधीश कितने जिम्मेदार हैं?

उत्तरः अवधेश जी, न्यायपालिका भी अब सवाल के घेरे में आने लगे है। मुझे अच्छी तरह याद है गाँधी जी की वह बात जिसमें उन्होंने कहा था कि 'अदालतें न हों तो हिंदुस्तान में गरीबों को बेहतर न्याय मिल सकता है।' भ्रष्टाचार के खात्में पर संसद में दिसंबर 1963 में हुई बहस में डॉ. राममनोहर लोहिया की वह बात भी मुझे याद है जिसमें उन्होंने कहा था कि सिंहासन और व्यापार के बीच संबंध भारत में जितना दूषित, भ्रष्ट और

बेईमान हो गया है उतना दुनिया के इतिहास में कहीं नहीं हुआ। इसी प्रकार आज से 15 वर्ष पहले जहाँ भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश न्यायामूर्ति भरूचा ने कहा था, 'हाईकोर्ट के 20 फीसदी जज भ्रष्ट हैं,' वहीं पूर्व न्यायाधीश मार्कंडेय काटजू ने चीफ जस्टिस सहित 50 फीसदी जजों को भ्रष्ट करार दिया था।

न्याय के बारे में कहा जाता है कि देर से किया गया न्याय एक प्रकार से न्याय की अवहेलना है तो दूसरी तरफ यह भी कहा जाता है कि जल्दी से किया जाने वाला इंसाफ न्याय को दफना देने जैसा है। आज की तिथि में देश की अदालतों में कुल 3-5 करोड़ से अधिक मुकदमें लंबित पड़े हैं और यह 'Justice delayed, Justice denied' की कहावत को चरितार्थ कर रहा है। नीट के मामले में दूसरी वाली स्थिति हुई थी। वरिष्ठ विधि विशेषज्ञ और सर्वोच्च न्यायालय के अधिवक्ता विराग गुप्ता के इस कथन से कैसे असहमत हुआ जा सकता जिसमें उन्होंने कहा है कि राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग(एनजेएसी) मामले में छह महीने के भीतर सुनवाई कर निर्णय देने वाले जज, आम जनता के मामलों को सालों-साल क्यों लटकाते हैं? कातिलों के लिए आधी रात में सुनवाई करने वाले जजों को 4 लाख गरीब अनपढ़ कैदियों को जेल से निकालने के लिए समय क्यों नहीं है? इस लिहाज से देखा जाए तो न्याय मिलने में विलंब के लिए न्यायाधीश भी कम जिम्मेदार नहीं है। कुछ इसी ख्याल से लोकसभा के पूर्व अध्यक्ष तथा कई सालों तक सर्वोच्च न्यायालय में बैरिस्टर रहे सोमनाथ चटर्जी ने पिछले दिनों कहा, यह न्यायपालिका के लिए आत्म निरीक्षण का समय है। वह इस बात को लेकर अधिक चिंतित हैं कि अगर उन्होंने भारत के लोगों की मदद करने की कोशिश की होती और अगर लोगों को आसानी से एवं जल्द न्याय मिलता, तो हर भारतीय कृतज्ञ होता। इस समय उच्चतम न्यायालय में जाकर अपने मामले की पैरवी के लिए वकील रखना सबके बस की बात नहीं है। क्या यह हमारी न्याय प्रणाली के उद्घोष 'सत्यमेव जयते' की अवहेलना नहीं हो रही है?

(12)प्रश्नः भारत में सरकार ने महत्वपूर्ण कारोबारी विवादों के निपटारे के लिए चुनिंदा उच्च न्यायालयों में वाणिज्यिक पीठ बनाने के लिए एक अध्यादेश जारी किया है। आपकी निगाह में कारोबार सुगम बनाने में यह अध्यादेश कहाँ तक कारगर साबित होगा?

उत्तर: भारत में कारोबार संगम बनाने के लिए अध्यादेश लागू होने के बाद

आगे के दिनों में चुनिंदा उच्च न्यायालयों की कारोबारी पीठों में बेहद महत्वपूर्ण हजारों कारोबारी विवाद भेजे जाएँगे और एक करोड़ या ज्यादा के दावोंवाले कारोबारी विवादों से जुड़ी सभी याचिकाएँ मामले के हिसाब से संबंधित वाणिज्यिक खंड को भेजी जाएँगीं। कारोबारी विवादों को इस तरह पारिभाषित किया गया है जिसमें ऐसे विवाद जो व्यापारियों, बैंकरों, फाइनेंसरों और कारोबारियों के साधारण लेन-देन से होने वाला विवाद जो कारोबार दस्तावेज, संयुक्त उपक्रम और भागीदार करार, बौद्धिक संपदा अधिकार, बीमा या अन्य क्षेत्रों से जुड़ा हो।

(13)प्रश्नः भारत में उच्च न्यायपालिका क्यों नियुक्तियों के मामले में स्वयं को व्यवस्थापिका और कार्यपालिका से मुक्त करना चाहती है? न्यायपालिका के हस्तक्षेप को आप कितना आवश्यक मानते हैं?

उत्तरः अवधेश जी, आप स्वयं उच्च न्यायालय के अधिवक्ता है इस हैसियत से आपको यह जानकारी है कि न्यायपालिका स्वयं को एक लोकतांत्रिक परिवेश में ही परिभाषित करती है। लोकतांत्रिक संस्थाओं के लिए जनस्वीकृति अपरिहार्य है। संसद अपने सदस्यों का चयन स्वयं नहीं कर सकती। उनका निर्वाचन जनता करती है। कार्यपालिका भी अपने सदस्यों को नहीं चुन सकती तो सवाल उठता है कि फिर भारतीय न्यायपालिका को जनस्वीकृति के किसी तरीके से परहेज क्यों होना चाहिए? क्यों उसे लगता है कि कार्यपालिका द्वारा नियुक्त होने से उसे स्वतंत्र और निष्पक्ष ढंग से काम करने में दिक्कत होगी? स्वतंत्रता के बाद कार्यपालिका से नियुक्त न्यायाधीशों ने क्या स्वतंत्र और निष्पक्ष ढंग से काम नहीं किया? उपर्युक्त सभी सवालों के उत्तर में मैं कहना चाहूँगा कि आजादी के दो-ढाई दशक तक तो विधायिका एवं कार्यपालिका के कार्यकलाप ठीक-ठाक रहे और उनपर बहुत कम ऊँगलियाँ उठीं, मगर उसके बाद के दशकों में भ्रष्टाचार पराकाष्ठा पर लाने की वजह से विधायिका एवं कार्यपालिका के कार्यकलापों में जो गिरावट शुरू हुई वह आजतक रूकने का नाम नहीं ले पा रही है। पिछले तीन दशकों में भारत सरकार के मंत्रालय या विभाग हों अथवा राज्य सरकारों के आए दिन जितने घपले-घोटाले होते रहे हैं उससे न्यायपालिका तो क्या देश की आम जनता का विश्वास विधायिका एवं कार्यपालिका से उठता चला जा रहा है। यही कारण है कि अनेक मामलों पर कार्यपालिका के कार्यकलापों पर न्यायपालिका को हस्तक्षेप करने के लिए बाध्य होना पड़ा है। इन्हीं सब कारणों के चलते न्यायपालिका को ऐसा लगता है कि

कार्यपालिका द्वारा नियुक्त होने से उसे स्वतंत्र और निष्पक्ष ढंग से काम करने में दिक्कत होगी। पिछले दिनों कुछ इन्हीं सब वजहों से सर्वोच्च न्यायालय की पाँच सदस्यीय संविधान खंडपीठ ने न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए सरकार द्वारा बनाई गई राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग को निरस्त कर पुरानी कॉलेजियम प्रणाली को ही बहाल करने का फैसला दिया।

हालांकि यह भी सच है कि राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग (National Judicial Appointment Commission) की अवधारणा इंग्लैंड के न्यायिक नियुक्ति आयोग से ग्रहण की गई और इंग्लैंड में इस आयोग की वजह से न केवल नियुक्तियों में गुणवत्ता बढ़ी, बल्कि महिलाओं, अल्पसंख्यकों और दिव्यांगों का प्रतिनिधित्व भी उच्च न्यायपालिका में बढ़ा। इंग्लैंड में अभी तक न्यायपालिका ने नियुक्ति-प्रक्रिया में परिवर्तन को कोई प्रतिकार नहीं किया है। इसी प्रकार अमेरिका में भी सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्तियाँ राष्ट्रपति के द्वारा की जाती हैं और प्राय: वह अपनी राजनीतिक प्राथमिकताओं को भी नजरअंदाज नहीं करता। हाँ, इन नियुक्तियों की स्वीकृति सिनेट से अवश्य ली जाती है।

मुझे ऐसा लगता है कि न्यायिक नियुक्तियों को लेकर भारतीय लोकतंत्र अभी तक अंतिम सिद्धांत या प्रक्रिया पर नहीं पहुँच पाया है। इस पर जारी विचारमंथन को किसी नकारात्मक दृष्टि से देखने की आवश्यकता नहीं। संविधान और लोकतंत्र इस प्रक्रिया से आगे बढ़ते हैं। इसलिए वर्तमान विवाद को न्यायपालिका बनाम कार्यपालिका के रूप में अभी देखने की कोई वजह नहीं। देश में राजनीतिक संस्कृति आज कुछ ऐसी है कि जनता को उससे निराशा होना स्वाभाविक है। राजनीतिक संस्कृति कुछ ऐसी बननी चाहिए कि जनता के सम्मान और निष्ठा पर सरकार के तीन अंगों का समान हक हो, किसी का भी एकाधिकार नहीं तभी लोकतंत्र सशक्त और जीवंत होगा।

इस संदर्भ में एक और बात काबिलेगौर है और वह यह कि राजनीतिक दलों का देश के कानूनों के प्रति जो रवैया रहा है वह राजनीतिक दलों पर सूचना के अधिकार या आरटीआई के लागू होने से स्पष्ट हो गया है। राजनीतिक दलों ने अदालत के इस फैसले को मानने से इनकार कर दिया और अभी तक सूचना अधिकार कानून को लागू कराने वाले छह राजनीतिक दलों में से किसी भी राजनीतिक दल ने इस निर्णय का पालन नहीं किया है। इससे स्पष्ट होता है कि राजनीतिक दलों को यह विश्वास है कि वे देश के कानूनों से ऊपर हैं। संभवत: उन्हें यह भ्रम इसलिए क्योंकि

उन्हें या उनके नामांकित लोगों को (सांसद) कानून बनाने का अधिकार है शायद इसी अधिकार के चलते वे खुद को कानून के दायरे से बाहर मान रहे हैं।

सच तो यह है हर सरकार न्यायपालिका पर हावी होने का प्रयत्न करती है। इसका कारण यह है कि भारतीय संविधान ने विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका को बराबर का दर्जा दिया है लोकतंत्र के ये तीनों स्तंभ अपने आप में स्वतंत्र हैं और किसी को भी दूसरे के कार्याधिकार में हस्तक्षेप करने की अनुमति नहीं है। इस दृष्टिकोण से न्यायपालिका की स्वतंत्रता की रक्षा करना और कॉलेजियम व्यवस्था को सुधारना सबकी संयुक्त जिम्मेदारी है और इसे मिलकर निभाना ही देश और देश की जनता के हित में है।

(14)प्रश्नः उच्च न्यायालय के प्रैक्टिसिंग लायर की जब जज में नियुक्ति होती है, तो उन्हें किसी अन्य उच्च न्यायालय में स्थानान्तरित करना क्या उचित नहीं होगा? न्यायाधीशों की सेवा निवृति के पश्चात् उनकी किसी पद पर नियुक्ति और उनकी भूमिका को आप किस रूप में देखते हैं?

उत्तरः अवधेश जी, मैं भी आपके इस विचार से सहमत हूँ कि जब उच्च न्यायालय में प्रैक्टिस कर रहे अधिवक्ता की नियुक्ति न्यायाधीश में हो जाती है, तो उनका पदस्थापन उसी उच्च न्यायालय में न होकर किसी अन्य उच्च न्यायालय में किया जाना उचित होगा, ताकि वह पूर्वाग्रह से ग्रस्त न होकर निष्पक्ष फैसला दे सके। यदि उस अधिवक्ता की नियुक्ति जज में होने पर पदस्थापन भी उसी उच्च न्यायालय में होता है, तो अनेक ऐसे मामले उनके समक्ष आएँगे जिसके क्लायंट उनसे परिचित रहे हों और उनके मुकदमों की वकालत वहीं कर रहे हों। यह भी संभव है निश्पक्ष न्याय करने में उनकी कलम लड़खड़ा जाए और निर्दोष को सजा मिल जाए तथा दोषी उससे मुक्त हो जाए। वैसे भी उस न्यायाधीश के यह हित में होगा कि उनका पदस्थापन किसी दूसरे उच्च न्यायालय में हो, ताकि उनके दामन में कोई दाग न लग सके और बेवजह उनपर ऊँगलियाँ न उठ सके।

जहाँ तक न्यायाधीशों की सेवानिवृत्ति के पश्चात् किसी पद पर उनकी नियुक्ति और उनकी भूमिका का सवाल है मैं इस बात से सहमत हूँ कि न्यायिक आयोग, जाँच आयोग अथवा भ्रष्टाचार से संबंधित आयोग में सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की नियुक्ति इस मायने में जायज है कि नियम-कानून की बारीकियों को जानने-समझने में वे माहिर और काफी अनुभवी हो चुके

होते हैं जिसका लाभ आयोग में उनकी नियुक्ति से मिलता है, लेकिन सरकार के किसी और प्रशासनिक अन्य कार्यो के लिए उनकी सेवा सार्थक नहीं हो पाएगी, ऐसी मेरी समझ है।

(15)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता कि सर्वोच्च न्यायालय की तीखी टिप्पणियोंवाली चेतावनी के बावजूद विधायिका चुनाव सुधारों और निर्वाचन आयोग के कामकाज पर निगाह डालने की जरूरत से बेफिक्र लगती है?

उत्तर: इस देश की चुनाव प्रक्रिया में धन बल की डरावनी हालत और राजनीतिक दलों एवं प्रत्याशियों द्वारा आचार संहिता का खुला उल्लंघन ये दो प्रमुख तौर पर चिंताएँ हैं जो एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं, क्योंकि दोनों के लिए काले धन का दुरुपयोग किया जाता है जिसे रोकने का उपाय नहीं के बराबर किया जाता है। आचार संहिता का उल्लंघन तो खतरनाक स्थिति तक पहुँच गया है, आदर्श आचार संहिता के उल्लंघन के लिए राजनीतिक दलों द्वारा कालेधन का इस्तेमाल और आचार संहिता के उल्लंघन करने पर उन्हें दंडित करने वास्ते निर्वाचन आयोग को जरूरी अधिकार दिए जाने की माँग भी काफी अवधि से की जा रही है, पर अबतक विधायिका के कान पर जूँ नहीं रेंग रही है।

चुनावों में करोड़पति उम्मीदवारों की संख्या में लगातार वृद्धि होने की वजह से गरीब आमजन की भागीदारी नहीं के बराबर दिखती है। न सिर्फ हमारी चुनावी प्रक्रिया, बल्कि संवैधानिक लोकतंत्र की समृद्धि के लिए वित्तीय पारदर्शिता और उत्तरदायित्व प्रमुख चीज है। पिछले बिहार विधान सभा चुनाव के दौरान बिना हिसाब-किताबवाले बरामद 19 करोड़ रुपए की सूचना आयकर विभाग ने निर्वाचन आयोग को दी। इसी प्रकार एक टी.वी. चैनल के स्टिंग ऑपरेशन के बाद हवाला के जरिए भेजे जा रहे धन की बरामदगी की गई। ये घटनाएँ साफ बताती हैं कि चुनावों में धन बल पर रोक लगाने की जरूरत है। अपने देश में लोकतांत्रिक प्रक्रिया को किसी भी कीमत पर धनबल की मर्जी पर नहीं छोड़ा जा सकता। इसी प्रकार आचार संहिता के उल्लंघन पर बिल्कुल 'जीरो लॉटनरेंस' वाली स्थिति ही देश में स्वच्छ, जोशीले और मजबूत लोकतंत्र का मार्ग खोल सकती है जिसके लिए सवोच्च न्यायालय की तीखी टिप्पणियोंवाली चेतावनी के बावजूद विधायिका चुनाव सुधारों और निर्वाचन आयोग के कामकाज पर निगाह डालने की जरूरत से बेफिक्र लगती है, ऐसा मैं भी समझता हूँ।

का इससे उल्लंघन नहीं होता है? आखिर भारत के ही गोवा राज्य में समान नागरिक संहिता का पालन होने से शरीयत कानून आड़े नहीं आता, तो शेष भारत में यह इस्लाम के लिए खतरा कैसे बन सकता है?
उत्तर: समान नागरिक संहिता को सांप्रदायिक रंग देना अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति अनिल आर. दवे और ए. के. गोयल की एक पीठ ने स्पष्टत: कहा है, 'यह मामला संविधान के तहत महिलाओं को मिले मूलभूत अधिकारों से संबंधित है। संविधान के द्वारा जिम्मेदारी लेने के बावजूद मुस्लिम महिलाएँ भेदभाव का शिकार हैं। मनमाने ढंग से दिए जाने वाले तलाक और पहली शादी के बने रहने के दौरान ही पति के दूसरा विवाह कर लेने के खिलाफ कोई सुरक्षित उपाय नहीं होने से इन महिलाओं को संरक्षण नहीं मिल पाता है।' मुस्लिम महिलाओं के तलाक और पति के दूसरे निकाह पर विचार करने के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के बाद से जहाँ कट्टरपंथी मुस्लिम संगठन लामबंद हैं, वहीं धर्मनिरपेक्ष इस मामले को एक बार फिर तूल देने पर तुले हैं। अदालत के फैसले का कड़ा विरोध करते हुए 'ऑल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड' के महासचिव मौलाना खालिद सैफुल्लाह रहमानी ने कहा है.....'शरई मामलों में अदालतों का हस्तक्षेप किसी सूरत में बर्दाश्त नहीं किया जाएगा। देश में इस समय मुसलमानों को बेवजह परेशान करने की कोशिश की जा रही है, जो निंदनीय है।' न्यायपालिका के समतावादी समाज बनाने और मुस्लिम महिलाओं को उनका वाजिब हक व सम्मान से जीवन यापन का अधिकार देने के इस दृष्टिकोण में किसी को प्रताड़ित करने का सवाल कैसे पैदा होता है? सच तो यह है कि मुसलमानों के कट्रपंथी तबके ने शरीया को अपनी हर उचित-अनुचित माँग की ढाल बना लिया है। इसे उनका इस मामले में सांप्रदायिक रंग देना नहीं तो और क्या जाएगा?

कुछ समय पहले दारूल उलूम दवेबंद ने यह फतवा जारी किया था कि नौकरी पेशा औरत की कमाई शरीया की नजर में हराम है। मुफ्तियों के अनुसार औरत और मर्द का एक साथ काम करना हराम है और ऐसी जगहों पर औरतों का काम करना इस्लाम के खिलाफ है। क्या यह फतवा इस 21वीं सदी में प्रासंगिक ठहराया जा सकता है? 1985 के शाहबानों मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने समान नागरिक संहिता पर बल दिया था। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने फैसले में कहा था कि भारतीय अपराध दंड विधान की धारा 125 किसी तलाकशुदा मुस्लिम पत्नी को उसके पूर्व पति

से गुजाराभत्ता पाने से नहीं रोकता, चाहे इसके लिए मुस्लिम पर्सनल लॉ इजाजत दे या नहीं। शाहबानो मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने समान नागरिक संहिता नहीं बनाने पर गंभीर चिंता व्यक्त की थी। तब संविधान पीठ ने कहा था 'यह खेद का विषय है कि संविधान के अनुच्छेद 44 अबतक मृत प्राय पड़ा है। अनुच्छेद 44 कहता है कि राज्य अपने नागरिकों के लिए अपने पूरे क्षेत्र में समान नागरिक संहिता सुनिश्चित करने का प्रयास करेगा, किंतु किसी भी आधिकारिक गतिविधि से इसे बनाने के प्रयास के लक्षण नहीं दिखते।' दरअसल, मुस्लिम समूदाय के कट्टरपंथी रहनुमाओं और तथाकथित धर्मनिरपेक्ष लोगों के रहते ऐसा माहौल विकसित हो पाना कठिन चुनौती है, मगर संविधान के अनुच्छेद 44 का इससे उल्लंघन होता है।

विदित हो कि गोवा राज्य पहले पुर्तगालियों के शासन में था, जहाँ समान कानून सबके लिए लागू किए गए। पुर्तगालियों के जाने के बाद गोवा भारत का अंग बन गया और वहाँ के हिंदू, मुसलमान, ईसाई आदि सभी समान नागरिक संहिता का पालन करते हैं। यदि गोवा के मामले में शरीयत कानून आड़े नहीं आता, तो शेष भारत में यह इस्लाम के लिए खतरा कैसे बन सकता है?

(19) प्रश्नः क्या आप भी यह महसूस करते हैं कि इस देश में गर्भधारण से संबंधित क्लीनिक और किराए की कोख के उद्योग को व्यवस्थित करने के लिए स्पष्ट एवं पारदर्शी कानून होना चाहिए? यदि हाँ, तो क्यों?

उत्तरः हाँ, मैं यह भी महसूस करता हूँ कि बदलते परिवेश में गर्भधारण से संबंधित क्लीनिक और किराए की कोख के उद्योग को व्यवस्थित करने के लिए इस देश में स्पष्ट एवं पारदर्शी कानून होना चाहिए, क्योंकि किराए की कोख से पैदा हुए बच्चे से जुड़ी हुई विसंगतियाँ अधिक हैं और इस मुद्दे पर नए कानून बनाने की माँग एक लंबे अरसे से की जा रही है। फिर भी, अभी तक भारत में इस संबंध में न तो कोई स्पष्ट दिशा-निर्देश हैं और न ही कानून, जिसकी वजह से विगत वर्षो में विवाद के अनेक मामले देखे गए हैं।

वैसे भी विगत वर्षो में सरोगेट मदर की संख्या भारत में अभूतपूर्व तरीके से बढ़ी है, जबकि यहाँ का कानून इन विट्रो फटिलाइजेशन (आई.वी. एफ) पद्धति से बच्चा पैदा करने की इजाजत नहीं देता है। वर्तमान कानून अँग्रेजों के जमाने का है। पिछले दिनों केंद्र सरकार ने सर्वोच्च न्यायालय को दिए गए अपने हलफनामें में कहा है कि भारत में विदेशी नागरिकों को

किराए की कोख लेने की इजाजत नहीं दी जाएगी और किराए की कोख की सुविधा केवल भारतीय दंपतियों को मिल सकेगी तथा अब वह किराए की कोख के व्यवसायीकरण का समर्थन नहीं करेगी। यही नहीं केंद्र सरकार ने अपने हलफनामें में यह भी कहा है कि भारत में व्यवसायिक किराए की कोख के लिए मानव भ्रूण के आयात को पूरी तरह प्रतिबंधित किया जाएगा।

दरअसल, किराए की कोख की सेवाओं से भारत बच्चा पैदा करने वाली फैक्ट्री बन गया है। बड़ी संख्या में विदेशी दंपति किराए की कोख की खोज में भारत आ रहे हैं और इस प्रकार भारत सरोगसी व्यावसायिक गतिविधि हो गई है। सच तो यह है कि किराए की कोख देने वाली महिलाओं का शोषण किया जा रहा है और इस मामले में कानून में अस्पष्टता होने की वजह से कानूनी मुश्किलें खड़ी हो रही हैं। इसलिए, गर्भधारण से संबंधित क्लीनिक और किराए की कोख के उद्योग को व्यवस्थित करने के लिए इस देश में स्पष्ट एवं पारदर्शी कानून होना चाहिए। समस्या इसलिए भी गंभीर है, क्योंकि भारत में किराए की कोख का लाभ भारतीयों से अधिक विदेशी उठा रहे हैं। दरअसल, भारत में 'इन विट्रो फर्टिलाइजेशन' की पद्धति से औलाद प्राप्त करना अमेरिका और यूरोप से सस्ता एवं सुरक्षित है। इस वजह से सरोगेसी से जुड़ी खामियों का लोग लाभ उठा रहे हैं। बच्चा-जच्चा के हितों को सुरक्षित करने का सवाल मौजूद है।

(20) प्रश्नः क्या आप इस बात से सहमत हैं कि इधर हाल में दो अदालतों ने दुष्कर्म के दो मामलों में न्याय की अवधारणा को नए आयाम दिए हैं?

उत्तरः देश की राजधानी दिल्ली में पिछले साल यानी 2014 के पाँच दिसंबर की रात उबर टैक्सी में 27 साल की एक युवती के चालक शिव कुमार यादव ने दुष्कर्म की घटना को अंजाम तक पहुँचाया था। देशव्यापी हल्ला मचने के बाद पुलिस ने इसे गंभीरता से लिया और घटना से जुड़े पुख्ता साक्ष्य जुटाए जिसके परिणामस्वरूप दिल्ली की अदालत ने मात्र दस माह के भीतर ऐतिहासिक फैसला सुनाते हुए कहा,'अभियुक्त को अंतिम सांस तक सलाखों के पीछे रहना होगा।' इसके साथ ही अदालत ने यह भी फैसला सुनाया कि चुकि अभियुक्त शिव कुमार यादव अपने बूढ़े माता-पिता, पत्नी और तीन बच्चों की देखरेख के अलावे उनके खाने-पीने की व्यवस्था कर अपने पारिवारिक कर्त्तव्य का निर्वहण पीड़ित युवती के साथ-साथ दोषी शिवकुमार यादव के परिवार को भी आर्थिक मदद मुहैया कराए।

इसी प्रकार इसी साल 2015 के फरवरी में बाराबंकी जिले में एक नाबालिग लड़की के साथ दुष्कर्म की घटना से गर्भवती हुई लड़की को अक्टूबर में एक बच्ची जन्म लेने के बाद इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने 4 नवंबर, 2015 को अपने एक फैसले में कहा, 'नाबालिग माँ और उसकी बच्ची दोनों की परवरिश की जिम्मेदारी राज्य सरकार को देते हुए घोषित मुआवजे समेत कुल 13 लाख की धनराशि लड़की के नाम फिक्स्ड डिपोजिट कर दी जाए जो उसे 22 साल की उम्र पूरी होने पर मिलेगी।'

दोनों अदालतों द्वारा बहुचर्चित दुष्कर्म के दो मामलों में दिए गए फैसले से न्याय की अवधारणा को नए आयाम दिए जाने की बात से मैं भी इसलिए सहमत हूँ, क्योंकि अदालतों के फैसले से अब पीड़ित ही नहीं दोषी पर निर्भर परिजनों की आर्थिक सुरक्षा का भी सरकारी तंत्र के जिम्मे आ गया है। अदालतों ने भी अपने दायित्व को महज अपराधियों को सजा देने तक सीमित न रखते हुए उसे सरकार और समाज की जिम्मेदारियों से जोड़कर नए रूप में परिभाषित किया है इसके मद्देनजर अपराध विरोधी सामाजिक चेतना का विस्तार होना आवश्यक है। अपराधियों को बचाए रखने में औरत की दैहिक शुचिता संबंधी रूढ़ मूल्य बहुत बड़ी भूमिका अदा करता है। अगर इस मूल्य के विरोध में व्यापक सामाजिक जागरूकता पैदा होती है, तो शिवकुमार यादव जैसे अपराधी भी या तो अपराध करने से डरेंगे या फिर अपने पहले अपराध पर ही हवालात पहुँच जाएँगे। देश के सामाजिक-सांस्कृतिक संगठनों को यह जिम्मेदारी और कार्यभार अपने कंधों पर लेना चाहिए।

(21)प्रश्नः क्या आज समाज में ऐसी स्थितियाँ बन रही हैं कि लोगों का कानून-व्यवस्था से विश्वास उठने लगा है? आम आदमी में यह भावना पनप रही है, तो इसके लिए जिम्मेदार कौन है?

उत्तरः हाँ, जब आमजन की भागीदारी से चुनी जाने वाली सरकार उसके जान-माल की हिफाजत नहीं कर सकती, कुछ नेता ऐसे शब्दों का प्रयोग करें, जिनसे समाज बंटे और उसमें तनाव पैदा हो और वह असहिष्णुता को जन्म दे, तो लोगों का कानून-व्यवस्था से विश्वास उठना स्वाभाविक है। क्या यह सच नहीं कि आज हमारे समाज में रिश्तों के बीच मर्यादा नाम की कड़ी टूट-सी गयी है, रिश्तों के बीच जो चमक होती है, वह दिन-प्रतिदिन कहीं खोती-सी जा रही है और रिश्तों की दास्तान बदलती-सी जा रही है। अखबार पलटकर देखते हैं, तो ज्यादातर पृष्ठों पर रिश्तों में आई हैवानियत की खबरें अवश्य दिखती हैं। बच्चियों, लड़कियों और औरतों के साथ हो

रहे गलत व्यवहार, उनके साथ हो रहे दुष्कर्म की चर्चा ही भरी पड़ी रहती है। इनसान इनसानियत की मर्यादा लांघता हुआ हैवान बनता जा रहा है। हवस की आँधी और हैवानियत का चक्रवाती तूफान लड़कियों को प्रतिदिन झकझोर कर कहीं दूर मरूस्थल में फेंक रहा है। रिश्तों की नींव इतनी कमजोर हो गयी है कि मजबूत ईंट से खड़ी की हुई रिश्तों की दीवार में दरार पड़ती जा रही है। आज कलियुग के दुर्योधन तो प्रतिदिन कितनी ही द्रौपदी को अपनी हवस का शिकार बनाते जा रहे हैं।

ऐसी विषम परिस्थिति में सत्ता में चाहे जो दल आता हो यदि वह कानून का राज नहीं स्थापित कर पाता है, तो आमजन की प्रतिक्रिया तो जाहिर होगी ही और व्यवस्था से इंसाफ नहीं मिला तो कानून को हाथ में लेने से वह गुरेज नहीं करेगा। दूसरी बात यह है कि आम जनता को दुष्कर्म जैसे मामलों में लंबी न्याय प्रक्रिया पर विश्वास नहीं रहा। विश्वास हो भी तो कैसे? निर्भया कांड में पुलिसिया तहकीकात, राजनीतिक दलों की भूमिका, सरकार के रूख और न्यायिक प्रक्रिया की सुस्ती देखकर कहीं लोगों के मन में यह भावना पनप चुकी है कि ऐसे मामलों में भीड़ का इंसाफ ज्यादा बेहतर है। यह सभ्य समाज के हित में नहीं है। लेकिन जनता आखिर करे तो क्या करे? इसकी सारी जबावदेही तो कार्यपालिका और न्यायपालिका पर ही जाती है। ऐसी घटनाओं में त्वरित कार्रवाई करने के साथ पुलिस और प्रशासन का यह भी दायित्व है कि वह उन लोगों के संग मिल बैठकर संवाद करे जो भटकाव के रास्ते पर चलने की जिद कर रहे हैं। अंत में हम यह कहना चाहेंगे कि न्याय प्रक्रिया को इतना खर्चिला एवं सुस्त बना दिया गया है कि न्याय पाने के लिए न्यायालय में जाने से आम जन घबराता है। जिनके पास वंचितजन जब रक्षा के लिए जाता है वे ही भक्षक बन जाते हैं।

(22) प्रश्नः भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय की क्या अवधारणा है? सामाजिक न्याय कैसे मजबूत होगा?

उत्तरः भारतीय संविधान की प्रस्तावना में सर्वप्रथम सामाजिक न्याय का उल्लेख किया गया है। न्याय के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक नीति-निर्देशक सिद्धांत वर्णित हैं। जिस प्रकार मोटरगाड़ी में दिशा नियंत्रक यंत्र होता है, ठीक उसी प्रकार संविधान की प्रस्तावना में न्याय को भी राष्ट्रीय जीवन के नियंत्रक के रूप में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

हालांकि यह सच है कि भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय की न तो कोई परिभाषा दी गई है और न ही इसकी व्याख्या की गई है, परंतु

यदि संविधान को उसकी समग्रता में अध्ययन किया जाए, तो सामाजिक न्याय की अवधारणा की यत्र-तत्र झलक दिखाई देती है। उदाहरणस्वरूप संविधान के तृतीय भाग में मौलिक अधिकारों की सूची में समानता के अधिकार के साथ भेद-भाव के विरूद्ध अधिकार भी सामाजिक न्याय उपलब्ध कराने वाले मूल एवं प्रमुख अधिकार हैं।

जन्म पर आधारित वर्ण व्यवस्था ने कर्म को अस्वीकार कर समाज में अनेक प्रकार की सामाजिक बुराइयों एवं विकृतियों को जन्म दिया। परिणामस्वरूप भारतीय समाज सुविधाभोगी हो गया है।

(23) प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि संविधान लागू होने के पैसठ साल बाद भी यहाँ के लोगों में संविधान के प्रति जो आस्था और सम्मान होना चाहिए उसका पालन हो पा रहा है? भारतीय संविधान की प्रस्तावना में 42वें संशोधन के जरिए जोड़े गए अँग्रेजी के 'सेक्युलर' शब्द का हिंदी 'धर्मनिरपेक्षता' का इस्तेमाल क्या सही है?

उत्तरः किसी भी देश व राष्ट्र की पहचान उसके मजबूत संविधान से होती है। साथ ही राष्ट्र की एकता व अखण्डता इस पर निर्भर करती है कि उस राष्ट्र की जनता का अपने संविधान के प्रति कितनी आस्था व सम्मान है। इस दृष्टिकोण से यदि देखा जाए, तो 15 अगस्त, 1947 को भारत को आजादी मिलने के बाद निर्मित भारतीय संविधान 26 नवंबर, 1949 से लागू हुआ, मगर छियासठ साल से अधिक बीत जाने के बाद भी न तो आजतक व्यवस्था सही हो पाई है और न लोगों में संविधान के प्रति अपेक्षित आस्था व सम्मान हो पाया है। दरअसल, जिन पर संविधन लागू करने अथवा पालन करने की नैतिक जिम्मेदारी है उनको ही संसद एवं विधानमंडलों में अभद्रता एवं शोर-शराबा करते हुए देखा जा रहा है। मुझे नहीं लगता कि संविधान की मूल भावना को अभी तक धरातल पर उतारा जा सका है।

अवधेश बाबू, सच तो यह है कि कानून को भी समाज को चलाने की व्यवस्था है। संविधान की सही मायने में रक्षा तभी हो सकती है जब सबको अपना पक्ष रखने को अधिकार मिले और इसमें दूसरे के अधिकार का हनन नहीं हो। लोग संविधान के तहत दिए अधिकारों का बिना भय के उपयोग करें। अगर समाज में एक भी व्यक्ति के साथ न्याय नहीं होता है, तो यह माना जाएगा कि पूरे समाज को न्याय नहीं मिला है। संविधान एक आस्था की चीज है। यह आस्था अभी तक लोगों में नहीं आ पा रही है जिसका और कारण चाहे जो हो, पर मुझे लगता है कि चुनाव प्रक्रिया,

जातिवाद, शिक्षा में कभी, सभी को सामाजिक व आर्थिक समानता नहीं मिल पाना तथा देश की बढ़ती जनसंख्या भी प्रमुख कारण हैं।

जहाँ तक संविधान की प्रस्तावना में 42वें संशोधन के जरिए जोड़े गए अँग्रेजी के 'सेक्युलर' शब्द के हिंदी अनुवाद 'धर्मनिरपेक्ष' के इस्तेमाल का सवाल है, मुझे भी लगता है कि 'सेक्युलर' का हिंदी अनुवाद 'धर्म-निरपेक्ष' न होकर 'पंथनिरपेक्ष' ही उपयुक्त है, कारण कि किसी धर्म से कैसे निरपेक्ष हुआ जा सकता है? धर्म से निरपेक्ष होना तो एक तरह से अधर्म को अपनाना है। हालांकि संविधान में भी 'सेक्युलरिज्म' का अर्थ 'पंथनिरपेक्षता' ही बताया गया है, लेकिन दुर्भाग्य से धर्मनिरपेक्षता शब्द चलन में आ गया है और इससे सही इस शब्द के वास्तविक आशय को सही तरह नहीं समझा जा सका। इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि पिछले कुछ वर्षो से यह शब्द तमाम समस्याओं की जड़ बन गया है, क्योंकि सेक्यूलरिज्म के नाम पर भारत में कुछ किया जाता रहा है और अभी भी किया जा रहा है उससे सर्वधर्म समभाव को ही ठेस लगी है। इस शब्द के दुरुपयोग की वजह से कुछ खास वर्गो व समूहों की गोलबंदी को सेक्युलर राजनीति बताया जाता है और इसके प्रतिक्रियास्वरूप अन्य समूहों की एकजुटता को सांप्रदायिक करार दिया जाता है।

यह बात सही है कि हमारे भारतीय संविधान का उद्येश्य देश की एकता और अखण्डता को अक्षुण्ण बनाए रखना है और उसे अगर हम भूल जाएँगे, तो हमारे हाथ से धरती का वह टूकड़ा भी छिन जाएगा जिस पर हम अपने सपनों का देश बना पाएँ और अपने ढंग से कोई प्रयोग कर पाएँ। पर हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि भारतीय संविधान कोई संकीर्ण दस्तावेज नहीं है जो हमें दुनिया से अलग एक बनाने की राह दिखाता है। हमारा संविधान विश्व समुदाय का हिस्सा बनने की प्रेरणा देता है। दुनिया से जुड़ने की इसी भावना के तहत कभी डॉ. राम मनोहर लोहिया विश्व सरकार की कल्पना करते थे और इसी भावना से विश्व समुदाय ने संयुक्त राष्ट्र संघ और उससे जुड़ी तमाम संस्थाओं का गठन किया है।

भारतीय संविधान के अनुसार उसके आदर्शो और उसकी सभी संवैधानिक संस्थाओं का आदर-सम्मान किया जाना चाहिए। यह सभी देशवासियों का मूल कर्तव्य है, लेकिन दुर्भाग्य से आज संवैधानिक पदों और संसद सहित अन्य संस्थाओं के प्रति आदर और आस्था का भाव कम हुआ है और कई बार तो उनकी अवज्ञा भी की जाती है।

(24)प्रश्नः छतीसगढ़ के विलासपुर उच्च न्यायालय ने अपने एक अहम फैसले में शासकीय सेवक की मृत्यु के बाद उसकी विवाहिता पुत्री की अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के योग्य माना है। संविधान के अनुच्छेद 16(2) के तहत समानता के अधिकार के संदर्भ में उच्च न्यायालय के इस फैसले पर आप क्या कहना चाहेंगे?

उत्तरः छतीसगढ़ के विलासपुर उच्च न्यायालय के न्यायाधीश न्यायमूर्ति संजय के. अग्रवाल की एकलपीठ ने महासमुंद की सरोजनी भाई मामले में दायर याचिका पर सुनवाई करने के पश्चात् अपने एक अहम फैसले में संविधान के अनुच्छेद 16(2) के तहत समानता के अधिकार का उल्लंघन मानते हुए शासकीय सेवक की मृत्यु के बाद उसकी विवाहिता पुत्री का भी अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के योग्य माना है। उन्होंने इस फैसले के साथ ही लोक नियोजन में लिंग भेद करने और विवाहित होने मात्र से किसी को सेवा से वंचित रखने वाली नीति को भी निरस्त किया, क्योंकि जब विवाहित पुत्र को नियुक्ति की पात्रता है, तो विवाह कर लेने मात्र से पुत्री को नियुक्ति से वंचित नहीं किया जा सकता।

इससे पहले सर्वोच्च न्यायालय ने भी हिंदू विधवाओं की संपत्ति पर अधिकार को लेकर एक अहम फैसला देते हुए कहा था कि अगर हिंदू विधवाओं का भरण-पोषण का पूर्व अधिकार बचा हुआ है, तो चाहे वसीयत में उसे संपत्ति पर सीमित अधिकार क्यों न मिला हो, वह वसीयत में मिली संपत्ति की पूरी मालकिन होगी। यह संपत्ति वह और किसी को भी दे सकती है। इसी तरह का एक फैसला हिमाचल प्रदेश के उच्च न्यायालय ने भी जन जातीय क्षेत्र में चल रही प्रथा को अनुचित ठहराते हुए कहा था कि लड़कों की तर्ज पर लड़कियाँ भी अपनी पिता की संपत्ति पाने का हक रखती हैं। इस फैसले के पहले तक पिता की मृत्यु हो जाने पर संपत्ति पर से हजारों महिलाएँ पिता की संपत्ति के अधिकार से वंचित रह जाती थीं।

इसी तरह के मसले से मिलता-जुलता सवाल इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने भी उत्तर प्रदेश सरकार से पूछते हुए कहा था कि जब मृतक आश्रित सेवा नियमावली में अविवाहित लड़की व विधवा-पुत्री को नौकरी पाने का हक मिला है, तो शादी-शुदा लड़की को इस लाभ से कैसे वंचित किया जा सकता है? दरअसल, अभी भी हमारे भारतीय समाज में कितनी दकियानूसी और सड़ांध भरी दलीलें बजबजा रही हैं। क्या बेटियों को इसी भोथरे हथियार से लड़कों के बराबर करने का मलिन सपना तो समाज नहीं देखता रहा है?

(25)प्रश्नः सहमति के बिना पत्नी के साथ भी यौन संबंध (मैरिटल रेप) बनाने को अपराध को लेकर भारतीय दंड संहिता की समीक्षा की आवश्यकता, क्यों आप महसूस करते हैं?

उत्तर: यह बात ठीक है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 375 और 376 सहमति के बिना शारीरिक संबंध बनाने से संबंधित है जिसके तहत शिकायत की जा सकती है, फिर भी ऐसा देखा जाता है कि ऐसे मामलों की औपचारिक शिकायत नहीं की जाती है और अधिकतर मामलों में महिलाओं का लंबे समय तक शोषण होता रहता है। आधुनिक लड़कियाँ सहमति के बिना पत्नी के साथ यौन संबंध की वजह से ही विवाह से इनकार कर रही हैं और समाज में सहजीवन शैली(Live in Relationship) की अवधारणा आ गई है। यही कारण है कि सहमति के बिना पत्नी के साथ यौन संबंध को लेकर भारतीय दंड संहिता की समीक्षा कर उसमें संशोधन करने की आवश्यकता महसूस की जा रही है, ताकि कानून के द्वारा उस तरह के संबंध को अपराध घोषित किया जा सके। चूँकि यह मुद्दा बहुत व्यक्तिगत, जटिल और संवेदनशील है इसलिए इस पर विचार करते समय पारिवारिक एवं सामाजिक ढाँचे पर भी ध्यान देना आवश्यक है।

(26)प्रश्नः 'असहिष्णुता' पर जारी बहस के बीच भारत के नवनियुक्त मुख्य न्यायाधीश ने विगत 6 दिसंबर, 2015 को कहा कि, ''ये सियासी पहलू हैं। हमारे यहाँ विधि का शासन है। जबतक स्वतंत्र न्यायपालिका है और जबतक अदालतें अधिकारों व प्रतिबद्धताओं को कायम रखे हुए हैं, नहीं लगता कि किसी को किसी से डरने की जरूरत है।'' देश के सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की इस उक्ति को आपने किस रूप में लिया?

उत्तर: भारत के मुख्य न्यायाधीश लोकतंत्र के एक ऐसे अतिमहत्वपूर्ण स्तंभ का नेतृत्व कर रहे हैं, जो विधि के शासन को कायम रखता है और हर नागरिक के अधिकारों की रक्षा करता है। मुख्य न्यायाधीश समाज के सभी नागरिकों और धर्मो व संप्रदायों के लोगों के अधिकारों की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध उपलब्ध कानूनों के अनुरूप सुनवाई करने की जो उन्होंने बात की है वह स्वागतयोग्य है। न्यायाधीशों की ओर से की जाने वाली पथभ्रष्ट गतिविधियों और भ्रष्टाचार को सहन नहीं करने का जो आश्वासन उनके द्वारा दिया गया है वह तो इस देश के नागरिकों के हित में है ही साथ ही न्यायपालिका के समक्ष खड़ी 'विश्वसनीयता' की चुनौती को बनाए रखने

की बात भी काफी सराहनीय कही जाएगी।

जहाँ तक 'असहिष्णुता' पर चल रही बहस पर मुख्य न्यायाधीश के उद्‌गार का संबंध है मेरे ख्याल से राजनीतिक दलों के नेताओं द्वारा इस सवाल को हवा दिया जाना बंद किया जाना चाहिए और उनकी बात से सबक लेनी भी सीखनी चाहिए, क्योंकि मैं भी यह महसूस करता हूँ कि जब वोट बैंक की राजनीति के फेर में अल्पसंख्यक तुष्टीकरण को हवा दी जाती है, तो उसके जवाब में बहुसंख्यक की बातें करने वाले लोगों को सामने आना स्वाभाविक हो जाता है। इस बार भी ऐसा ही हुआ और उ.प्र. के दादरी स्थित बिसावड़ा गाँव में गोमांस के अफवाह पर एक मुस्लिम संप्रदाय के नागरिक की भीड़ ने पीट-पीटकर जो हत्या कर दी उससे सारे भारत में गलतफहमी फैल गई और इसी के आधार पर यह दुष्प्रचार किया गया किया गया कि देश में असहिष्णुता बढ़ गई है। विडंबना यह है कि एक खास किस्म के ध्रुवीकरण को तो सेक्युलरिज्म का नाम दे दिया जाता है और उसके जवाब में होने वाली गोलबंदी को सांप्रदायिकता की संज्ञा दे दी जाती है।

इस दृष्टि से देखा जाए तो देश में असहिष्णुता पर जारी बहस में प्रधान न्यायाधीश न्यायमूर्ति तीरथ सिंह ठाकुर का यह कथन न्यायपालिका की ओर से सार्थक हस्तक्षेप है। इतने बड़े देश में छिट-फुट घटनाओं के आधार पर यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि पूरे देश में असहिष्णुता है इसलिए कि यह देश की बहुसंख्यक राय पर मुहर लगाता है कि असहिष्णुता पर खामख्वाह का मचा बवाल सियासी है।

(27) प्रश्नः उदारीकरण का दौर प्रारंभ होने के बाद इस देश के जनसामान्य के लिए न्याय पाना निरंतर दुष्कर और मुश्किल होता जा रहा है। आप इससे कहाँ तक सहमत हैं और क्यों?

उत्तरः मैं भी आपकी इस बात से सहमत हूँ कि उदारीकरण का दौर प्रारंभ होने के बाद इस देश के जन सामान्य के लिए न्याय पाना निरंतर दुष्कर और कठिन होता जा रहा है। कारण कि बड़े लोगों का मामला आते ही अक्सर कानून की चाल बदल जाती है। प्रभावशाली और अमीर तबका अपने रसूख वे पैसे के बल पर नामी-गरामी वकीलों की फौज खड़ी कर निचली अदालत का निर्णय अक्सर ऊँची अदालत में पलटवा देता है। उनके रूतबे से कभी-कभी अदालती प्रक्रिया भी प्रभावित हो जाती है। बड़े-बड़े वकील कानून के पेंचीदा नुक्तों की आड़ में न्याय को धता बता देते हैं। उनके हित से जुड़े मुकदमें उच्च न्यायालय में तुरंत स्वीकृत हो जाते हैं, तारीख फटाफट

मिल जाती है और झट से निर्णय भी आ जाता है। आपने देखा नहीं सलमान खान के मामले में तो कुछ ऐसा ही हुआ दिखता है। बम्बई उच्च न्यायालय ने इस ख्याति प्राप्त बॉलीवुड अभिनेता को 13 बरस पहले हुए सड़क हादसे के आरोप से बाइज्जत बरी कर दिया है। आपको याद होगा आज से तेरह वर्ष पूर्व सलमान खान की भीमकाय लकज्री कार से कुचलकर मुंबई के बांद्रा इलाके में फुटपाथ पर सो रहे एक गरीब आदमी की मौत हो गई थी और अन्य तीन लोग बुरी तरह घायल हो गए थे। गैर इरादतन हत्या जैसे गंभीर अपराध के मामले में उन्हें निचली अदालत ने 5 मई, 2015 को पाँच साल की जेल की सजा सुनाई थी। यह मुकदमा भले ही 13 साल खिंचा, मगर सलमान की जमानत महज तीन घंटे में ही हो गई थी। दो दिन बाद बम्बई उच्च न्यायालय ने न केवल जमानत की अवधि बढ़ा दी, बल्कि सुनवाई पूरी होने तक जेल जाने पर रोक भी लगा दी। फैसला आने से पहले जो कानून बहुत सुस्त चल रहा था, बाद में तेज गति से दौड़ने लगा। तारीख फटाफट पड़ने लगी।

उल्लेख्य है कि फिलहाल देश भर की जेलों में बंद 2.78 लाख कैदी मात्र आरोपित हैं, अपराधी नहीं। यह कुल कैदियों की संख्या की दो तिहार्ह से अधिक है। यह आँकड़ा हमारी मौजूदा न्याय व्यवस्था की पोल खोलता है। सलमान साहब का मामला तो उच्च न्यायालय से फटाफट निपट गया जबकि हजारों कैदी ऐसे हैं जो एक दशक से ज्यादा समय से मुकदमा शुरू होने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। दरअसल, जो तबका बहुत गरीब है जो वकील और अदालत का खर्च उठाने की कल्पना भी नहीं कर सकता, वह अपने क्षेत्र के खाप पंचायत, नक्सली अदालत, अपने इलाके कें गुंडे और रंसूखवालों के पास जाने में ही भलाई समझता है। त्वरित और सस्ता न्याय प्रदान करने के लिए गठित लोक अदालतों के आने के बाद भी न तो लंबित मुकदमों का अंबार कम हुआ और न फैसला आने का औसत समय घटा। नतीजतन, आज भी अदालतों में दो करोड़ से ज्यादा मुकदमें लंबित हैं। राजनेताओं के निर्वाचन तथा उनपर लगे भ्रष्टाचार के आरोपों की जाँच एवं निर्णय हेतु गठित विशेष न्यायालय भी कारगर साबित नहीं हो पा रहा है।

दरअसल, उदारीकरण के दौर के बाद मौजूदा तंत्र ताकतवर के आगे बिछ जाता है, उसका मददगार हो जाता है और जाँच-प्रक्रिया से लेकर फैसले तक सबकुछ उसके मुताबिक ढलने लगते हैं। अभियोजन पक्ष की सुस्ती और लापरवाही आरोपित का पक्ष लेती प्रतीत होती है। ऐसे में

न्यायाधीश करे तो क्या करे! अभियोजन पक्ष के सुस्त होने और उसके लापरवाह होने की स्थिति में आरोपित को गुनाह साबित करना किसी भी न्यायाधीश के लिए इसलिए मुश्किल होता है क्योंकि उसका फैसला साक्ष्य और तर्क पर निर्भर करता है। जहाँ अभियोजन पक्ष को जवाबदेह साक्ष्य जुटाना है, वहाँ वकील साहब का तर्क काम करता है। अगर दोनों तरफ से सुस्ती और लापरवाही आ जाए, जो उचित न्याय की कल्पना नहीं की जा सकती है। ऐसी स्थिति में जन सामान्य को न्याय पाना आज के दौर में दुष्कर होना मुश्किल तो होगा ही। इसलिए जबतक इस यंत्र से भ्रष्टाचार नहीं खत्म होगा और न्याय व्यवस्था से जुड़े लोगों में नैतिकता नहीं आएगी, तबतक गरीब तबका को न्याय पाना मुश्किल होगा। और दूसरी बात यह कि अगर आपके पास पैसा है, पहुँच है, तो आप अपने पक्ष में तेजतर्रार वकीलों की फौज खड़ी कर सकते हैं और फिर भारतीय न्याय व्यवस्था आपका बाल-बांका भी नहीं कर सकती।

दरअसल, पूर्णव्यवस्था हमारी दिनोदिन मानवीय मूल्यों एवं संवेदनाओं से शून्य होती जा रही है तथा संपन्न वर्ग के लिए ही निर्मित होती जा रही है। हमारे लोकतंत्र की सारी सुख-सुविधाएँ, न्याय प्रक्रियाएँ, संस्थान आदि एक ही वर्ग के 'उपभोग' के साधन बन कर रह गए हैं। पैसे की ताकत से आज सब कुछ खरीदा जा सकता है। धनबल एवं उसके द्वारा खरीदे गए भुजबल आदि के समक्ष वंचित निःसहाय हैं। न्यायिक व्यवस्था की दृष्टि भी उसे भयभीत करती है इसलिए कि उसे लगता है कि वह माँगने तो न्याय जाएगा, पर उसे झेलना अन्याय पड़ेगा। थाना में बैठा थानेदार रूपी शेर मोटी थैलियों को देखकर दुम हिलाता है। धन के प्रभाव ने सारे नैतिक मानदंड ध्वस्त कर दिए हैं।

(28)प्रश्नः भ्रष्टाचार आज राष्ट्रीय आर्थिक आतंकवाद बन गया है। इसके मद्देनजर उच्चत्तम न्यायालय द्वारा बिहार और ओडिशा के उस कानून को वैध करार दिया जाना जिसमें भ्रष्टाचार मामले के आरोपी की संपत्ति जब्त करने की व्यवस्था की गई है, को आप किस रूप में देखते हैं?

उत्तरः बिहार-ओडिशा द्वारा बनाए गए कानून के तहत भ्रष्टाचार मामले के आरोपी की संपत्ति जब्त करने की व्यवस्था को वैध करार दिए जाने के उच्चतम न्यायालय के फैसले को इसलिए जायज कहा जाएगा, क्योंकि वस्तुतः भ्रष्टाचार आज राष्ट्रीय आर्थिक आतंकवाद बन गया है। सुप्रीम कोर्ट

ने भी अपने फैसले में राष्ट्रीय आर्थिक आतंकवाद बन चुके भ्रष्टाचार पर दूसरे तरीके से नियंत्रण पाने की आवश्यकता को महसूस किया है और इस लिहाज से बिहार और ओडिशा ने विशेष कानून बना कर उसमें संपत्ति जब्त करने जैसे कठोर प्रावधान किए हैं। इन कानूनों के तहत विशेष अदालतों का गठन संविधान के अनुच्छेद 247 का उल्लंघन नहीं है। सुप्रीम कोर्ट ने स्पष्ट कहा कि रिश्वतखोरी जैसी सामाजिक बुराई अब राष्ट्रीय आतंकवाद का रूप ले चुकी है।

इस कानून की जद में भ्रष्टाचार के सागर में उन्मुक्त विचरण कर रही बड़ी मछलियों को पकड़ने और उनकी संपत्ति जब्त करना आज जरूरी हो गया है। आपने देखा नहीं बिहार में इसी कानून के तहत बिहार के आरक्षी महानिदेशक जैसे पुलिस के सर्वोच्चाधिकारी तथा मुख्य अभियंता एवं निदेशक के पद पर आसीन लोगों की संपत्ति भी भ्रष्टाचार के आरोप में जब्त की गई।

सच मानिए, तो भ्रष्टाचार हमारी सोच से जुड़ा है। आज हर व्यक्ति अपने लिए अधिक से अधिक सुख-सुविधा के साधन जुटा लेने की जुगत में है। इस सोच को बदलने से ही भ्रष्टाचार पर नियंत्रण हो सकेगा और इस सोच में परिवर्तन लाने के लिए जीवन मूल्यों पर जोर देना होगा। कड़े कानून भी हों, पर समाज में जागरूकता लाना जरूरी है। इसके लिए हमें गाँधी की ओर लौटना होगा जिन्होंने अंत्योदय की बात की थी। वे इसके जरिए सामाजिक और मानवीय मूल्यों की स्थापना करना चाहते थे। दरअसल, हमारी सोच ने ही हमारे समाज को खोखला कर दिया है।

(29)प्रश्नः अपने खराब स्वास्थ्य के बावजूद क्या सर्वोच्च न्यायालय को इस देश की सेहत की चिंता है?

उत्तरः हाँ, अपने स्वास्थ्य खराब रहने के बावजूद सर्वोच्च न्यायालय को इस देश के सेहत की चिंता है। आखिर तभी तो नसबंदी के ऑपरेशनों में गड़बड़ियों के सिलसिले में दायर जनहित याचिका का निपटारा करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने नसबंदी ऑपरेशनों के बारे में सावधानी बरतने का आदेश देकर यह कहा है कि सिर्फ नसबंदी कराने वालों के आँकड़े नहीं बढ़ने चाहिए, बल्कि स्त्री और पुरुषों का सम्मानपूर्वक इलाज होना चाहिए।

अदालतों के खराब स्वास्थ्य से मतलब है कि अदालतें न्यायाधीशों की कमी से पिछले कई वर्षो से जूझ रही हैं, फिर भी सर्वोच्च न्यायालय ने सरकार को इस साल यानी 2016 के अंत तक राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति की

घोषणा करने का आदेश देकर यह जता दिया है कि अपने खराब स्वास्थ्य के बावजूद न्यायपालिका को देश की सेहत की चिंता है।

सर्वोच्च न्यायालय की इस टिप्पणी से हाल में अस्पताल में मरने वाली पत्नी की लाश अकेले ले जाने वाले ओडिशा आदिवासी और उत्तरप्रदेश के कानपुर के उस ससुर की छवि भी सामने आ गई जो पतोहू के प्रसव के लिए दर-दर भटकता रहा और रक्तस्राव के कारण उसकी मौत हो गई।

काबिलेगौर है कि इस देश में दस लाख लोग सालाना खराब स्वास्थ्य सेवा के कारण मरते हैं और तकरीबन चार करोड़ लोग स्वास्थ्य पर होने वाले खर्च की वजह से गरीबी रेखा से नीचे चले जाते हैं। इस देश की 70 प्रतिशत आबादी गाँवों में रहती है और 80 प्रतिशत विशेषज्ञ शहरों में। ऐसे में ग्रामीण लोगों के लिए विशेषज्ञों और अच्छे चिकित्सकों की सेवा का उपलब्ध हो पाना संभव नहीं है। उनके लिए प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र का ही सहारा है। अगर वह भी गड़बड़ रहता है और नसबंदी व स्वास्थ्य शिविरों में लापरवाही होती है, तो आम आदमी की सेहत का भगवान ही सहारा है।

उल्लेखनीय है कि ब्रिक्स देशों में भारत का स्वास्थ्य बजट सबसे कम है, जबकि भारत में स्वास्थ्य संबंधी कारोबार दुनिया के तमाम देशों से आगे निकल गया है। यह सब निजी स्वास्थ्य सेवाओं का प्रसार बढ़ने से हुआ है, जिसका मकसद सेहत से ज्यादा मुनाफा कमाना है। एक तरफ सरकार ने स्वास्थ्य के निजीकरण को बढ़ावा दिया है और दूसरी तरफ अपना हाथ खींच लिया है। ऐसे में भारत ऐसा देश बनने पर मजबूर है जहाँ खराब स्वास्थ्यवाले मजदूर और किसान के न चाहते हुए भी देश के उत्पादन में ह्रास होगा। अगर भारत को सुखी और समृद्ध देश बनना है, तो एक व्यापक और जनोन्मुखी स्वास्थ्य नीति होनी ही चाहिए। इसमें निजी क्षेत्र भले संपन्न लोगों के लिए हों, मगर गरीब लोगों के स्वास्थ्य की चिंता तो समाज और सरकार को करनी ही होगी।

(30)प्रश्नः आजादी के सात दशक बीत जाने के बावजूद आपराधिक न्याय व्यवस्था में क्या अर्थपूर्ण परिवर्तन के कोई प्रयास हुए?

उत्तरः नहीं, इस देश की आजादी के सात दशक बीत जाने के बाद भी आपराधिक न्याय व्यवस्था में अर्थपूर्ण परिवर्तन के कोई प्रयास नहीं हुए, क्योंकि न तो पुलिस व्यवस्था और न ही न्यायालयों की व्यवस्था में कोई सुधार किया गया। दंड विधान एवं दंड प्रक्रिया भी 19वीं शताब्दी की ही है।

यही कारण है कि लोगों का न्याय व्यवस्था पर पूरा विश्वास नहीं है और उन्हें थाने अथवा न्यायालय से न्याय मिलने की उम्मीद कम रहती है। इसीलिए अपराध से पीड़ित होने पर भी वह थाने जाना उचित नहीं समझता। हमारे जन प्रतिनिधियों में अनेक अपराधियों के संरक्षक हैं अथवा स्वयं अपराधी हैं और उन्हें यह लचर व्यवस्था अत्यधिक प्रिय है। इसलिए वे इस आपराधिक न्याय व्यवस्था को क्यों बदलना चाहेंगे? जबतक न्याय व्यवस्था संबंधी हमारे दर्शन में क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं होता है तबतक अपराधों से संबंधित आँकड़ों से वास्तविक स्थिति तो कम जाहिर होगी, उनकी वजह से समाज की विकृतियों को छिपाने का काम अधिक होगा।

15 अगस्त, 1947 को भारत ब्रिटिश साम्राज्यवाद से मुक्त तो अवश्य हो गया, परंतु वास्तविकता में वह मात्र सत्ता का हस्तांतरण था। हमारे नए शासकों ने पुरानी व्यवस्था को यथावत स्वीकार कर लिया। जबकि बढ़ते शहरीकरण और टूटते सामाजिक मूल्यों का समाज पर प्रभाव स्पष्ट नजर आता है कि अपराधों की संख्या में लगातार वृद्धि होती जा रही है और वह भी तब जब सभी अपराध थानों में दर्ज नहीं होते। कई बार तो सिर्फ लिखित शिकायत लेकर फरियादी को वापस कर दिया जाता है। छोटे-मोटे अपराध में प्रभावित व्यक्ति तो थाने से भी घबराता है। लड़कियों व महिलाओं से संबंधित प्रकरण लोक-लाज की खातिर छिपा लिए जाते हैं। इसी प्रकार घरेलू हिंसा व दुष्कर्म के प्रकरण तो घर की चारदीवारों में ही रह जाते हैं। केवल हत्या का अपराध शत-प्रतिशत दर्ज होता है, क्योंकि इसे छिपाना मुमकिन नहीं होता।

दूसरी बात यह है कि न्याय की वैकल्पिक प्रणालियों पर विचार करना होगा। हमारी पूरी न्यायिक प्रणाली में सर्वाधिक मामले निचली अदालतों में लंबित होते हैं, क्योंकि जमीनी स्तर पर सिविल और आपराधिक मामले सबसे पहले अधीनस्थ न्यायालयों में ही दाखिल होते हैं। सरकार के ताजा आँकड़ों से भी पता चलता है कि नागरिकों के मानवाधिकारों का सर्वाधिक उल्लंघन पुलिस करती है और वह कार्रवाई से भी बच जाती है। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने वर्ष 2015-16 में पुलिस के खिलाफ 35 हजार से अधिक मामले दर्ज किए उनमें से वर्ष 2015 में मात्र 94 प्रथम दृष्टया रिपोर्ट दर्ज की गई। सरकार ने पुलिस को असीमित अधिकार दे रखे हैं। यही कारण है कि राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग उसके खिलाफ कुछ ज्यादा नहीं कर सकता है।

बीते एक दशक में पुलिस का राजनीतिकरण तेजी से बढ़ा है। इसके साथ ही प्रशासनिक तंत्र की आपराधिक तत्वों से गठजोड़ में भी वृद्धि हुई है। पुलिस ढाँचे की दीवारें धीरे-धीरे ढहती जा रही हैं। हरियाणा और गुजरात में आरक्षण आंदोलन के दौरान प्रशासनिक और पुलिस ढाँचा लगभग ध्वस्त ही हो गया था। अभी कुछ माह पूर्व बैंगलुरु में कावेरी नदी के पानी के बँटवारें के विवाद पर जिस प्रकार हिंसा हुई उससे ऐसा लगा जैसे पुलिस ने हिंसा करने वालों को छूट दे रखी हो। इसी प्रकार उत्तर प्रदेश में मुजफ्फरनगर दंगा तत्काल रोका जा सकता था, बशर्ते कि लखनऊ से अनावश्यक हस्तक्षेप न हुआ होता। मथुरा में जो हिंसा के दौरान पुलिस अधीक्षक और एक दारोगा शहीद हुआ वह नहीं होता यदि स्थानीय अधिकारियों को जमीन पर कब्जा कर समानांतर व्यवस्था चलाने वाले तत्वों के खिलाफ कार्रवाई करने दिया गया होता। हाल में बुलंद शहर में गैंगरेप की घटना भी उत्तर प्रदेश की बिगड़ती कानून व्यवस्था की परिचायक साबित हुई। बिहार का तो कहना ही क्या! शहाबुद्दीन 11 साल के बाद जेल से ऐसे निकले जैसे स्वास्थ्य लाभ करके बाहर आए और उनका भागलपुर जेल से बाहर आने के बाद तकरीबन 1300 वाहन और हजारों लोगों की भीड़ ने ठीक वैसा ही स्वागत किया जैसे चारा घोटाले के आरोपी लालू प्रसाद यादव को जमानत मिलने और जेल से निकलने के बाद हाथी पर चढ़कर शहर की सड़कों पर उतरे थे। इन सभी राज्यों के मामलों से पुलिस और प्रशासन की अक्षमता, लाचारी, तुष्टीकरण और उस पर पड़ने वाले राजनीतिक दबाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं।

आधुनिक और प्रगतिशील भारत के विकास और विधि के शासन के लिए पुलिस सुधार आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है, क्योंकि इन सुधारों से पुलिस की कार्यशैली स्वच्छ और प्रभावी होगी, मानवाधिकारों का संरक्षण होगा और देश में कानून का राज होगा। आज हम एक सामंतवादी पुलिस की जकड़ में है। हमें एक ऐसे पुलिस की जरूरत है जो जनता के प्रति अपनी जवाबदेही को समझे और प्रतिदिन के कार्यो में कानून को लागू करने को सर्वोच्च प्राथमिकता दे।

आजादी के सात दशक बीत जाने के बावजूद हम अपने नागरिकों को बेहतर कानून-व्यवस्था नहीं दे पाए हैं। दुर्भाग्य की बात यह है कि सुरक्षा के नाम पर करोड़ों रुपए खर्च करने के बाद भी आज आमजन अपने आपको असुरक्षित मानता है। आज भी देश की आम जनता पुलिस थाना में

जाकर अपनी शिकायत दर्ज करवाने से कतराती है। क्या कारण है कि देश की सुरक्षा करने वाले सैनिकों को इसी देश की जनता जहाँ एक ओर पूरा सम्मान देती है, वहीं दूसरी ओर पुलिस के प्रति उसी जनता की धारणा ठीक इसके विपरीत है। इसका और कारण चाहे जो हो, मगर मुख्य कारण है पुलिस की नकारात्मक छवि। इसलिए पुलिस को सबसे पहले अपनी छवि में सुधार लाने की जरूरत है जिसके लिए सर्वप्रथम पुलिस को जनता के साथ मित्रवत् व्यवहार करना सीखना होगा।

(31)प्रश्नः उच्चतम न्यायालय ने पुलिस सुधार संबंधी एक अहम फैसले में देशभर के थानों में दर्ज होने वाली सभी एफआईआर को 24 घंटे के अंदर पुलिस या फिर राज्य सरकार के वेबसाइट पर अपलोड करने का जो निर्देश दिया है क्या इससे लोगों के लिए एफआईआर की प्रतिलिपि हासिल करना आसान हो जाएगा?

उत्तर: नागेश जी, आप तो उच्चतम न्यायालय के एक अधिवक्ता हैं इस हैसियत से आप उच्चतम न्यायालय के पुलिस सुधार संबंधी इस अहम फैसले से आप सहमत होंगे कि देश भर के थानों में दर्ज होने वाली सभी एफआईआर को 24 घंटे के अंदर पुलिस या फिर राज्य सरकार के वेबसाइट पर अपलोड करने का जो निर्देश दिया है वह इसलिए कि लोगों के लिए एफआईआर की प्रतिलिपि हासिल करना आसान हो जाए, मगर मुझे नहीं लगता कि पुलिस थानों या राज्य सरकार से प्रतिलिपि हासिल करना आसान हो सकेगा, क्योंकि सर्वोच्च न्यायालय भी इस बात से संभवत: अवगत है कि उसने 2006 में पुलिस सुधार संबंधी जो सात सूत्रीय दिशा निर्देश दिए थे उनपर सही ढंग से अमल अबतक नहीं हो सका है। इससे बड़ी विडंबना और क्या हो सकती है कि एक दशक बीत जाने के बावजूद सर्वोच्च न्यायालय के इस फैसले पर अमल की कोई सूरत नहीं दिख रही है, तो इस बार के फैसले पर पुलिस थाना या राज्य सरकार शीघ्र ही अमल कर पाएगी इसकी उम्मीद कैसे की जाए, यह एक बड़ा प्रश्न है। हाँ, यह तभी संभव है जब खुद सर्वोच्च न्यायालय अपनी संकल्पशक्ति का परिचय दे, क्योंकि पुलिस सुधार देश, समाज और खुद पुलिस के भी हित में है। सर्वोच्च न्यायालय को उन कारणों पर भी गौर करना होगा जिनकी वजह से नतीजा वही ढाक के तीन पात हो जाता है। पुलिस के बड़े अधिकारी और हमारे राजनेता पुलिस को कार्यकुशल और जवाबदेह बनाने के लिए अपनी इच्छाशक्ति का परिचय देंगे इसका कोई आसार इसलिए नजर नहीं आता है,

क्योंकि हम देख रहे हैं कि अपने राज्य में प्रशासन और सरकार के शीर्ष पर विराजमान राजनेता के हजार प्रयास और पुलिस प्रशासन को आवश्यक निर्देश के बावजूद विधि-व्यवस्था की स्थिति दिन-प्रति-दिन बद से बदतर होती चली जा रही है। और राज्यों की भी स्थिति इससे अच्छी नहीं कही जाएगी। फिर कैसे उम्मीद की जाए कि सर्वोच्च न्यायालय के हालिए फैसले पर शीघ्र ही अमल हो पाएगा।

यह बात सही है कि एफआईआर एक सार्वजनिक दस्तावेज है और उसकी प्रतिलिपि हासिल करना आसान होना चाहिए, लेकिन इस देश में आम आदमी के लिए यह काम उतना ही मुश्किल है जितना एफआईआर दर्ज करना। दरअसल, सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर अमल करने में आनाकानी देश के नीति-नियंताओं की नीयत पर एक गंभीर सवाल इसलिए खड़ा है, क्योंकि मौजूदा दौर के हमारे औसत नेता पुलिस का इस्तेमाल अपनी राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति में करते रहना चाहते हैं। ऐसी स्थिति में एफआईआर की प्रतिलिपि हासिल करना लोगों के लिए आसान नहीं होगा।

हमारे देश की पुलिस व्यवस्था दुनिया के सबसे लचर तंत्रों में से एक है। पुलिसकर्मियों की कम संख्या, समुचित संसाधनों, संवेदनशीलता और प्रशिक्षण का अभाव, भ्रष्टाचार, आंतरिक व विभागीय लापरवाही आदि अनेक कमजोरियों ने पुलिस व्यवस्था को लगभग पंगु बना दिया है। पुलिस सुधार के लिए कई रिपोर्ट तैयार हुई, पर उनको सही तरीके से अमलीजामा नहीं पहनाया जा सका। पुलिस तंत्र में अपराध की जाँच तथा कानून-व्यवस्था की जिम्मेवारी को अलग-अलग करने की माँग लंबे समय से की जा रही है। संख्या कम होने से और बोझ अधिक होने के कारण पुलिसकर्मियों को तनावपूर्ण स्थितियों में काम करना पड़ता है। पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो की एक रिपोर्ट में बताया गया था कि देश में जनवरी, 2014 में एक लाख की आबादी के लिए मात्र 139.76 पुलिसकर्मी थे। बड़ी संख्या में पुलिसकर्मी अतिविशिष्ट व्यक्तियों की सुरक्षा में और विभागीय कार्यों में लगे हैं। गृह मंत्रालय के मुताबिक, 2015 में भारतीय पुलिस सेवा के लिए नियत 4754 पदों में 906 पद खाली थे। ऐसे में जरूरी यह है कि पुलिस तंत्र को जवाबदेह बनाने के साथ उसे बेहतर बनाने के भी ठोस प्रयास किए जाएँ।

सर्वोच्च न्यायालय के 24 घंटे के भीतर थाने या राज्य सरकार को एफआईआर ऑनलाइन करने के आदेश का पालन यदि होता है, तो इससे ड्राइविंग लाइसेंस और वाहन के कागजात निबंधन प्रमाण साथ लेकर चलने

से लोगों को आजादी मिल जाएगी। वे दस्तावेज मोबाइल पर उपलब्ध होंगे। 24 घंटे के भीतर एफआईआर ऑनलाइन करने से न केवल पुलिस सुधार व प्रणाली के सुधार कर दिशा में मील के पत्थर साबित होंगे, बल्कि पुलिस के कामकाज में पारदर्शिता लाने में इससे बड़ी मदद मिलेगी। पुलिस के लिए यह आदेश राहत जैसी है, क्योंकि कई बार पुलिस पर बिना वजह एफआईआर को दबाकर रखने का दबाव रहता था। अब उससे मुक्ति मिल जाएगी। नि:संदेह एफआईआर ऑनलाइन करने से देश और समाज को ज्यादा मजबूती मिलेगी। इसलिए ऐसे सुधार का सिलसिला चलता रहना चाहिए जबतक यह नहीं होगा व्यवस्था हाँफती रहेगी।

(32)प्रश्न: जब समय के साथ धार्मिक-सांस्कृतिक तौर-तरीकों में तब्दीली होती है, तो फिर तीन तलाक तौर-तरीके में क्यों नहीं हो सकती?

उत्तर: तीन तलाक के मुद्दे पर अलग-अलग चार याचिकाओं पर सर्वोच्च न्यायालय में सुनवाई चल रही है। एक मुस्लिम महिला ने सर्वोच्च न्यायालय में याचिका दायर करके तीन तलाक, हलाला निकाह और बहू-विवाह की व्यवस्था को असंवैधानिक घोषित किए जाने की माँग की थी। याचिकाकर्ता ने मुस्लिम शरीयत कानून 1937 के भाग दो को असंवैधानिक करार देते हुए इसे मौलिक अधिकारों का हनन बताया था। सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश टी. एस. ठाकुर की अध्यक्षतावाले खंडपीठ ने इस मामले की सुनवाई करते हुए ऑल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड और अन्य संस्थाओं को नोटिस जारी किया था। इसी नोटिस के बाद ऑल इंडिया मुसलिम पर्सनल लॉ बोर्ड ने दाखिल हलफनामा में कहा है कि सामाजिक सुधार के नाम पर पर्सनल लॉ को बदला नहीं जा सकता, क्योंकि पर्सनल लॉ कोई कानून नहीं है, बल्कि यह धर्म से जुड़ा सांस्कृतिक मामला है। ऐसे में तलाक की वैधता अदालत कैसे तय कर सकता है। लॉ बोर्ड ने हलफनामे में तीन तलाक को चुनौती देने को असंवैधानिक करार देते हुए कहा है कि धार्मिक अधिकार पर अदालत फैसला नहीं दे सकता।

मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड ने अपने हलकनामे में तीन तलाक पर ऐसी खोखली दलीलें पेश की हैं जो आज के युग में स्वीकार नहीं हो सकती। जैसे उसने प्रथमत: कहा कि अगर तीन तलाक की सुविधा न हो, तो लंबी न्यायिक प्रक्रिया के कारण पति-पत्नी से छुटकारा पाने के लिए हत्या कर सकते हैं। दूसरे यह भी कोई स्वस्थ चिंतन नहीं कि महिलाओं के

मुकाबले पुरुषों में सही निर्णय लेने की क्षमता अधिक होती है। उसने बहूविवाह को भी उचित ठहराते हुए यह साबित करने की कोशिश की कि तीन तलाक से उनके समाज की महिलाओं के हितों को कहीं कोई चोट नहीं पहुँच रही है। मुसलिम पर्सनल लॉ बोर्ड की ये चारों दलील हास्यास्पद इसलिए हैं कि पहला यदि तीन तलाक से मुस्लिम महिलाओं के हितों को कहीं चोट नहीं पहुँच रही है तो मुस्लिम महिलाएँ तीन तलाक के खिलाफ सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा क्यों खटखटाती? बोर्ड को यह मालूम होना चाहिए कि किस तरह बड़ी संख्या में मुस्लिम महिलाएँ और उनके समाज के बुद्धिजीवी तीन तलाक के खिलाफ उठ खड़े हुए हैं। ऐसा इसलिए हुआ, क्योंकि समय के साथ इस प्रथा में आवश्यक संशोधन-परिवर्तन करने से इनकार किया गया। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि पर्सनल लॉ बोर्ड ने अपने हलफनामे में स्वयं स्वीकार किया है कि पर्सनल लॉ कोई कानून नहीं है, बल्कि यह धर्म से जुड़ा सांस्कृतिक मामला है। और जब यह धर्म से जुड़ा सांस्कृतिक मामला है तो धार्मिक-सांस्कृतिक मामलों में तो आवश्यक सुधार समय-समय पर होता आया है। दूसरी बात यह कि 'पर्सनल लॉ' में तो वैसे भी 'कानून' शब्द जुड़ा है।

बहुचर्चित शाहबानो मामले में तो सर्वोच्च न्यायालय ने गुजारा भत्ता देने का फैसला किया था और इस फैसले को संसद की ओर से पलटने के बाद मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड के तत्कालीन नेताओं ने ऐसा करने का आश्वासन दिया था। इससे स्पष्ट है कि यदि मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड ने मनमाने तरीके से तलाक का शिकार होने वाली महिलाओं के हितों की रक्षा के लिए कोई कदम उठाए होते, तो शायद सर्वोच्च न्यायालय को दखल देने की नौबत नहीं आती।

सबसे बड़ी बात तो यह है कि दुनिया के कई इस्लामिक देशों में तीन तलाक की प्रथा खत्म हो चुकी है और जब कई इस्लामिक देश तीन तलाक की प्रथा को छोड़ सकते हैं, तो भारत में मुस्लिम ऐसा क्यों नही कर सकते? कोई भी समाज सदियों से पुराने नियम-कानूनों में बँधकर आगे नहीं बढ़ सकता। समय रहते मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड को अपने रूख पर विचार करना चाहिए अन्यथा वह अपने ही लोगों के समर्थन से वंचित हो सकता है और उसका यह दलील कि बहुविवाह की सामाजिक प्रथा पुरुषों के लालच के लिए, बल्कि सामाजिक जरूरत के हैं बिल्कुल थोथी साबित हो जाएगी। संविधान में निहित मौलिक अधिकार के उल्लंघन के तौर पर इसे

पेश नहीं किया जा सकता है और दंपत्ति के बीच जब तनाव पैदा होता है, तो पति जल्द-से-जल्द पत्नी से छुटकारा चाहता है ऐसे में पति अवैध तरीके से पत्नी की हत्या भी कर सकता है, हास्यास्पद नहीं तो और क्या है?

वर्ष 2011 की जनगणना के आँकड़ों के अनुसार मुसलमानों में तलाक के मामले सबसे ज्यादा होते हैं। अन्य धर्मों के मुकाबले हिंदुओं में तलाक कम होते हैं। दरअसल, हिंदू हो या मुसलमान, सिख हो या ईसाई, पति-पत्नी के बीच रिश्ते ईमानदारी की है। एक औरत और एक मर्द के बीच में मोहब्बत का वो रिश्ता जो एक पति-पत्नी के बीच होता है जिसे हर मजहब में पाक और सबसे ऊँचे दर्जे का माना गया है। अगर उसी रिश्ते में ईमानदारी न रही, तो फिर कौन सा रिश्ता मजबूत हो सकता है- एक औरत और एक मर्द में सिर्फ जिस्मानी रिश्ता! सच तो यह है कि समाज का निर्माण ही कुछ इस प्रकार का हुआ है कि औरतों को पूजनीय तो बना सकते हैं, पर उसे ही सारी नैतिकताओं का पालन करना होगा और जरूरत पड़ने पर परीक्षाओं से गुजरना होगा। लेकिन मेरा मानना है कि औरत हिंदू हो या मुस्लिम उसे देवी बनाकर न रखा जाए, उसे तो बस वही सामान्य से अधिकार चाहिए जो पुरुष अपने लिए वांछनीय मानता है। बस सिर्फ इतने मात्र से ही सारा झंझट दूर हो जाएगा, लेकिन दिक्कत यह है कि पुरुष वही सामान्य-सा अधिकार औरत को देना नहीं चाहता है। मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड के लोगों के साथ भी यही दिक्कत है। उन्हें अपना नजरिया बदलना होगा बदलते समय के मुताबिक। आखिर तभी तो साहित्यकार जावेद अख्तर ने भी मुस्लिम लॉ बोर्ड को तलाक को सही ठहराने की कड़े शब्दों में निंदा करते हुए बोर्ड के लोगों को अपने समुदाय का सबसे बड़ा दुश्मन कहा है।

मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड ने अपने हलफनामें में जो कुतर्क दिए है, जरा सोचें हम, यह किस सदी में बात हो रही है? यह किस मुल्क में बात हो रही है? यह किसके लिए बात हो रही है? बतौर इनसान यह तो महिलाओं की बेइज्जती है और यह बेइज्जती मजहब के नाम पर है। यह बेइज्जती उन करोड़ों महिलाओं की है, जो मर्दो को पैदा करती हैं और उनकी परवरिश करती हैं। घर चलाती हैं, वोट देती हैं, सरकारें चुनती हैं, चुनकर जाती हैं और समाज व देश के बारे में फैसला लेती हैं। लगे हाथ एक सवाल यह भी हो सकता है कि हजारों घरों, दफ्तरों की मुखिया महिलाएँ हैं जिनपर जिम्मेवारियाँ हैं। वे अकेले फैसला लेती हैं। क्या ऑल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड ऐसी सभी महिलाओं को मर्दो से ज्यादा हक देगा?

इस देश में एक संविधान है, जो 'हम भारत के लोग' की बात करता है, हिंदू या मुसलमान की नहीं। वह मजहब मानने की आजादी देता है। सभी नागरिकों की बराबरी का हक देता है। बतौर नागरिक, बराबरी का हक देते वक्त वह यह नहीं कहता है कि मुसलमान महिलाओं को, मर्दो के मुकाबले कम हक होंगे। किसी भी विचार या मजहब की कोई बात, अगर संविधान के मूल्यों से टकराएगी, तो अंततः बात संविधान की ही मानी जाएगी। अब कोई इससे सहमत हो या न हो। तो लॉ बोर्ड ने जो हलफनामा दिया है, वह संविधान के मुताबिक है या उसके खिलाफ?

दरअसल, मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड में जाहिर विचार एक खास खाँचे में खास तरह की मुस्लिम महिला की तस्वीर गढ़ता है। इसके लिए महिलाएँ अभी इंसान के दर्जे में ही नहीं हैं। वह पुरुषों से न सिर्फ नीचे है, बल्कि वह उसके इस्तेमाल के लिए महज एक जिस्म है। अगर ऐसा न होता, तो बोर्ड की जीती-जागती महिलाओं की तकलीफ सुनाई-दिखाई देती। इस्लाम की रूह इंसाफ और बराबरी है। मुस्लिम महिलाएँ तो यही माँग रही हैं न!

(33)प्रश्नः पिछले दिनों सर्वोच्च न्यायालय ने उत्तरप्रदेश के मंत्री आजम खान के आधारहीन बयान पर उन्हें और उ.प्र. सरकार को नोटिस जारी करते हुए पूछा है कि ऐसे आपत्तिजनक बयान के मद्देनजर क्यों नहीं आपराधिक मामला दर्ज किया जाए? इस पर आप क्या कहना चाहेंगे?

उत्तरः नागेश जी, सूचना-तकनीक की क्रांति के दौर में, जब निरंतर चर्चा में बने रहना लोकप्रियता का एक पैमाना माना जाने लगा है, तो कुछ नेताओं ने अनर्गल प्रलाप के जरिए सुर्खियाँ बटोरने में महारत हासिल कर ली है। अपनी राजनीति चमकाने के ख्याल से वे ऐसे आधारहीन बयान देने में भी नहीं हिचकते, जो किसी की भावनाओं को आहत करते हों। उत्तर प्रदेश के बड़बोले मंत्री आजम खान का नाम इसमें प्रमुखता से लिया जाता है। विगत 29 जुलाई, 2016 को उ.प्र. के बुलंद शहर में हाइवे पर लूटेरों द्वारा मां-बेटी के साथ हुए सामूहिक बलात्कार के मामले में यह कहकर तो आजम खान ने संवेदनहीनता की सारी हदें पार कर दीं कि 'यह घटना राजनीतिक साजिश का नतीजा हो सकती है।' ऐसा कहकर उन्होंने न केवल पीड़िता का मजाक उड़ाया, बल्कि मंत्री के नाते जाँच को प्रभावित करने की कोशिश भी की। जिस सरकार का मंत्री ऐसी भाषा बोले, पीड़ित को उससे न्याय की कितनी उम्मीद की जा सकती है?

आखिर पीड़ित परिवार द्वारा सर्वोच्च न्यायालय में न्याय की गुहार लगाने के बाद अदालत ने मंत्री आजम खान और उत्तर प्रदेश सरकार को नोटिस जारी करते हुए पूछा है कि ऐसे आपत्तिजनक बयान के मद्देनजर क्यों नहीं आपराधिक मामला दर्ज किया जाए? ऐसा करके सर्वोच्च न्यायालय ने उचित ही सख्ती दिखाई है। न्यायालय ने यह भी पूछा है कि क्या ऐसे बयान अभिव्यक्ति की आजादी के दायरे में आते हैं? लेकिन अफसोस की बात यह है कि सर्वोच्च न्यायालय की फटकार के बावजूद आजम खान ने शर्मिंदा होने की बजाय पुनः कहा कि 'मैं अपने बयान पर कायम हूँ।' उन्होंने यह भी कह दिया कि दुष्कर्म के ऐसे मामलों में इस्लामिक कानून लागू किया जाना चाहिए और एक हफ्ते में सजा देने की व्यवस्था होनी चाहिए।

यह पहली बार नहीं है जब आजम खान ने विवादित बयान से अपनी समाजवादी पार्टी और प्रदेश सरकार की किरकिरी करायी है, बावजूद इसके उनका मंत्री पद पर बने रहना यह सिद्ध करता है कि प्रदेश सरकार को अपने नागरिकों के मान-सम्मान से ज्यादा अपने सत्ता समीकरणों की फिक्र है, कारण कि सपा को अल्पसंख्यक वोट की चिंता है। ऐसे कुछ बयानवीर नेता केवल सपा में ही नहीं, बल्कि हर पार्टी में सुर्खियाँ बटोर रहे हैं, खासकर तब जब उ.प्र. में 2017 में चुनाव होने को है।

आपने देखा नहीं बिहार में आई बाढ़ आपदा के समय राहत को लेकर यों तो सभी राजनीतिक पार्टियों के नेताओं के अनर्गल बयान आते ही रहते हैं, मगर पिछले दिनों जद(यू) के एक प्रवक्ता ने जो बयान दिया उससे तो आम जनता हैरत में पड़ गयी, क्योंकि उक्त प्रवक्ता ने कहा कि अगर केंद्रिय मंत्रियों ने बिहार को जल्द राहत पैकेज नहीं दिलवाया, तो उन्हें बिहार में घुसने नहीं दिया जाएगा। इस बयान के पलट एक केंद्रिय राज्यमंत्री ने कहा कि वे पटना आएँगे। यदि हिम्मत हो, तो जद(यू) उन्हें रोककर दिखाए। बिहार जद(यू) की जागीर नहीं। आखिर आप ही बताइए कि राजनेताओं को आम जनता के प्रति ऐसे संवेदनहीन और गैरजवाबदेह बयान देने से जनतंत्र कैसे मजबूत होगा? मुझे तो ऐसा लगता है पार्टी के ऐसे अनाप-शनाप और अनर्गल बयान देने वाले नेता आमजन की नजरों से तो गिर ही रहे हैं अपनी पार्टी को भी आने वाले दिनों में लेकर डूब जाएँगे।

इस देश के नागरिकों को भारतीय संविधान ने अभिव्यक्ति की आजादी दी है, पर इस आजादी का बेजा इस्तेमाल अब वे लोग करने लगे हैं जो सत्ता में हैं, सरकार में हैं, विधायिका में हैं और सार्वनजनिक जीवन

में हैं। राजनीतिक दलों के प्रमुख के रूप में भी वे अभिव्यक्ति के नाम पर क्षेत्रीयता, भाषाई द्वेष और सांप्रदायिक विद्वेष फैलाने में एक मिनट की देरी नहीं लगाते हैं।

सर्वोच्च न्यायालय अब प्रतिदिन टीवी ट्विटर और फेसबुक पर जिम्मेवार राज को चलाने वालों की अभिव्यक्ति की आजादी को जाँचने का निर्णय कर रहा है, यह स्वागत योग्य कदम है। जिस राज्य को अपने नागरिकों की सुरक्षा देनी चाहिए, कानून-व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाना चाहिए, वही अब जिम्मेवारियों को भूलने लगे, तो न्यायपालिका का यह कदम महत्वपूर्ण है।

अभी पिछले दिनों 5 सितंबर, 2016 को यही मंत्री आजम खान ने गाजियाबाद में डॉ. भीमराव अंबेदकर पर मुख्यमंत्री अखिलेश यादव की उपस्थित में ही आपत्तिजनक टिप्पणी कर दी। उन्होंने कहा कि पिछली सरकार यानी मायावती सरकार ने पूरे राज्य में एक ही व्यक्ति की कई मूर्तियाँ लगाई थीं। वह व्यक्ति आगे हाथ का इशारा करके खड़ा है। इसका मतलब है जहाँ मैं खड़ा हूँ, वह जमीन तो मेरी है ही, सामने का खाली प्लॉट भी मेरा है। हर मूर्ति की अँगुली आगे की तरफ होती है। आजम खान के इस बयान के बाद सपा के विधानपरिषद सदस्य आशु मलिक ने आजम खान पर हमला बोलते हुए कहा कि उन्होंने मुसलमानों को बर्बाद किया है। खुद को मंत्री और पत्नी को राज्यसभा सदस्य बनवाने के बाद अब वे अपने बेटे के लिए जमीन तैयार कर रहे हैं। मुसलमानों के दुश्मन आजम खान एहसान का बदला नुकसान करके चुकाते हैं। गाजियाबाद में आला हजरत हज हाउस के उद्घाटन समारोह के बाद जनसभा को संबोधित करते हुए आजम खान ने जो बयान दिया वह एक तरह से बाबा साहब डॉ. भीमराव अंबेडकर का मजाक उड़ाया था।

राजनेताओं की यह अभिव्यक्ति किसी-न-किसी नियंत्रण की जरूरत महसूस करने लगी है। राजनीतिक दलों की जिम्मेवारी होती है कि वे बिना ब्रेक की गाड़ी चलाने वाले अपने नेताओं को ठीक करें, लेकिन इसकी जगह वे मंत्री बना दिए जाते हैं। यदि आजम खान जैसे बड़बोले मंत्री व नेता को रोका न गया, तो ये कानून-व्यवस्था से आम नागरिक का भरोसा उठा देंगे।

(34)प्रश्नः सरोगेसी क्या है? सामान्य शब्दों में सरोगेसी का मतलब क्या है? क्या सरोगेसी नियमन विधेयक-2016 के कानून बनने पर गरीब महिलाओं, खासतौर पर ग्रामीण और आदिवासी इलाकों में रहने वाली महिलाओं के उत्पीड़न पर रोक लगाएगा? क्या सरोगेसी के व्यावसायिक इस्तेमाल को पूरी तरह से प्रतिबंधित करना सही है?

उत्तरः एक महिला व एक सरोगेसी दंपती के बीच का आपस का आंतरिक एक एकरारनामा (Agreement) है, जो अपना खुद का बच्चा चाहता है। सामान्य शब्दों में सरोगेसी का मतलब है कि बच्चे के जन्म तक एक महिला की 'किराए की कोख' अमूमन सरोगेसी की मदद तब ली जाती है, जब किसी दंपती को बच्चे को जन्म देने में कठिनाई आ रही हो जो महिला किसी और दंपती के बच्चे को अपनी कोख से जन्म देने को तैयार हो जाती है, तो उसे 'सरोगेट मदर' कहा जाता है।

केंद्रीय मंत्रिमंडल ने विगत 24 अगस्त 2016 को सरोगेसी नियमन विधेयक 2016 को संसद में पेश करने के लिए अपनी मंजूरी प्रदान की। अब संसद के दोनों सदनों की ओर से विधेयक को मंजूरी मिलने के 10 महीने बाद कानून को अधिसूचित किया जाएगा।

सरोगेसी नियमन विधेयक-2016 को कानून बन जाने के बाद व्यावसायिक तौर पर सरोगेसी से बच्चे के जन्म पर पूरी तरह पाबंदी लग जाएगी और केवल कानूनी रूप से विवाहित भारतीय दंपतियों को इस तरीके को इस्तेमाल करने की अुनमति होगी। वह भी तब जब वे कम से कम पाँच साल से शादी-शुदा हो। विदेशियों और विदेशी भारतीय नागरिक का कार्ड रखने वाले एनआरआई व पीआईओ को भी सरोगेसी के तरीके को अपनाने से प्रतिबंधित रहेंगे। यानी नए कानून के तहत व्यावसायिक सरोगेसी पर पूरी तरह रोक लग जाएगी। इस विधेयक में अविवाहित जोड़ों, बच्चे को अपनाने वाली अकेली महिला या पुरुष, सहजीवन शैली (Live in Relationship) में रहने वाले लोगों और समलैंगिकों द्वारा सरोगेसी के माध्यम से जन्में बच्चे को अपनाने पर रोक लगाने का प्रस्ताव है। इसका उद्येश्य देश में अनैतिक तौर-तरीकों पर रोक लगाना है, क्योंकि भारत व्यावसायिक सरोगेसी के लिहाज से हब बनकर उभर रहा था।

यह विधेयक गरीब महिलाओं, खासतौर पर ग्रामीण और आदिवासी इलाकों में रहने वाली महिलाओं के उत्पीड़न पर रोक लगाएगा और किराए की कोख के कारोबार पर रोक लगाएगा। इससे शरारती तत्वों द्वारा महिलाओं

के संभावित शोषण की आशंका रहती है। विधेयक में बच्चे को छोड़ने और व्यावसायिक सरोगेसी के तरीके से बच्चे को जन्म दिलाने जैसे उल्लंघन के मामलों में 10 साल तक की कैद और 10 लाख रुपए के जुर्माने का प्रावधान है। ऑस्ट्रेलिया, ब्रिटेन, कनाडा, जर्मनी, फ्रांस, न्यूजीलैंड, स्वीडन जैसे देशों में इसके व्यावसायिक इस्तेमाल पर रोक है।

सरोगेसी यानी किराए की कोख का दुरुपयोग खूब हो रहा था। बाहर से जो भी लोग आते थे, वह काफी कम पैसे में गरीब औरत को उनके बच्चे की माँ बनने के लिए राजी कर लेते थे। पिछले ही दिनों सीएसआर की निदेशक ने भी अपनी रिपोर्ट में साफ कहा था कि किराए की कोख के कारोबार के जरिए क्लिनिक में लोगों से 45 से 50 लाख रुपए तक वसूले जा रहे हैं, परंतु गरीब महिलाओं के हिस्से में केवल 3-4 लाख रुपए ही आ रहे हैं। रिपोर्ट में यह भी खुलासा किया गया था कि आर्थिक लाभ का लालच गरीब महिलाओं को सरोगेट मदर बनने को मजबूर कर रहा है। गृह मंत्रालय की रिपोर्ट भी बताती रही है कि कुछ विदेशी लोग टूरिस्ट वीजा पर भारत आकर सरोगेसी करा रहे हैं। सर्वेक्षण के अनुसार देश में अबतक दो हजार से भी अधिक बच्चे सरोगेट प्रक्रिया के माध्यम से जन्म ले चुके हैं। वर्तमान में केवल देश में ही नहीं, बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी भारत के किराए की कोख के लिए एक बड़ा बाजार बनने की चर्चा जोरों पर थी। भारत में अबतक सरोगेसी अनुमानतः 450 मिलियान वार्षिक अमेरिकन डॉलर का कारोबार बन चुका है। सरकार को यह सब कारास्तानी नागवार गुजरी और इस तरह की कार्रवाई करनी पड़ी। ऐसी स्थिति में सरोगेसी यानी किराए की कोख का व्यावसायिक इस्तेमाल को पूरी तरह प्रतिबंधित करना बिल्कुल सही है।

(35)प्रश्नः क्या उच्चतम न्यायालय या कोई न्यायालय अपने आदेशों से रामराज ला सकता है?

उत्तरः नहीं, अदालत अपने आदेशों से रामराज नहीं ला सकती है। पिछले दिनों एक मामले पर सुनवाई करते हुए उच्चतम न्यायालय ने भी यह टिप्पणी की कि अदालत अपने आदेशों से रामराज नहीं ला सकती। इस टिप्पणी ने रामराज और आज के अर्थ में सुशासन की अवधारणा को लेकर एक पुरानी बहस के तार फिर से छेड़ दिए। प्रश्न उठता है कि क्या हमारे समक्ष सुराज या सुराज्य का कोई आदर्श नमूना है? महात्मा गाँधी की दृष्टि में सुराज्य का सर्वोत्तम आदर्श नमूना है राम राज्य या रामराज। उनका सपना

था कि भारत जब आजाद हो, तो यहाँ भारतीय परंपरा के अनुकूल रामराज की स्थापना हो। भारत के लिए रामराज से बेहतर प्रजातंत्र का कोई दूसरा नमूना नहीं हो सकता। ब्रिटिश साम्राज्य से मुक्त होकर भारत आज से सात दशक पूर्व आजाद हो गया, मगर क्या गाँधी के सपनों के अनुसार रामराज आया? यह प्रश्न हमारे सामने है। उत्तर है नहीं, क्योंकि पश्चिम से ग्रहण वर्तमान भारतीय लोकतंत्र में विरोध को बढ़ावा दिया गया है। विपक्षी पार्टियाँ यह अपना कर्त्तव्य मानती हैं कि वे सत्ताधारी पार्टियों का विरोध करें। रामराज के प्रजातंत्र ने केवल विरोध के लिए विरोध को नकारा है। रामराज में सभी धर्मो के प्रति आदर की भावना रहती है। लोग पहले अपनी गलती देखते थे, बाद में पड़ोसी की। रामराज का संदेश है कि जो व्यक्ति अपनें धर्म की प्रशंसा तथा दूसरे धर्म की निदां करता है, वह स्वयं अपने धर्म की हानि करता है। आज यही तो हो रहा है। रामराज का मूलतंत्र था–'जति पांति पूछै नहीं कोई, हरि का भजे सो हरि का होई।' रामराज में वर्ग, जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्रीयता आदि का भेदभाव नहीं था, लेकिन वर्तमान भारत में यह सब कुछ देखने को मिल रहा है। ऐसी विषम स्थिति में अदालत के आदेशों से भी रामराज की कल्पना नहीं की जा सकती है।

(36)प्रश्नः धर्म के नाम पर वोट माँगने या चुनावी लड़ाई के लिए इस्तेमाल करने को लेकर उच्चतम न्यायालय के हाल के फैसले पर आप कहना चाहेंगे?

उत्तर: सर्वोच्च न्यायालय ने 20 अक्टूबर, 2016 को धर्म के नाम पर वोट माँगने से संबंधित मामले की सुनवाई करते हुए साफ कर दिया कि धर्म के नाम पर न तो वोट माँगा जा सकता है और न ही चुनावी लड़ाई के लिए धर्म का इस्तेमाल हो सकता है। सर्वोच्च न्यायालय के इस फैसले का तहेदिल से मैं स्वागत करता हूँ, क्योंकि धर्म और राजनीति को वास्तव में मिश्रित नहीं किया जा सकता।

मामले की सुनवाई के दौरान भारत के मुख्य न्यायाधीश टी. एस. ठाकुर ने कहा कि पिछले 20 साल में रिफरेंस लम्बित है फिर भी संसद ने कुछ नहीं किया। अदालत ने यह भी कहा कि हो सकता है कि सरकार इस बात का इंतजार कर रही हो कि सेक्सुयल हरैस्मेंट मामले में जिस तरह से सुप्रीम कोर्ट ने फैसला दिया था, वही इस मामले में भी हो जाए।

सुप्रीम कोर्ट ने धर्म को परिभाषित करना मुश्किल बताते हुए व्यवस्था दी थी कि हिन्दुत्व जीवन शैली है। कानून का उद्येश्य यह है कि

धर्म का इस्तेमाल नहीं होना चाहिए। धर्म को राजनीतिक प्रक्रिया से अलग रखना चाहिए। अदालत ने यह भी कहा कि कानून को इस तरह से क्यों परिभाषित नहीं किया गया कि धर्म के आधार पर वोट के लिए अपील न हो। इस लिहाज से फैसले को पूर्णरूप से देखा जाए तो अदालत का फैसला स्वागतयोग्य है।

(37)प्रश्नः बिहार प्रदेश के बहुचर्चित आदित्य सचदेवा हत्याकांड के अभियुक्त रोकश रंजन उर्फ रॉकी यादव को पटना उच्च न्यायालय से जमानत मिल जाने पर पीड़ित परिवार ने जिस लहजे में अपनी व्यथा अभिव्यक्त की है उस पर आपकी क्या प्रतिक्रिया है?

उत्तरः बिहार प्रदेश के बहुचर्चित आदित्य सचदेवा हत्याकांड के अभियुक्त राकेश रंजन उर्फ रॉकी यादव को पटना उच्च न्यायालय से जमानत मिल जाने पर पीड़ित परिवार ने काफी रोष व्यक्त करते हुए कहा है कि 'मुझे सरकार के लोगों से न्याय की उम्मीद समाप्त हो गई है।' पत्रकारों से बातचीत में आदित्य के माता-पिता ने कहा कि सूबे के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार मेरे बेटे की हत्या के एक महीने बाद घर आए। कहा-मैं समझता हूँ। ये बहुत बड़ा मामला है। आपको न्याय जरूर मिलेगा। मैं बोलता नहीं, काम करता हूँ। सरकार पर पूरा भरोसा रखें। पर अब क्या हुआ। कातिल को सजा मिलने की सारी उम्मीदें खत्म हो गई। पाँच महीने में आरोपी को जमानत मिल गया। कहाँ है बिहार सरकार? आगे आदित्य के पिता श्याम सुन्दर सचदेवा ने कहा कि एक हत्यारे की रिहाई ये बिहार के लिए काला दिन है। रॉकी के पिता बिंदी यादव भी काफी दबंग किरदार के व्यक्ति है। रॉकी की रिहाई से साफ पता चलता है कि कानून को खरीदा गया है। फूट-फूट कर रोई चंदा सचदेवा ने पटना हाईकोर्ट से भी पूछा है कि वह हमें बताए कि किस आधार पर रॉकी को जमानत दी गई। सारा साक्ष्य रॉकी के खिलाफ था। हत्या के बाद साथ रहे दोस्तों की गवाही पूरी दुनिया ने देखी-सुनी है। आज भी वह वीडियो मेरे पास है। कोई कभी देख ले। बिहार सरकार के कानून के मंदिर से अब विश्वास उठ गया है। चंदा सचदेवा ने आगे कहा नीतीश कुमार मेरे साथ और तमाम जनताओं के साथ धोखा किया है। एक तरफ इंसाफ की बात करते हैं, वही दूसरी तरफ एक अपराधी को सजा दिलाने की जगह उसे बेल दे दी है। मुझे हिम्मत नहीं कि मैं सुप्रीम कोर्ट जाऊँ। हमें सरकार ही इंसाफ दिलाए। बिहार सरकार रॉकी की जमानत को रद्द करें और सुप्रीम कोर्ट तुरंत जाएं। जबतक मेरे बेटा को इंसाफ नहीं

मिलेगा तबतक हम वोट नहीं डालेंगे। वहीं दूसरी ओर चंदा ने बिहार के तमाम नेताओं को भी चुनौती दे दी, कहा-'कोई भी राजनेता हमारे दरवाजे पर न आएँ, जबतक मेरे बेटे को इंसाफ न मिले।'

ये थे आदित्य के माता-पिता के आक्रोश, जिसे उन्होंने इतने भाव भरे शब्दों में व्यक्त किए। जहाँ तक पीड़ित परिवार की अभिव्यक्ति पर मेरी प्रतिक्रिया का सवाल है मैं आपको यह बताना लाजिमी समझता हूँ कि शहाबुद्दीन और राजबल्लभ यादव के बाद रॉकी यादव का यह तीसरा मामला है जिसमें आरोपी को उच्च न्यायालय से जमानत दिलाने में मदद करने का आरोप बिहार सरकार पर लग रहा है। मो. शहाबुद्दीन के मामले में तो आपने देखा कि पटना उच्च न्यायालय से जमानत मिलने के बाद सरकार अपनी छवि बचाने के ख्याल से सर्वोच्च न्यायालय में अपील की और मो. शहाबुद्दीन की जमानत रद्द हो गई तथा आज पुनः वह जेल में हैं। राजबल्लभ यादव पर सुनवाई 24 अक्टूबर को होगी।

रॉकी यादव के मामले में भी बिहार के प्रधान अपर महाधिवक्ता ने कहा है कि रॉकी की जमानत रद्द कराने के लिए सरकार सुप्रीम कोर्ट जाएगी, वहीं विधान पार्षद सह जद(यू) प्रवक्ता नीरज कुमार ने कहा कि बिहार सरकार रॉकी यादव की जमानत रद्द करवाने के लिए उच्चतम न्यायालय जाएगी और दोषी को सजा दिलाने के लिए सरकार अंतिम समय तक लड़ेगी।

(38)प्रश्नः क्या निर्वाचन आयोग के इस निर्देश का आप स्वागत करते हैं जिसमें सत्तारूढ़ पार्टियाँ सरकारी धन, जमीन या मशीनरी का इस तरह इस्तेमाल नहीं करे, जिनसे पार्टी या उनके चुनाव चिन्ह का प्रचार होता हो?

उत्तरः हाँ, निर्वाचन आयोग का यह निर्देश स्वागत योग्य है जिसमें कहा गया है कि सत्तारूढ़ पार्टियाँ सरकारी धन, जमीन या मशीनरी का इस तरह इस्तेमाल नहीं करे, जिससे पार्टी या उनके चुनाव चिह्न का प्रचार होता हो। चुनाव के पूर्व अक्सर ऐसा देखा गया है कि सत्ताधारी पार्टियाँ जन कल्याण के या जनता के समर्थनवाले कार्यक्रमों का अपने चुनाव चिह्नों के साथ पोस्टर, बैनर लगाती हैं। इनका लाभ भी उनको चुनाव में मिलने की संभावना रहती है। इनमें जो पार्टियाँ सत्ता में नहीं हैं, उनको नुकसान होता है। अगर यह बंद हो गया तो सभी पार्टियाँ समान धरातल पर खड़े होकर चुनाव लड़ सकेंगी। चुनाव आयोग की यह चेतावनी है कि इस निर्देश का उल्लंघन करने पर पार्टियों का चुनाव चिह्न छीना जा सकता है। चुनाव आयोग ने राजनीतिक

पार्टियों की राय मिलने के बाद ही यह निर्देश जारी किया है।

सत्ताधारी पार्टियों को इस निर्देश के पालन करने से एक दिक्कत यह होगी कि वे अपने पूर्व के कार्यकाल की उपलब्धियों को जनता या विपक्षी पार्टियों के समक्ष कैसे रखेंगी, क्योंकि वे उनकी पूर्व की उपलब्धियों के बारे में सवाल पूछते हैं। इसे मद्देनजर रखते हुए चुनाव आयोग के दिशा-निर्देश को व्यावहारिक बनाने की जरूरत है अन्यथा इसके अतिवादी हो जाने का खतरा ज्यादा है।

(39)प्रश्नः सर्वोच्च न्यायालय और केंद्रीय चुनाव आयोग ने क्या राजनीतिक दलों एवं सिविल सोसाइटी के घोषणापत्रों को आधार संहिता के चश्में से देखने-परखने का मन बना लिया है? क्या आपको ऐसा लगता है कि अदालत और आयोग की सक्रियता से आम आदमी की आवाज को अब दबाया नहीं जा सकेगा?

उत्तरः हाँ, सर्वोच्च न्यायालय और केंद्रीय चुनाव आयोग ने राजनीतिक दलों एवं सिविल सोसाइटी के घोषणापत्रों को आचार संहिता के चश्मे से देखने-परखने का मन बना लिया है, क्योंकि इनसे संबंधित मामले अब इन तक पहुँचने लगे हैं। दरअसल राजनीतिक दलों एवं सिविल संस्थाओं द्वारा तैयार घोषणापत्रों को सौंपने के बाद इन्हें लागू करवाने के लिए न तो कोई रणनीति तैयार होती है और न ही शायद कभी इनके क्रियान्वयन के लिए दबाव डाला जाता है। यदि चुनावी घोषणापत्र है तो उसके पीछे उस घोषणा पर अमल करवाने के लिए जनता के पास क्या कुछ ताकत है, इस पर विचार जरूरी है। राजनीतिक दलों के घोषणापत्र जहाँ कुछ देने का सपना दिखाते हैं वहीं जनता घोषणापत्र में प्रतिनिधियों से कार्यकलापों एवं नीतियों के संबंध में जो अपेक्षा है, उसका विवरण होगा। चुनाव प्रत्याशी द्वारा उसे माने जाने के एवज में उसे संभावित जन समर्थन का भरोसा भी जताया जाएगा। इन सभी मामलों पर अब अदालत और आयोग का ध्यान जा रहा है।

वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य में जिस तरह के बदलाव तेजी से सामने आने लगे हैं, उसे देखते हुए आम आदमी की आवाज को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है और न उसकी आवाज को दबाया जा सकता है।

(40)प्रश्नः देश में न्यायिक व्यवस्था निश्चित रूप से ध्वस्त हो रही है, लेकिन क्या इसकी जवाबदेही न्यायपालिका पर भी नहीं है?

उत्तरः देश में न्यायिक व्यवस्था निश्चित ही न्यायाधीशों की नियुक्ति पर केंद्र सरकार द्वारा अनावश्यक विलंब से ध्वस्त हो रही है, लेकिन इसकी

जवाबदेही न्यायपालिका पर भी है। पिछले 23 सालों से न्यायाधीशों द्वारा अपारदर्शी तरीकों से न्यायाधीशों की नियुक्ति की जा रही है। इस दोषपूर्ण व्यवस्था को सुधारने के लिए अप्रैल, 2015 में राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग (एनजेएसी) बनाया गया जिसे उच्चतम न्यायालय ने अक्टूबर, 2015 में निरस्त करते हुए कॉलेजियम व्यवस्था को फिर बहाल कर दिया गया जिसके लिए उच्चतम न्यायालय ने यह दलील दी कि छह सदस्यीय आयोग में विधि मंत्री की उपस्थिति से न्यायिक स्वायत्तता समाप्त हो जाएगी। यदि इसे वाजिब माने तो कॉलेजियम व्यवस्था तो और भी दोषपूर्ण है, क्योंकि इसमें न्यायाधीश ही न्यायाधीश की नियुक्ति करते हैं। ऐसा दुनिया के किसी अन्य लोकतांत्रिक देशों में नहीं है।

एनजेएसी पर सुप्रीम कोर्ट में बहस के दौरान दिए गए आँकड़ों के अनुसार देश के 13 उच्च न्यायालय में 52 फीसदी या करीब 99 न्यायाधीश बड़े वकीलों और न्यायाधीशों के रिश्तेदार हैं। आरोपों के अनुसार न्यायाधीशों की नियुक्ति प्रणाली में 200 अभिजात्य रसूखदार परिवारों का वर्चस्व है। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश कुरियन जोसेफ ने कॉलेजियम व्यवस्था में खामी पर सहमति जताते हुए सुधार के लिए खुलेपन की जरूरत बताई थी। इसके बावजूद उच्चतम न्यायालय अपने स्तर पर कॉलेजियम व्यवस्था को पारदर्शी बनाने के लिए न्यायिक आदेश पारित करने में विफल रहा। उलटे केंद्र सरकार को ही मेमोरेंडम ऑफ प्रोसिजर (एमओपी) में बदलाव करने का निर्देश दे दिया।

आखिर हमारी अदालतें 19वीं शताब्दी के कानून और 20वीं शताब्दी की मानसिकता से लैस होकर 21वीं सदी की समस्याओं को सिर्फ न्यायाधीशों की संख्या बढ़ाकर कैसे सुलझा सकती हैं? जब लोकतंत्र के सभी हिस्से सूचना अधिकार कानून के दायरे में हैं, तो फिर न्यायाधीश उसके दायरे में आने से परहेज क्यों करते हैं? जब संसद की कार्यवाही का सीधा प्रसारण टीवी पर हो सकता है, तो फिर अदालतों की कार्यवाही का सीधा प्रसारण क्यों रोका जा रहा है?

अगर न्यायाधीशों के बच्चे या रिश्तेदार उच्च न्यायालय में वकालत कर रहे हैं, तो फिर ऐसे न्यायाधीश अपना तबादला खुद कराकर नैतिक मिसाल क्यों नहीं पेश कर पा रहे हैं? उच्चतम न्यायालय के निर्देशों के अनुसार तीन महीने से ज्यादा कोई आर्डर रिजर्व नहीं रखा जा सकता। इसके बावजूद तमाम मामलों में सालों साल बाद आदेश पारित हो रहे हैं।

सरकार और न्यायपालिका दोनों संविधान से बँधे होने के साथ देश की जनता के प्रति जवाबदेह हैं। इसलिए यह जनता के हक में होगा यदि दोनों आपसी टकराहट को जितनी जल्द हो दूर करने का प्रयास करें।

(41)प्रश्नः सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को सरकार से ऐसा क्यों कहना पड़ रहा है कि उसका रवैया ठीक नहीं है?

उत्तरः वर्ष 2016 के अगस्त माह में उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालय में मुख्य न्यायाधीशों और न्यायाधीशों की नियुक्ति और स्थानांतरण के कॉलेजियम के फैसले को लागू नहीं करने को लेकर केंद्र सरकार से नाराजगी प्रकट की थी। सर्वोच्च न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश टी. एस. ठाकुर की अध्यक्षतावाली पीठ ने कहा कि हम न्यायाधीशों की नियुक्ति में गतिरोध को बर्दाश्त नहीं करेंगे जिससे न्यायिक कामकाज बाधित हो रहा है। हम जवाबदेही पर जोर देंगे। मुख्य न्यायाधीश के कथन से ऐसा लगता है कि वे इस मसले पर केंद्र से आर-पार करने की तैयारी में हैं । और हों भी क्यों नहीं, जब सरकार आठ महीने से कॉलेजियम की तरफ से भेजी गई सिफारिशों पर अमल नहीं कर रही है, जबकि देश में न्यायाधीशों की कमी और लंबित मुकदमों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। एक अनुमान के मुताबिक निचली अदालत से लेकर सर्वोच्च न्यायालय तक करीब साढ़े तीन करोड़ से ज्यादा मुकदमें लंबित हैं और उच्च न्यायालयों में 43 फीसद न्यायाधीशों की कमी है।

स्वाभाविक है कि जब अदालतों पर दबाव रहेगा, तो मुख्य न्यायाधीश पर इसकी जवाबदेही आएगी। ऐसी स्थिति में उनकी सरकार से नाराजगी आसानी से समझी जा सकती है। एक समय ऐसा भी आया था जब लंबित मुकदमों को लेकर मुख्य न्यायाधीश टी. एस. ठाकुर सार्वजनिक मंच पर अपने आँसू नहीं रोक सके थे। जब मुख्य न्यायाधीश लंबित मुकदमों की बढ़ती संख्या को लेकर इतने संवेदनशील हैं और दूसरी तरफ सरकार न्यायाधीशों की नियुक्ति से कॉलेजियम की तरफ से भेजी गई सिफारिशों पर आठ महीने से अमल नहीं कर पा रही है, तो मुख्य न्यायाधीश का सख्त होना बिल्कुल जायज दिखता है। अगर कॉलेजियम की सिफारिशों पर सरकार को भेजे गए नामों पर आपत्ति है तो मुख्य न्यायाधीश से बातचीत की जा सकती है। यह बिल्कुल तर्कसंगत बात है कि अगर न्यायाधीशों की यथोचित नियुक्ति नहीं होगी, तो मुकदमें जल्द से जल्द निपटते जाएँगे जिससे सरकार और समाज के स्तर पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। जब देश में न्यायपालिका का काम सरकार से बेहतर समन्वय के सहारे आगे बढ़ता है, तो विदेश तक में

सरकार की स्थिति मजबूत होती है। सरकार को इस तथ्य को संजीदगी से समझने की जरूरत है। देखना यह है कि सरकार प्रधान न्यायाधीश टी. एस. ठाकुर की आक्रामकता को कैसे शांत करती है।

(42)प्रश्नः अनिवार्य रूप से नए-पुराने सभी मकानों को वर्षा जल संचय उपकरण लगाने की दिशा में हाल में दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले को क्या मील का पत्थर कहा जाएगा?

उत्तर: वर्षा जल संचय को वक्त की जरूरत बताते हुए इससे संबंधित कानून को चुनौती देने वाली याचिका को खारिज कर बीते दिनों दिल्ली उच्च न्यायालय के न्यायाधीश मनमोहन ने एक अहम फैसला सुनाते हुए कहा कि मकान हो या सोसाइटी, नई हो या पुरानी सभी को वर्षा जल संचय उपकरण लगाना अनिवार्य होगा। ऐसा नहीं करने वालों से पानी की अधिक कीमतें वसूल की जाएँगी। न्यायाधीश ने अपने निर्णय में कहा कि 500 वर्गमीटर या इससे अधिक बड़े प्लाटों पर बने मकानों पर वर्षा जल संचय उपकरण लगाना जरूरी होगा। दिल्ली उच्च न्यायालय के इस फैसले को मील का पत्थर इसलिए कहा जाएगा, क्योंकि आज जल संकट देश ही नहीं, पूरे विश्व की गंभीर समस्या है। विशेषज्ञों की राय है कि वर्षा जल संरक्षण को बढ़ावा देकर गिरते भू-जल स्तर को रोका व उचित प्रबंधन से सबको शुद्ध पेयजल मुहैया कराया जा सकता है। यही टिकाऊ विकास का आधार हो सकता है। जल संकट ही भविष्य की सबसे बड़ी चुनौती होगी। इस पर गौर करना आज की सबसे बड़ी जरूरत है वरना स्थिति इतनी भयावह हो जाएगी जिसका मुकाबला कर पाना असंभव होगा। यही नहीं, पानी की माँग और आपूर्ति के अंतर की वजह से 2025 तक भारत जल संकटवाला देश बन जाएगा।

आज चाहे सरकारी मशीनरी हो, उद्योग हो, कृषि क्षेत्र हो या आमजन, सभी ने पानी का इतना दोहन किया है जिसका नतीजा आज हमारे सामने भूजल के लगातार गिरते स्तर के चलते जलसंकट भीषण समस्या के रूप में आ खड़ा हुआ है और परिस्थितिकाय तंत्र के असंतुलन की भयावह स्थिति पैदा हो गई है। ऐसी स्थिति में वर्षा जल संरक्षण और उसका उचित प्रबंधन ही एकमात्र रास्ता है जिसके मद्देनजर दिल्ली उच्च न्यायालय का फैसला समयानुकूल है जिसे मील का पत्थर कहा जा सकता है।

(43)प्रश्नः मुख्यमंत्रियों के पद से हटने के बाद उन्हें जीवन भर के लिए सरकारी आवास आवंटन को लेकर उच्चत्तम न्यायालय के हाल के फैसले को आप किस रूप में आँकते हैं? सुप्रीम कोर्ट का यह

फैसला यों तो उ.प्र. से संबंधित है, मगर क्या इस फैसले का असर अन्य राज्यों पर भी पड़ेगा?

उत्तर: एक गैर-सरकारी स्वयंसेवी संस्था (एनजीओ) लोकप्रहरी की 2004 की एक याचिका पर सुनवाई करते हुए न्यायाधीश अनिल आर. दबे की अध्यक्षतावाली उच्चत्तम न्यायालय की एक संविधान पीठ ने फैसला सुनाते हुए उत्तर प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्रियों को जीवन पर्यन्त सरकारी आवास मुहैया के दो दशक पुराने नियम को गैर-कानूनी ठहराया है। कोर्ट ने सरकारी संपत्ति को इस तरह बाँटने पर तीखी टिप्पणियाँ करते हुए सरकारी बंगलों पर काबिज उत्तरप्रदेश के पूर्व मंत्रियों-मुलायम सिंह यादव, मायावती, राजनाथ सिंह, कल्याण सिंह, रामनरेश यादव और एन. डी. तिवारी को दो महीने के भीतर बंगला लौटाने का आदेश दिया है। इतना ही नहीं सुप्रीम कोर्ट ने राज्य सरकार से यह भी कहा है कि अवैध रूप से काबिज रहने पर इनसे किराया भी वसूला जाए।

सुप्रीम कोर्ट के फैसले का गाज उन निजी ट्रस्टों और संस्थाओं पर भी गिरी है जिन्हें सरकार ने बिना नियम-कानून के सरकारी बंगले आवंटित कर रखे हैं। कोर्ट ने ऐसे सभी आवंटन निरस्त कर दिए हैं। 2004 से लंबित इस याचिका पर न्यायालय ने नवंबर 2014 में सुनवाई कर अपना फैसला सुरक्षित रखा था। कोर्ट ने पूर्व मुख्यमंत्री आवास आवंटन नियम, 1997 को गैर-कानूनी ठहराते हुए कहा कि यह नियम उत्तर प्रदेश (वेतन, भत्ते और विभिन्न प्रावधान) कानून, 1981 के विधायी कानून के अनुकूल नहीं है। कोर्ट ने कहा कि जब कभी कार्यकारी नियम और विधायी कानून में टकराव होगा तो विधायी नियम ही लागू माने जाएँगे। ऐसे में पूर्व मुख्यमंत्रियों को जीवन पर्यन्त आवास आवंटित करने का 1997 का नियम गैर-कानूनी है। राज्य सरकार किसी भी पूर्व मुख्यमंत्री को पद छोड़ने के बाद 15 दिन से ज्यादा सरकारी बंगले में बने रहने की अनुमति नहीं दे सकती, क्योकि 1981 का कानून कहता है कि मंत्री व मुख्यमंत्री पद छोड़ने के 15 दिन बाद तक सरकारी बंगले में रह सकता है। कोर्ट ने यह भी कहा है कि अगर अन्य संवैधानिक पदों जैसे राज्यपाल, मुख्य न्यायाधीश, मंत्री और लोकसभा एवं विधानसभाओं के अध्यक्ष को देखा जाए, तो उन्हें सिर्फ कार्यकाल तक ही एक आधिकारिक आवास मिलता है। राज्य सरकार की ये दलील मानने लायक नहीं है कि संघीय व्यवस्था में राज्य सरकार को भी पूर्व मुख्यमंत्री को आवास देने का अधिकार है। पद से उतरने के बाद राज्य में मुख्यमंत्री

और कैबिनेट मंत्री की स्थिति अलग-अलग नहीं होती। संवैधानिक पद पर आसीन अन्य किसी विशिष्ट व्यक्ति को ऐसी कोई सुविधा नहीं है।

कुल मिलाकर देखा जाए तो उच्चत्तम न्यायालय का यह फैसला इसलिए महत्वपूर्ण है कि राज्य सरकारें सरकारी संपत्ति को मनमाने ढंग से रेवड़ियों की तरह बांट रही हैं और इस प्रकार गैर-कानूनी ढंग से जनता से टैक्स के रूप में उगाहे गए धन को राज्य सरकार सत्ता में बैठे राज्य के मुखिया पर खर्च कर रही है जिस पर देर सबेर उच्चत्तम न्यायालय का ध्यान गया है। इस तरह यदि राज्य सरकार को छूट दी जाती रही, तो एक दिन ऐसा भी आएगा जब राज्य की राजधानियों में केवल राजनीतिक दलों के नेता, जो शीर्ष पदों पर बैठे हैं, उनसे सारे सरकारी आवास भर जाएँगे और जनता ठगी-सी रह जाएगी। दूसरी बात यह कि जो मंत्री, न्यायाधीश, आयोग एवं बोर्ड के अध्यक्ष एवं सदस्य भी पद छोड़ने पर जीवन भर के लिए सरकारी आवास आवंटित करने की माँग करने लगेंगे और राजनीति में नैतिकता की जैसी गिरावट है सत्ता पर आसीन शीर्ष नेता लोगों को खुश करने और अपनी कुर्सी बचाने के लिए नियम-कानून में बदलाव कर वैसे लोगों को सरकारी आवास आवंटित कर सकते हैं जो जनहित में कतई ठीक नहीं होगा।

सुप्रीम कोर्ट का यह फैसला यों तो उत्तर प्रदेश से संबंधित है, मगर इसका असर अन्य राज्यों खासतौर पर बिहार राज्य पर अवश्य पड़ेगा। जिस दिन यानी 1 अगस्त, 2016 को उच्चत्तम न्यायालय का यह फैसला आया इसकी हलचल पूरे बिहार में तो देखी ही जा रही है, सियासी हलकों में भी इसकी जोर-शोर से चर्चा है, क्योंकि बिहार के पाँच पूर्व मुख्यमंत्रियों डॉ. जगन्नाथ मिश्र, राबड़ी देवी, सतीश प्रसाद सिंह, जीतन राम मांझी और नीतीश कुमार को पूर्व मुख्यमंत्री की हैसियत से 2001 में बिहार राज्य सरकार द्वारा बनाए गए कानून के तहत बंगला आवंटित है। इनमें से एक मुख्यमंत्री सतीश प्र. सिंह ऐसे हैं जिन्हें मात्र 3-4 दिन तक ही मुख्यमंत्री की कुर्सी पर बी. पी. मंडल के नेतृत्ववाली सरकार में इसलिए मुख्यमंत्री बनाया गया था, ताकि वे बी. पी. मंडल को बिहार विधान परिषद के लिए नामित कर सकें। ऐसा ही हुआ और बी. पी. मंडल फिर मुख्यमंत्री हुए। इससे सतीश प्र. सिंह पूर्व मुख्यमंत्री को 3-4 दिनों के लिए ही सही, होने को लाभ मिल गया कि एक सरकारी आवास उन्हें आवंटित हो गया। इसी प्रकार केंद्रीय गृहमंत्री राजनाथ सिंह को उ.प्र. के पूर्व मुख्यमंत्री की हैसियत से लखनऊ में आज भी एक बंगला आवंटित है जबकि केंद्रीय मंत्री के रूप

में उन्हें भी एक सरकारी बंगला आवंटित है। अच्छा तो यह होता कि ऐसे पूर्व मुख्यमंत्री जिन्हें सरकारी आवास आवंटित किए गए हैं अदालत के फैसले के पूर्व बंगला खाली कर अपनी जिम्मेदारी का परिचय देते। जो हो सुप्रीम कोर्ट का सरकारी संपत्तियों के बंदरबांट पर सख्ती दिखाना सुखद है।

दरअसल, राजनीति का असली मकसद ही अधिक संपत्ति और सुविधाएँ बटोर लेना है। ऐसे में सुविधासंपन्न विशाल बंगले भला आसानी से कौन छोड़ना चाहेगा? विडंबना यह है कि यह उन राज्यों का हाल है जहाँ समाजवादी नेता डॉ. राममनोहर लोहिया के नाम पर खूब राजनीति की जाती है। उल्लेखनीय है कि डॉ. लोहिया ऐसे असाधारण राजनेता थे जिनका अपना कोई निजी ठिकाना था ही नहीं। वह जीवन भर यायावर बने रहे, घूमते-फिरते रहे। जहाँ शाम हो गई, वहीं किसी के घर पर डेरा डाल दिया और अगली सुबह नए गंतव्य की ओर। ऐसे संत-स्वभाव के राजनेता के शिष्य और समर्थक क्या कर रहे हैं, किसी से छिपा नहीं है। और तो और एक राज्य के पूर्व मुख्यमंत्री तो एक नहीं दो-दो बड़े सरकारी बंगले अपना रखे हैं। सच तो यह है कि उच्च राजनीतिक पदों पर विराजमान हस्तियों को यह सुविधा प्राप्त होती है कि वे अपने लाभ के लिए आसानी से कानून या नियम बना लेते हैं। वास्तव में यह प्रवृत्ति लोकतंत्र के मूल सिद्धांतों के अनुकूल नहीं है, मगर नेताओं को लोकतंत्र के मूल सिद्धांतों से क्या मतलब और न जनता के हित से उन्हें कोई लेना-देना! जबकि हमारे नेता आम आदमी के लोकतांत्रिक प्रतिनिधि हैं। मगर उनकी यह प्रवृत्ति उनके और आम आदमी के बीच की दूरी बढ़ाती है।

बहरहाल, सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले के संबंध में मैं बस इतना ही कह सकता हूँ कि फैसले के अनुसार जो बात उ.प्र. में अनुचित है, वह बिहार या अन्य राज्यों में उचित कैसे ठहराई जा सकती है?

(44)प्रश्न: क्या आपको ऐसा लगता है कि विधायिका एवं कार्यपालिका के अधिकारों का अधिक्रमण कर रही है न्यायपालिका?

उत्तर: मेरा ख्याल है कि विधायिका एवं कार्यपालिका अगर संविधान के नीति-निर्देशक तत्वों और मूलभूत अधिकारों को ध्यान में रखकर कोई फैसला करती हैं, तो न्यायपालिका को हस्तक्षेप की कोई वजह नहीं बनती। मसलन, संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत हर नागरिक को जीवन जीने और आजादी का अधिकार हासिल है। सरकार की जिम्मेदारी है कि वह इस अधिकार की रक्षा करे। अगर वह आपात स्थितियों में अपने इस कर्तव्य को

पूरा करने में नाकाम रहती है, तो न्यायपालिका को अनुच्छेद 32 के तहत हस्तक्षेप करने और राहत का उचित निर्देश देने का अधिकार है। अगर अदालत इतना भी नहीं कर पाती है तो यकीनन अपने आधारभूत कर्तव्य को निभाने में नाकाम रहती है।

अगर सरकारी फैसले संविधान के दायरे में सर्वोच्च बौद्धिक क्षमताओं के साथ लिए जाएँ, तो शायद अदालतों को यह मौका नहीं मिलेगा। एक प्रसिद्ध कहावत है कि लोकतांत्रिक प्रणाली में हमेशा वहीं संस्था आगे रहती है, जो खास कालक्रम में सर्वोच्च बौद्धिक क्षमता से लैस होती है और सबसे तर्कसम्मत विचारों को आगे रखती है। अगर विधायिका और कार्यपालिका सर्वोच्च बौद्धिक क्षमता का निर्वहण नहीं करेगी तो इससे बचा नहीं जा सकता।

दरअसल, हाल में सूखाग्रस्त क्षेत्रों में राहत कार्यों से संबंधित निर्देश में सर्वोच्च न्यायालय का फैसला केंद्र सरकार को इसलिए नागवार गुजरा क्योंकि सरकार को आपदा राहत में नाकामी की जवाबदेही लेनी और एक कोष की स्थापना करने का निर्देश दिया गया था, ताकि पीड़ितों को राहत मुहैया हो सके। इसी प्रकार पूर्व की सप्रंग सरकार तो न्यायपालिका ही नहीं, बल्कि संवैधानिक संस्था भारत के नियंत्रक-महालेखा परीक्षक की भी आँच महसूस कर रही थी। सच तो यह है कि विधायिका एवं कार्यपालिका के कदम लड़खड़ाएँगें, तो उनके अधिकारों में न्यायपालिका अथवा महालेखा परीक्षक जैसी संवैधानिक संस्थाओं की दखलंदाजी बढ़ेगी ही। अगर विधायिका एवं कार्यपालिका खुद अपने दायरे को लाँघती तो उसे न्यायपालिका का हस्तक्षेप तो सहना ही पड़ेगा।

राजनीति एक लंबे अरसे से कहती आ रही है कि न्यायपालिका, विधायिका एवं कार्यपालिका के निर्णयों में दखल कर रही है। लेकिन दुखद बात तो यह है कि कार्यपालिका जब अपना काम समय पर यहाँ तक कि निर्णय ही नहीं लेगी तब दुखी आदमी न्यायपालिका के पास नहीं जाएगा, तो क्या करेगा? यह बात अलग है कि अदालतों से भी न्याय मिलने में देरी होती है। सरकार को न्यायपालिका पर आरोप लगाने से पहले कार्यपालिका को दुरुस्त करना होगा, तभी इस समस्या का समाधान हो सकता है।

(45)प्रश्नः बॉलीवुड अभिनेता सलमान खान की काले हिरण और चिंकारा के अवैध शिकार के मामलों में जोधपुर उच्च न्यायालय द्वारा रिहाई से कानून का कमजोर होता रसूख और भारतीय लोकतंत्र के आलोक में अजब न्यायिक पराभव क्या नजर नहीं आता है?

उत्तर: काले हिरण और चिंकारा के अवैध शिकार के 18 साल पुराने मामलों में जोधपुर उच्च न्यायालय द्वारा बॉलीवुड अभिनेता सलमान खान को रिहाई होने के बाद यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि जब कानून के अनुसार देश में शिकार करने की मनाही है और अगर सलमान ने हिरण नहीं मारा तो दोषी कौन था? इसका जवाब मिलने तक न्यायिक व्यवस्था आमजन के तानों का शिकार तो बनेगी ही।

मजे की बात तो यह भी है कि सलमान को जिन सबूतों के आधार पर निचली अदालत से सजा मिली थी, उन्हीं सबूतों पर जोधपुर उच्च न्यायालय से वह बरी हो गए। निचली अदालत ने इन मामलों में सलमान को 5 साल और 1 साल की सजा सुनाई थी, जबकि जोधपुर उच्च न्यायालय की न्यायाधीश निर्मलजीत कौर ने दोनों फैसले रद्द कर दिए। फैसले में कहा गया था कि चश्मदीद गवाह जो सलमान का जिप्सी ड्राइवर हरीश दुलानी को अदालत में लापता बताया गया, जबकि दुलानी का कहना है कि सलमान को बचाने के लिए उन्हें अदालत में नहीं बुलाया गया, जब बुलाया जाता, तो वह जाते। गवाह का कहना अभी भी है कि उच्चतम न्यायालय में यदि उन्हें बुलाया जाता है तो वह वहाँ भी जाकर यही कहेंगे कि शिकार के समय जिप्सी सलमान ही चला रहे थे और मैं उनके पीछे बैठा था। उसका यह भी कहना है कि सलमान ने ही शिकार किया था। आरोपों के अनुसार सलमान और उसके दोस्तों ने संरक्षित प्रजाति के चिंकारा का जंगल में गोली मारकर शिकार किया, फिर चाकू से उसे काटा और होटल में पकाकर खा गए। मामला शायद दब ही जाता यदि जागरूक ग्रामवासियों द्वारा पुलिस और वन विभाग पर सलमान और अन्य सितारों के खिलाफ कार्रवाई का दबाव नहीं बनाया जाता। फिल्मी दोस्त सलमान के खिलाफ गवाही कैसे देते? शिकार में गई जिप्सी के चालक ने पूरे मामले में मजिस्ट्रेट के सामने सीआरपीसी की धारा 164 में अपना बयान दर्ज कराया, जिसका क्रॉस इक्जामिनेशन न होने पर अदालत ने उस सबूत को खारिज कर दिया। पुलिस के छापे में सलमान के कमरे में कोई हथियार तो मिलना ही नहीं था, पर कुछ दिन बाद छापे में एयरगन की बरामदी दिखा दी गई, जिससे जानवर मारा ही नहीं जा सकता। एक ऐसे चाकू की बरामदी दिखा दी गई, जिससे हिरण का गला काटा ही नहीं जा सकता। इसके बावजूद वन विभाग द्वारा जीप की जाँच में खून के धब्बे मिल गए, पर दो जाँचों पर भिन्नता के आधार पर अदालत ने उन सबूतों को संदेहजनक करार दे दिया।

क्या उपर्युक्त कार्रवाईयों के आधार पर यह निष्कर्ष नहीं निकाला

जा सकता है कि सलमान को बचाने की कोशिश हर स्तर पर की गई और पैसे एवं पैरबी के बल पर कानून की धज्जियाँ उड़ाई गईं।

21वीं शताब्दी के डिजीटल इंडिया में 20वीं सदी की मानसिकता से 19वीं शताब्दी के कानूनों को लागू किया जाना कहाँ तक युक्तिसंगत है? ऐसे लचर कानूनी तंत्र में निरीह लोग जहाँ दंडित होते हैं, वहीं सलमान जैसे बॉलीवुड अभिनेता टी. वी. अधिकारों से कमाई हेतु 1000 करोड़ रुपए का अनुबंध करते हैं। इसे लोकतंत्र और कमजोर कानून का माखौल नहीं तो और क्या कहेंगे? डब्लूपीएसआई की रिपोर्ट के अनुसार देश में जानवरों की हत्या के लगभग 20 हजार मामले हुए हैं, परंतु सजा की दर केवल 11.56 फीसदी है। क्या इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जाएगा कि सलमान ने अदालत के अखाड़े में कानून को तो पटखनी दे दी, मगर कानून का कमजोर होता रसूख लोकतंत्र के लिए सुखद कतई नहीं है।

(46)प्रश्नः सर्वोच्च न्यायालय ने बीसीसीआई में सुधार पर न्यायाधीश लोढ़ा कमिटी की मुख्य सिफारिशों को मान लिया है। क्या क्रिकेट के खेल में इन सिफारिशों को लागू करने से उसमें पारदर्शिता बढ़ेगी? महत्वपूर्ण सिफारिशों पर आपकी क्या प्रतिक्रिया है?

उत्तरः सर्वोच्च न्यायालय ने बड़ा और ऐतिहासिक फैसला सुनाते हुए बीसीसीआई पर न्यायाधीश लोढ़ा कमिटी की मुख्य सिफारिशों को मान लिया है और कोर्ट ने छह माह में सभी सिफारिशों को मानने को कहा है। सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश ने इन सिफारिशों की निगरानी का जिम्मा भी न्यायाधीश लोढ़ा पर ही छोड़ा है।

जहाँ तक इन सिफारिशों को लागू करने पर क्रिकेट के खेल में पारदर्शिता बढ़ने का सवाल है मेरा ख्याल है कि सिफारिशों में 70 की उम्र से पार करने वाले व्यक्ति को बोर्ड में नहीं रखने, सरकार के मंत्री तथा नौकरशाहों को क्रिकेट बोर्ड से बाहर जाने, एक व्यक्ति एक पद का नियम लागू करने तथा एक राज्य, एक वोट की सिफारिशों को अमल में लाने पर निश्चित रूप से पारदर्शिता बढ़ेगी, क्योंकि एक ओर जहाँ 70 से पार करने वाले उम्र के व्यक्ति के बोर्ड में नहीं रखने तथा सरकार के मंत्री एवं नौकरशाहों को क्रिकेट बोर्ड से बाहर रखने से एक तो युवा खेल पेशेवर बढ़ेंगे, वहीं दूसरी ओर इस क्रिकेट खेल में मंत्रियों एवं नौकरशाहों से जो दबाव होता था उससे वह मुक्त हो जाएगा और सत्ता में रहने वाले इन मंत्रियों एवं नौकरशाह बोर्ड के नीतिगत फैसले बनाने की प्रक्रिया में जो शामिल होते

थे उनसे भी मुक्ति मिल जाएगी, क्योंकि दबाव या दखल तो मंत्री या उच्चाधिकारी ही देने के आदि होते हैं। पूर्व मंत्री या नेता से दबाव व दखल उतना नहीं हो सकेगा जितना वर्तमान मंत्री या अधिकारी से होता है।

सूचना के अधिकार में बीसीसीआई को शामिल करना और सट्टे को वैध करना-दोनों संसद पर इसलिए छोड़ दिया गया है, क्योंकि दोनों बिना कानून बनाए नहीं हो सकते। इसके अतिरिक्त बीसीसीआई में भारत के नियंत्रक-महालेखा परीक्षक (सीएजी) के प्रतिनिधि को शामिल करने, बोर्ड की ओर से राज्य क्रिकेट के निधि की निगरानी के लिए केंद्रीय दल भेजने और उसमें भी सीएजी(कैग) के प्रतिनिधि शामिल करने के साथ-साथ सभी वित्तीय लेन-देन और फंड के पब्लिक ऑडिट की सलाह से संबंधित सिफारिशों से पारदर्शिता के साथ भ्रष्टाचार और घोटाले की संभावना नहीं होगी। इसलिए यह फैसला ऐतिहासिक है।

इस प्रकार कहा जाए तो न्यायमूर्ति आर. एम. लोढ़ा समिति की तक़रीबन सभी प्रमुख सिफारिशों को मानकर उच्चत्तम न्यायालय ने भारतीय क्रिकेट में मूलभूत सुधार और भ्रष्टाचार निवारण का रास्ता खोल दिया है। पिछले कुछ वर्षो से लगातार कलंक में डूबते जा रहे भारतीय किक्रेट की छवि को बचाने के लिए यह फैसला जरूरी था, क्योंकि आईपीएल के कमाऊ ढाँचे में बदलाव के ख्याल से क्रिकेट जगत के लिए यह फैसला एक बड़ा तोहफा है, ऐसा मै मानता हूँ। मौजूदा स्थितियाँ बताती हैं कि खेल पर कब्जा जमाए बैठा राजनीतिक तबका अपने निहित स्वार्थ के चलते उसे बदलने को तैयार नहीं रहा है, मगर अब उच्चतम न्यायालय के फैसले को लागू करने के पश्चात् स्थितियाँ बदलेंगी।

(47)प्रश्नः संवैधानिक राज्यपाल पद पर विवाद के हल की क्या संभावित दिशा हो सकती है?

उत्तर: केंद्र और राज्यों के आपसी संबंधों या इनसे जुड़े मुद्दों-विवादों के समाधान के लिए गठित प्रधानमंत्री की अध्यक्षतावाली शीर्ष संस्था इंटर स्टेट काउंसिल की पूरे दस साल बाद एक महत्वपूर्ण बैठक विगत 16 जुलाई, 2016 को नई दिल्ली में संपन्न हुई जिसमें राज्यपाल के पद को लेकर विभिन्न राज्यों के मुख्यमंत्रियों ने सवाल खड़े किए। बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने तो सीधे-सीधे यह माँग कर दी कि राज्यपाल का पद ही समाप्त कर दिया जाए जबकि संविधान के अनुच्छेद-153 के अनुसार राज्यों के लिए राज्यपाल का प्रावधान है।

प्रश्न उठता है कि राज्यपाल का पद विवादों से घिरा क्यों रहता है? इस सवाल का यदि जवाब ढूंढें, तो विवाद की जड़ में राज्यपाल की नियुक्ति का ढंग, उसकी अहर्ता, पदावधि, उसकी विवेकाधीन शक्ति और उसके कार्य करने के तरीके आदि प्रमुख हैं। सच तो यह है कि विवाद के बीज छिपे हैं, संविधान के अनुच्छेद-155 में जिसके अनुसार राष्ट्रपति केंद्र सरकार की अनुशंसा पर राज्यपाल की नियुक्ति करता है इस अर्थ में राज्यपाल एक तरह से केंद्र सरकार का प्रिय पात्र व्यक्ति होता है।

भारत की आजादी के बाद कुछ ही वर्षो में देखा जाने लगा कि राज्यपाल का पद केंद्र में सत्तासीन पार्टी के राजनेताओं का अड्डा अथवा आरामगाह बन गया। संविधान के अनुच्छेद-156 के अनुसार आमतौर पर राज्यपाल की नियुक्ति पाँच साल के लिए होती है, किंतु प्रधानमंत्री के नेतृत्ववाली मंत्रिपरिषद जब चाहे उसे हटा सकती है। इस रूप में केंद्र सरकार राज्यपाल पर मनचाहा दबाव बनाए रहती है। संविधान में इसका भी उल्लेख नहीं है कि किन आधारों पर राज्यपाल को हटाया जा सकता है। सिर्फ राजनीतिक पसंद-नापसंद की वजहों से यह खेल होता रहा है।

जहाँ तक राज्यपाल पद के लिए अहर्ता का सवाल है मुख्यरूप से दो ही अहर्ताएँ हैं- एक तो भारत का नागरिक होना और दूसरा 35 वर्ष का होना। इसमें एक अन्य परंपरा भी जुड़ गई है उसे उस राज्य का नहीं होना चाहिए जहाँ उसकी नियुक्ति हुई हो, ताकि वह स्थानीय राजनीति से मुक्त हो। दरअसल, विवाद राज्यपालों की विवेकाधीन शक्ति और उसकी कार्यप्रणाली को लेकर भी है। अक्सर आरोप लगाया जाता है कि वह राज्य के संवैधानिक प्रमुख के रूप में ही ज्यादा कार्य करता है। हालांकि यह भी सच है कि विविध समस्याओं और विविधतावाले इस देश में जहाँ अनेक राज्यों में क्षेत्रीय पार्टियाँ हैं, राष्ट्र की एकता और अखंडता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए केंद्र सरकार के प्रतिनिधि के तौर पर राज्यपाल की महत्वपूर्ण भूमिका है और इसलिए अनिवार्यता भी। इसके मद्देनजर राज्यपाल की नियुक्ति की प्रक्रिया, अहर्ताएँ, पदावधि तथा विवेकाधीन शक्तियों को फिर से परिभाषित करने के साथ उसकी नियुक्ति के समय संबंधित राज्यों के मुख्यमंत्रियों की राय अवश्य ली जाए।

(48)प्रश्नः अरुणाचल प्रदेश में मुख्यमंत्री नबामतुकी के नेतृत्ववाली काँग्रेस सरकार को फिर से बहाल करने के उच्चतम न्यायालय के फैसले को आप किस रूप में आँकते हैं?

उत्तर: सबसे पहली बात तो यह कि अरुणाचल प्रदेश में नबामतुकी के नेतृत्ववाली काँग्रेस सरकार की बर्खास्तगी को 'असंवैधानिक' करार देने संबधी उच्चतम न्यायालय का यह पहला ऐतिहासिक फैसला ऐसे वक्त आया है जब महज दो माह पहले सर्वोच्च न्यायालय ने उत्तराखंड में रावत के नेतृत्ववाली काँग्रेस सरकार बहाल की थी।

सर्वोच्च न्यायालय ने अपने फैसले में अरुणाचल के राज्यपाल के फैसलों को जिस तरह उनके अधिकार क्षेत्र से बाहर और असंवैधानिक करार देते हुए राज्यपाल राजखोवा को पूरी तरह कठघरे में खड़ा किया उससे अन्य राज्यपालों को सचेत हो जाना चाहिए, क्योंकि यह एक संवैधानिक पद है और इस पद की गरिमा पर बार-बार आँच आना ठीक नहीं। न्यायालय ने तो यहाँ तक कह दिया है कि राज्यपाल केंद्र की एजेंट की तरह काम न करें, इसलिए केंद्र भी कठघरे में आ गया है।

जहाँ तक मैं समझता हूँ सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला देकर यह संदेश दिया है कि संघीय ढाँचे के भीतर राज्य सरकारों की आपेक्षिक स्वायत्तता की संविधान प्रदत्त स्थिति की अनदेखी नहीं होनी चाहिए। यह पाँच न्यायाधीशों का निर्णय है। सर्वोच्च न्यायालय ने साफ कहा है कि अरुणाचल प्रदेश के राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति शासन का सलाह देना संवैधानिक प्रावधानों के विरूद्ध था, क्योंकि देश के संविधान का अनुच्छेद-356, संघीय सरकार को अधिकार देता है कि वह किसी राज्य में संवैधानिक ढाँचे के विफल होने, संविधान के प्रावधानों का उल्लंघन या राज्य की विधान सभा में किसी भी दल या गठबंधन के अल्पमत में आने की स्थिति में उस राज्य के राज्यपाल की सलाह पर ध्यान दे और जरूरी लगने पर राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करे, लेकिन यह भी ध्यान देने योग्य है कि अनुच्छेद-356 के बारे में संविधान सभा में स्वयं प्रारूप समिति के अध्यक्ष बाबा साहेब डॉ. भीमराव आंबेडकर केंद्र में बनने वाली सरकारों द्वारा राजनीतिक लाभ के लिए इस अनुच्छेद के दुरुपयोग की आशंका पर उनका उत्तर था 'मेरा मानना है कि इस अनुच्छेद का कभी उपयोग ही नहीं होगा और यह प्राणहीन पड़ा रहेगा। अगर यह अनुच्छेद कभी अमल में लाया भी जाता है, तब भी मुझे उम्मीद है कि राष्ट्रपति अपनी शक्तियों के अनुकूल प्रांतों की सरकारों को निलंबित करने से पहले पर्याप्त सतर्कता बरतेंगे। मेरे ख्याल से राष्ट्रपति पहले गलती करने वाले राज्य को सिर्फ चेतावनी जारी करेंगे कि वहाँ चीजें संविधान में वर्णित विधान की मंशा के अनुकूल नहीं हो रही है। अगर यह

चेतावनी विफल रहती है, तब राष्ट्रपति का अगला कदम होगा कि वे राज्य में चुनाव करवाने के आदेश दें, ताकि राज्य की जनता खुद ही मामले को सुलझा ले। इन दो उपायों के विफल रहने के बाद ही राष्ट्रपति इस अनुच्छेद पर अमल करेंगे।' लेकिन आजाद भारत का राजनीतिक इतिहास साक्षी है कि राज्यों में राष्ट्रपति शासन करने में केंद्र की सरकारों ने, चाहे किसी भी दल या गठबंधन की सरकार हो, बाबा साहेब डॉ. भीमराव आंबेडकर की इस सीख पर तनीक भी कान नहीं दिया। सर्वोच्च न्यायालय का यह ऐतिहासिक फैसला उसी का परिणाम है। अनुच्छेद-356 के इस्तेमाल पर सर्वोच्च न्यायालय को कई बार समीक्षा करनी पड़ी है, क्योंकि यह विवाद का विषय बन रहा है। इसलिए जरूरत इस बात की है कि इस अनुच्छेद को दुरुस्त करने के साथ ही उन उपायों पर भी विचार किया जाए जिससे राज्य सरकारें अस्थिरतरा से बची रहें। आखिरकार नाटकीय घटनाक्रम के तहत अरुणाचल के मुख्यमंत्री के पद पर नबामतुकी के स्थान पर पेमा खांडू को बहाल किया गया। यदि काँग्रेस नेतृत्व ने समय रहते अपने विधायकों के झगड़े को सुलझाने की कोशिश की होती, तो संभवत: आयाराम-गयाराम की राजनीति के हालात पैदा नहीं होते।

अक्सर ऐसा देखा गया है कि राज्यपाल केंद्र की सत्ता पर काबिज राजनीतिक दल के हितपोषक के रूप में काम करते हैं। मई, 1982 में हरियाणा के राज्यपाल के रूप में गणपत एव तपासे ने वहाँ सरकारों को बनवाने-गिराने का जो प्रहसन खेला था, उसकी बानगी कभी राज्यपाल सैयद सिब्ते रजी के रूप में झारखंड में देखने को मिली, तो कभी राज्यपाल बूटा सिंह को बिहार में। अरुणाचल प्रदेश और उत्तराखंड में भी आज वैसे हालात देखने को मिल रहे हैं। उच्चतम न्यायालय का यह फैसला हमें फिर से यह इस प्रश्न पर विचार करने का एक अवसर दे रहा है कि 66 साल पूरे कर चुके भारतीय गणतंत्र को राज्यपाल सरीखी किसी औपनिवेशिक संस्था की कितनी आवश्यकता है।

सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के बाद भी बदले हालात में राजनीतिक इबारत नबाम तुकों के लिए खास खुशनुमा नहीं है। वह मुख्यमंत्री की कुर्सी पर वापस आते भी हैं, तो विधानसभा के पहले ही दिन की परीक्षा में संभव है कि मात खा बैठें।

(49)प्रश्न: बिहार सरकार का अपराध पर 'जीरो टॉलरेंस' के निश्चय के बावजूद पुलिस आमलोगों का भरोसा क्यों नहीं जीत पा रही है?

उत्तर: आपको याद होगा बिहार सरकार ने पहले भी और 2015 में नई सरकार बनने के बाद अपराध को रोकने के मामले में 'जीरो टॉलरेंस' का निश्चय किया था। बावजूद इसके पुलिस आम लोगों का भरोसा अभी तक नहीं जीत पा रही है। अपराध पर अंकुश लगाने के ख्याल से बड़ी संख्या में पुलिस अधिकारियों को तबादला इधर से उधर बार-बार किया जा रहा है, परंतु उसका नतीजा कुछ खास नहीं निकल पा रहा है, क्योंकि 2015 में नई सरकार के गठन के बाद संगठित आपराधिक गिरोहों ने जो सिर उठाना शुरू किया वह धड़ाधड़ रोज-ब-रोज अपराधों को अंजाम दिया जा रहा है। और तो और राजधानी पटना के महत्वपूर्ण क्षेत्रों में हत्या की घटनाएँ रूकने का नाम नहीं ले पा रही हैं। पिछले दिनों मुजफ्फरपुर अदालत परिसर में 11 अप्रैल, 2016 को हत्या के बाद जिस तरह लोगों का पुलिस पर आक्रोश फूटा, वह कई सवाल खड़े करता है। चाहे दरभंगा में सड़क निर्माण कंपनी के दो अभियंताओं की हत्या हो या पटना में लोजपा नेता बृजनाथी सिंह की हत्या, आरा में भाजपा नेता विशेश्वर ओझा और पटना में दिन-दहाड़े अनिल की हत्या के बाद तो चर्चा होने लगी है कि राज्य में कानून का राज नहीं रहा, क्योंकि अपराध की तीव्रता अधिक और कानून की पकड़ दिनानुदिन ढीली होती जा रही है। अपराधियों को पकड़ना और उसे सजा दिलाना चुनौती हो गई है।

अब तो जनप्रतिनिधियों के बुरे आचरण पर भी पुलिस का जो रवैया रहा है उससे उसपर भरोसा नहीं रहा, क्योंकि अब तो पुलिस की मौजूदगी में सरेआम हत्या की घटनाएँ घट रही हैं। इसलिए शासन की प्रणाली पर सवाल उठना स्वाभाविक है। यहाँ तक कि अदालत परिसर में तमंचा लिए अपराधियों का घुसना और वारदातों को अंजाम देकर निकल जाना आखिर लचर सुरक्षा व्यवस्था को ही तो दर्शाता है। ऐसी स्थिति में पुख्ता सुरक्षा व्यवस्था और त्वरित कार्रवाई पुलिस की पहचान बननी चाहिए, क्योंकि जनता का भरोसा जीतकर ही अपराध पर अंकुश लगाया जा सकता है।

दरअसल, आम आदमी का भरोसा पुलिस जीते तो कैसे? भ्रष्टाचार जो न करा दे और उसके बल पर आला पुलिस अधिकारियों और राजनेताओं का अपराधियों एवं भ्रष्ट पुलिसों का संरक्षण। नई सरकार आने के बाद तो आला अधिकारियों से लेकर अपराधियों का और पौ-बारह हो गया। आपने वह कहानी तो सुनी होगी कि आज से एक डेढ़ दशक पूर्व जब राजधानी पटना के एक नामी-गिरामी सर्जन चिकित्सक की गाड़ी चोरी हो गई तो उन्होंने आला पुलिस अधिकारी से गुहार लगाई, पर उसने अपनी असमर्थता

जाहिर की सर्जन साहब की मदद करने में। हाँ, इतना जरूर उस पुलिस अधिकारी ने किया जिससे उस सर्जन साहब की गाड़ी बिहार के मुखिया के सरकारी आवास परिसर में पाई गई और अंततः कुछ ले-देकर ही सही, वह गाड़ी उन्हें वापस मिल गई।

आज जब सत्ताधारी राजनेता ही अपराध और दुष्कर्म करते सुने जा रहे हैं तो भला आप ही बताइए जनता का भरोसा कैसे न टूटे? जनता आज हताशा और निराश है। वह अब किस पर भरोसा करे? जब 'सैंया भए कोतवाल तो अब डर काहे को' कहावत पूर्णतः चरितार्थ हो रही है।

(50)प्रश्नः पिछले दिनों उच्चत्तम न्यायालय का यह फैसला कि सरकार को निजी शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश और शुल्क के नियमन का अधिकार है, को आप किस रूप में लेते हैं?

उत्तरः उदारीकरण के पश्चात्, खासतौर पर बीते दो दशकों में, उद्योगों की माँग के अनुरूप पेशेवर तैयार करने के कथित उद्देश्य से उच्च एवं व्यावसायिक शिक्षा में निजी क्षेत्र की भागीदारी को बड़े पैमाने पर प्रोत्साहित किया गया है। कुछ निजी शिक्षण संस्थाएँ इन अपेक्षाओं पर खरी भी उतरी हैं लेकिन साथ में हजारों की संख्या में ऐसी संस्थाएँ भी खुल गई हैं, जो गुणवत्ता और बुनियादी ढाँचे के अभाव के बावजूद भारी-भरकम शुल्क वसूली के चलते अपने मालिकों के लिए अँधाधुंध कमाई का जरिया बन गई हैं। देश के कुछ इलाकों में तो शिक्षा में निवेश को बेहतर लाभ अर्जित करने का सर्वोत्तम जरिया माना जा रहा है। यहाँ मेडिकल, इंजीनियरिंग, मैनेजमेंट आदि की सीटों की खुलेआम नीलामी हो रही है, लेकिन लाखों रुपए और कैरियर के कुछ महत्वपूर्ण साल गंवाने के बाद भी यहाँ से उत्तीर्ण युवाओं की रोजगार क्षमता अत्यंत कम से कमतर है। ऐसे में उच्चत्तम न्यायालय का यह फैसला अत्यंत महत्वपूर्ण है कि सरकार को निजी शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश और शुल्क के नियमन का अधिकार है। अदालत ने स्पष्ट कहा है कि सरकारी सहायता के बिना निजी पेशेवर संस्थान स्थापित एवं प्रबंधित करने का अर्थ स्वमेव पूर्ण अधिकार मिलना नहीं है और शिक्षा के व्यवसायीकरण को रोकने के लिए राज्य अपनी नियामक शक्तियों का उपयोग कर सकता है। अदालत ने स्पष्ट कहा है कि जैसे उद्योगों और व्यवसायियों का नियमन होता है, ऐसा ही नियमन शिक्षा के क्षेत्र में भी जरूरी है। सर्वोच्च न्यायालय यह महसूस करता है शिक्षा को केवल मुनाफे का माध्यम नहीं बनाया जा सकता, क्योंकि इससे व्यापक स्तर पर लोगो के हित जुड़े हैं।

(51)प्रश्नः क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि सुगम और त्वरित न्याय उपलब्ध कराए बिना देश में न्याय के शासन की अवधारणा अधूरी ही रहेगी?

उत्तरः इतिहास इस बात का साक्षी है कि किसी भी देश में लोकतंत्र तभी कायम रह सकता है और सफल समझा जाएगा जब विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका लोकतंत्र के इन तीनों स्तंभों के प्रति उस देश की जनता का भरोसा बना रहे। न्याय प्रक्रिया को लेकर यह कहावत दुनिया भर में प्रचलित है- 'जस्टिस डिलेड इज जस्टिस डिनाइड' यानी न्याय में देरी भी एक तरह से अन्याय है। इस परिप्रेक्ष्य में यदि इस देश की न्याय प्रक्रिया पर नजर डालें तो निचली अदालतों से लेकर सर्वोच्च न्यायालय में न्याय में देरी के उदाहरण भरे पड़े हैं। एक ऑकड़े के अनुसार देश की अदालतों में लंबित मामलों की संख्या तीन करोड़ से अधिक है। इसके कारणों में जाने पर यह सूचित किया गया है कि मार्च, 2016 को देश की उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों के 44 फीसदी पद रिक्त पड़े हैं। देश के 24 उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों के कुल 1056 पद स्वीकृत हैं, जिनमें से 465 खाली पड़े हैं। इसी प्रकार निचली अदालतों में करीब एक चौथाई पद रिक्त हैं।

अक्सर यह सुनने को मिलता है कि न्यायाधीशों की नियुक्ति को लेकर सर्वोच्च न्यायालय की कॉलेजियम प्रणाली और केंद्र सरकार के बीच गतिरोध की वजह से रिक्त पदों को भरने में देरी हो रही है। जाहिर है, यह हमारी प्रणाली की विफलता का प्रतिफल है। स्वाभाविक है न्यायिक तंत्र के चरमराने से न्याय के शासन की अवधारणा अधूरी रह जाएगी, जिसका सबसे बुरा असर समाज के निचले तबके के लोगों पर पड़ेगा।

पिछले दिनों दिल्ली में प्रधानमंत्री की उपस्थिति में हुई राज्यों के मुख्यमंत्रियों और मुख्य न्यायाधीशों की बैठक में न्यायाधीशों की नियुक्ति को लेकर सरकार से शीघ्र कदम उठाने का अनुरोध करते-करते सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति टी एस ठाकुर का गला रूंध जाना साफ संकेत करता है कि न्यायपालिका में हालात भयावह हो चले हैं। न्याय के सर्वोच्च आसन पर विराजमान न्यायमूर्ति देश की ठप्प होती न्याय व्यवस्था को दुरूस्त कर पाने में खुद को लाचार पा रहे हैं।

उल्लेख्य है कि न्यायपालिका की क्षमता और देश के विकास के बीच गहरा नाता है। जाहिर है अब फैसला विकास को अपना कार्यक्रम बताने वाली सरकारों को लेना है। न्यायिक सुधारों पर देरी से फैसले लेने से

न्यायपालिका पर आम जनता का भरोसा कम होता जाएगा। यह स्थिति देश के विकास की राह अवरूद्ध कर सकती है। न्यायाधीशों की कमी का आलम यह है कि अमेरिका में जहाँ नौ जज पूरे साल 81 मामले सुनते हैं, वहीं भारत में अधीनस्थ से लेकर सर्वोच्च न्यायालय तक एक-एक जज को 2600 मुकदमें सुनने पड़ते हैं। दूसरी तरफ अदालतों में छुट्टियों की अधिक संख्या होने की वजह से सुनवाई समय पर नहीं हो पाती है। इस देश की अदालतों की कार्यशैली के बारे में एक आम कहावत है कि यहाँ दादा जो मुकदमा दाखिल करता है, उसका फैसला पोता सुनता है। न्यायपालिका के प्रति इस धारणा को बदलने की सख्त जरूरत है। इसके मद्देनजर अदालतों की न्यायिक जवाबदेही को अनिवार्य कर दिए जाने से कई समस्याएँ खुद ही समाप्त हो जाएँगी।

(52)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि गुजरात में आर्थिक आधार पर आरक्षण देने का सरकार का फैसला न्यायिक समीक्षा में टिक पाएगा?

उत्तरः राजस्थान के बाद गुजरात सरकार ने वार्षिक छह लाख रुपए तक की आमदनीवाले सवर्णों का 10 फीसदी आरक्षण का कोटा देकर एक बार फिर आरक्षण की बहस तेज कर दी है। गुजरात सरकार ने गरीब सवर्णों को आरक्षण देकर उच्चत्तम न्यायालय द्वारा तय सीमा 50 प्रतिशत से अधिक कोटा देने की घोषणा की है। ऐसे में यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि गुजरात सरकार का यह फैसला क्या न्यायिक समीक्षा में टिक पाएगा? इसके मद्देनजर न्यायिक शिक्षा में गुजरात सरकार का यह फैसला तबतक नहीं टिक पाएगा जबतक कि उच्चतम न्यायालय द्वारा आरक्षण की तय सीमा नहीं बढ़ाई जाती है।

(53)प्रश्नः भारत विश्व शांति का पक्षधर है, लेकिन देश परमाणु कार्यक्रम में बाहरी हस्तक्षेप का प्रबल विरोधी भी है। इस दृष्टि से अंतरराष्ट्रीय न्यायालय द्वारा हाल में दिए गए फैसले को आप कितना उचित मानते हैं?

उत्तरः न्यायालय चाहे राष्ट्रीय हो या अंतरराष्ट्रीय उसके फैसले के औचित्य या अनौचित्य पर कोई टिप्पणी करना मुनासिब नहीं दिखता, पर इतना कहना चाहूँगा कि प्रशांत महासागर में बसे एक छोटे देश मार्शलद्वीप समूह द्वारा द हेग स्थित अंतरराष्ट्रीय न्यायालय में दायर एक याचिका में भारत, पाकिस्तान और ब्रिटेन पर यह आरोप लगाया गया था कि ये तीनों देश परमाणु अप्रसार

संधि की शर्तो को मानने से और इस तरह के विनाशक हथियारों की दौड़ रोकने में असफल साबित हुए हैं।

संयुक्त राष्ट्र की इस सर्वोच्च अदालत की 16 न्यायाधीशोंवाली पीठ ने बहुमत के आधार पर परमाणु हथियार रखने से संबंधित मुकदमें को खारिज करते हुए स्पष्ट कर दिया है कि भारत के परमाणु कार्यक्रम में कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता। पीठ का कहना था कि परमाणु शक्ति संपन्न इन तीनों देशों के साथ मार्शल द्वीप समूह का पहले कभी विवाद होने का कोई प्रमाण नहीं है। इस मुद्दे पर तीनों देशों से कभी कोई द्विपक्षीय वार्ता की माँग भी नहीं की गयी। अंतरराष्ट्रीय अदालत के न्यायाधीश रॉनी अब्राहम ने मार्शल द्वीप द्वारा उठाई गई आपत्तियों के संदर्भ में भारत के पक्ष को सही ठहराया है।

दरअसल, इस याचिका के पीछे 55 हजार आबादीवाले मार्शल द्वीप समूह की अपनी पीड़ा यह रही है कि 1946 से 1958 के बीच अमेरिका ने इस देश में अपना परमाणु परीक्षण किया था जिसका दुष्प्रभाव आज भी देखा जा सकता है। इसलिए मार्शल द्वीप समूह परमाणु हथियारों का सख्त विरोधी है। उसकी पीड़ा को गलत भी नहीं ठहराया जा सकता है। परमाणु हथियारों का दुष्प्रभाव कितना पड़ता है इसे पूरी दुनिया जानती है इसलिए मार्शलद्वीप समूह का विरोध स्वाभाविक और मानव के हित में है।

विश्व शांति के लिए यदि सभी राष्ट्र मिलकर परमाणु हथियार मुक्त विश्व के लिए ठोस संकल्प लेते हैं और उसके अनुरूप कदम बढ़ाते हैं, तो यह स्वागत योग्य है, लेकिन जहाँ पाकिस्तान और उत्तर कोरिया जैसे देश परमाणु हमले की धमकी देते हों वहाँ अपनी सुरक्षा और मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालने के लिए परमाणु हथियार आवश्यक हो जाते हैं। भारत विश्व शांति का बहुत पहले से पक्षधर है, लेकिन देश के परमाणु कार्यक्रम में बाहरी हस्तक्षेप का प्रबल विरोधी भी है। इस दृष्टि से यदि देखा जाए, तो अंतरराष्ट्रीय न्यायालय का फैसला उचित जान पड़ता है।

(54)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि सर्वोच्च न्यायालय की फटकार के बाद केंद्र और राज्य सरकारें सूखे से निबटने और प्रभावितों को राहत मुहैया कराने के लिए त्वरित प्रयास करेंगी?

उत्तर: देश के कई इलाकों में कम बारिश के चलते आसन्न सूखे से निबटने के प्रति केंद्र और राज्य सरकारों की ढीले रवैए पर नाराजगी जताते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने सही ही कहा है कि सरकार को पिछले साल की

गलतियों से सबक लेना चाहिए। सरकारों को समय रहते सूखे के संकट से निबटने के उपायों की हिदायत देते हुए अदालत ने कहा कि 'जब घर में आग लगी हो, तब कुआँ खोदने का कोई औचित्य नहीं है।'

'स्वराज अभियान' की याचिका में सर्वोच्च न्यायालय को बताया गया कि मौसम विभाग के आँकड़ों के मुताबिक वर्ष 2016 में भी देश के करीब 149 जिलों में कम बारिश हुई है। इनमें उत्तर प्रदेश के 32, गुजरात के 13, बिहार के 12 और पंजाब के 11 जिले शामिल हैं। हालांकि इस पर केंद्र सरकार की ओर से अदालत को भरोसा दिया गया कि सरकार हालात से निबटने के लिए जरूरी कदम उठा रही है। पिछली गर्मियों में भी सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों के बाद ही केंद्र और राज्य सरकारें हरकत में आई थीं, जिसके बाद पीड़ितों को राहत मिल सकी थी।

किसी भी आपदा से त्रस्त नागरिकों को राहत देना सरकार की सबसे बड़ी जिम्मेवारी होनी चाहिए, लेकिन इस मामले में अदालत के फैसले और संसद द्वारा पारित कानून की अनदेखी हुई है। उम्मीद है कि देर से ही सही, पर अदालत की फटकार के बाद केंद्र और राज्य सरकारें सूखे से निबटने और प्रभावितों को राहत मुहैया कराने के लिए त्वरित प्रयास करेंगी।

(55)प्रश्नः घर की चहारदीवारी के भीतर औरतें अपने परिवारजनों से बचने के लिए सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभी हाल में सुरक्षा कानून में किया गया बदलाव क्या महत्वपूर्ण और जरूरी कानूनी पहल माना जाएगा?

उत्तरः हाँ, अभी तक कानून के तहत परिवार के किसी ऐसे व्यस्क पुरुष के विरूद्ध ही मुकदमा चलाया जा सकता था, जिस पर प्रताड़ना में शामिल होने का आरोप हो या जिसके खिलाफ पीड़िता ने संरक्षण माँगा हो। वर्ष 2005 के इस कानून से इस प्रावधान को हटा दिया गया है, क्योंकि अदालत की नजर में यह न्याय देने की राह में बाधक है और समानता के अधिकार का उल्लंघन है।

घरेलू हिंसा के अनेक मामलों में परिवार के किशोर और महिला सदस्यों की मिलीभगत के अनेक मामले हैं। अब ऐसे आरोपितों के खिलाफ कार्रवाई कर पाना क्या संभव होगा? पिछले साल भारत सरकार की एक रिपोर्ट में कहा गया था कि महिलाओं के खिलाफ होने वाले अपराधों में सबसे अधिक संख्या घरेलू हिंसा से संबंधित मामलों की है, जो कि 36 प्रतिशत से अधिक है। सामाजिक और प्रशासनिक समस्याओं के कारण ऐसी

बहुत सी घटनाओं की शिकायत दर्ज भी नहीं हो पाती है।

हालांकि भारत तेजी से लोकतांत्रिक और आर्थिक विकास की ओर अग्रसर है, लेकिन महिलाओं के प्रति पूर्वाग्रह को कमतर करने में पर्याप्त सफलता अभी तक नहीं मिल पाई है। ऐसे में घर की चहारदीवारी के भीतर अपने पति द्वारा या परिवार के किसी और सदस्यों की मिलीभगत से औरतों के साथ मारपीट की घटनाओं को रोकने में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मौजूदा कानून में किया गया बदलाव न केवल महत्वपूर्ण है, बल्कि एक जरूरी वैधानिक पहल माना जाएगा।

(56)प्रश्नः क्या कोई निजी संस्था इस देश के कानूनों और अदालतों से इतर अपनी मर्जी से चलायी जा सकती?

उत्तरः नहीं, कतई नहीं। मगर, भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड (बीसीसीआई) ने तो सांस्थानिक सुधारों के लिए सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देशों को पूरी तरह मानने से मना कर दिया है जबकि देश की सबसे बड़ी अदालत के फैसलों को मानने से इनकार करने का साहस सरकारों के पास भी नहीं होता है। विगत 1 अक्टूबर, 2016 को भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड ने एक विशेष बैठक कर न्यायालय द्वारा गठित लोढ़ा समिति की महत्वपूर्ण सिफारिशों को नकार दिया है। पिछले 28 सितंबर, 2016 को ही न्यायालय ने बोर्ड को कड़ी चेतावनी देते हुए कहा था कि वह खुद को कानून से ऊपर नहीं समझे। लोढ़ा समिति ने सर्वोच्च न्यायालय को सूचित किया था कि क्रिकेट बोर्ड के सभी निर्णय 18 जुलाई, 2016 को किए गए आदेश के विपरीत हैं। बोर्ड ने एक राज्य एक वोट, सदस्यों के लिए अधिकतम आयु सीमा 70 वर्ष करने, चयनकर्ताओं की संख्या पाँच से तीन करने और उनके पास टेस्ट क्रिकेट का अनुभव होने जैसी सिफारिशों को अस्वीकार कर दिया है।

सर्वोच्च न्यायालय बोर्ड की इस अवहेलना और अवमानना का तो संज्ञान लेगी ही, पर यह पूरा प्रकरण बेहद चिंताजनक है, दरअसल, क्रिकेट बोर्ड में देश के बड़े-बड़े राजनेताओं और उद्योगपतियों की पैठ है तथा वे बिना किसी रोक-टोक के वर्षो से देश में क्रिकेट के खेल को नियंत्रित करते रहते हैं। एक ओर जहाँ क्रिकेट का शानदार विकास हुआ है, वहीं दूसरी ओर बोर्ड में भ्रष्टाचार, घपले-घोटाले और मनमानी के भी अनेक मामले सामने आए हैं। बोर्ड के कामकाज पर सवालिया निशान लगने के बाद ही सर्वोच्च न्यायालय को दखल देना पड़ा है।

मुझे उम्मीद है कि सर्वोच्च न्यायालय बी.सी.सी.आई. की इस

अकड़ को ठीक करने के लिए तुरंत कोई कड़ा फैसला लेगी। एकाध खेलों को छोड़ दें, तो देश में खेलों के लिए बने संगठन सरकार द्वारा ही नियंत्रित हैं। उनमें भी राजनेताओं और नौकरशाहों की जमात काबिज है। आखिर तभी तो लोढ़ा समिति की सिफारिशों के बाद बिहार सरकार के अव्वल विभाग के एक मंत्री ने अपना मंत्री पद छोड़ने की इच्छा व्यक्त की है, ताकि बिहार के क्रिकेट संगठन में ही उनका वर्चस्व रह सके। इसी से यह सहज अंदाजा लगाया जा सकता है कि सरकार के मंत्री पद से भी ज्यादा रुचिकर या लाभ का पद उन्हें क्रिकेट संघ में ही दिखाई पड़ रहा है।

(57)प्रश्नः नशीले पदार्थों के खिलाफ हमारे देश में सख्त कानून हैं। इनमें कड़ी सजा के भी प्रावधान हैं। इसके बाद भी देश में आए दिन इसके मामले क्यों बढ़ते जा रहे हैं?

उत्तर: इस देश के कई राज्यों में नशे या कारोबार धड़ल्ले से हो रहा है और नई पीढ़ी के लोग इसमें अपने जीवन को नष्ट कर रहे हैं। पंजाब बुरी तरह नशे की चपेट में है और अन्य सीमावर्ती राज्यों में भी यह नासूर की तरह है। पंजाब के एक गाँव मकबूलपुरा ऐसा गाँव है जहाँ पर अधिकतर महिलाओं के पति की नशे की वजह से मृत्यु हो चुकी है।

भारत में नारकोटिक ड्रग एवं साइकोट्रोपिक सब्सटेंस अधिनियम 1985 बनाया गया था जिसे प्रभावी बनाने के लिए 2014 में नया कानून बनाया गया। नशीले पदार्थो के सेवन से बढ़ते खतरे के मद्देनजर 1998 में राष्ट्रीय मादक द्रव्य निवारण संस्थान की स्थापना कर मादक द्रव्य ब्यूरों को एक व्यापक भूमिका दी गई। इस यूनिट को मादक द्रव्यों की माँग में कमी लाने का काम सौंपा गया है। इसे पूरे देश में सेवाएँ देने का विस्तृत कार्य करने का आदेश दिया गया।

नारकोटिक ड्रग एवं सायकोट्रोपिक सब्सटेंस अधिनियम, 1985 की धारा 71 के अंतर्गत सरकार को नशीली दवा के आदी लोगों की पहचान, इलाज और पुनर्वास केंद्र की स्थापना का अधिकार है। इसी प्रकार नोडल एजेंसी के रूप में सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, शराब और मादक द्रव्य दुरुपयोग निवारण योजना के अंतर्गत लोगों के लिए स्वैच्छिक संगठनों द्वारा चलाए जा रहे एकीकृत पुनर्वास केंद्र को सहायता प्रदान कर रहा है।

नशे का कारोबार करने वालों के लिए पुलिस को सर्वोच्च न्यायालय ने एनडीलीएस एक्ट 1985 के प्रावधानों का पूरे तौर पर पालन करने का निर्देश दिया है। बड़े स्तर पर इन प्रावधानों के उल्लंघन होने की स्थिति में

अदालत ने सभी राज्यों के पुलिस महानिदेशकों को कानून की धारा 42 का पालन करने के लिए कहा है। धारा 42 के तहत जाँच अधिकारी को बगैर किसी वारंट या अधिकार पत्र के तलाशी लेने, मादक पदार्थ जब्त करने और गिरफ्तार करने का भी अधिकार दिया है। साथ ही सावधानी और शुचिता बरतने के लिए यह प्रावधान है कि यदि अधिकारी को मादक पदार्थ के बारे में गुप्त सूचना मिलती है तो उसे तत्काल अपने वरिष्ठ अधिकारी को इसकी सूचना देनी चाहिए। बिहार राज्य में ठीक इसी तर्ज पर शराबबंदी के लिए कानून बना है जिसमें नशीले पदार्थों का सेवन करना, रखना, बेचना या उसका आयात-निर्यात करना या फिर इस कारोबार में किसी की सहायता करना, सभी में गंभीर सजाओं के प्रावधान हैं, लेकिन इसके बावजूद देश के राज्यों में इसके मामले बढ़ते ही जा रहे हैं जिसका और जो कारण हों, मगर भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी भी उनमें प्रमुख हैं।

(58)प्रश्नः क्या आप इस बात से सहमत हैं कि सर्वोच्च न्यायालय क्रिकेट के अलावा दूसरे खेल संघों की गड़बड़ियों का भी स्वतः संज्ञान लेकर उनके कामकाज में पारदर्शिता लाने हेतु खेल-खिलाड़ियों के हित दिशा-निर्देश जारी करे?

उत्तरः सर्वोच्च न्यायालय द्वारा क्रिकेट के अलावा दूसरे खेल संघों की गड़बड़ियों का स्वतः संज्ञान लेकर दिशा-निर्देश जारी करने के सवाल का उत्तर देने के पहले लोढ़ा समिति की सिफारिशों को लागू करने में किंतु-परंतु कर रहे भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड(बीसीसीआई) को सर्वोच्च न्यायालय ने जो अभी फटकार लगाई है उस पर कुछ आपको मैं बताना इसलिए आवश्यक समझता हूँ, क्योंकि दूसरे खेल-संघों के शीर्ष पदों पर बैठे अधिकारी भी क्रिकेट बोर्ड जैसी ही गड़बड़ियाँ कर खेल-खिलाड़ियों का अहित करते हैं।

आपको याद होगा मुख्य न्यायाधीश की अध्यक्षतावाली सुप्रीम कोर्ट की पीठ ने भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड की गड़बड़ियों में सुधार लाने के लिए न्यायाधीश लोढ़ा की अध्यक्षता में लोढ़ा समिति का गठन कर सुझाव प्रस्तुत करने का आदेश दिया था। लोढ़ा समिति ने अपने सुझाव में एक राज्य में एक क्रिकेट संघ, सभी को वोट देने का अधिकार, खिलाड़ियों के हित का ध्यान रखने, टेस्ट क्रिकेट को ही चयनकर्ता बनाने, टिम चयन और कोचिंग पूर्व क्रिकेटर द्वारा किए जाने, देश में क्रिकेट को क्रिकेटर द्वारा ही चलाए जाने, फिक्सिंग रोकने के लिए कदम उठाने, बी.सी.सी.आई को आर. टी.आई के दायरे में लाने, बी.सी.सी.आई. में मंत्री व अधिकारी को नहीं

लाने, सट्टेबाजी को वैध बनाने तथा बी.सी.सी.आई. की स्वायत्तता बनी रहने की शिफारिशें की थीं, किंतु इन सिफारिशों को अमल में लाने की बजाय बी.सी.सी.आई. ने न केवल शीर्ष अदालत के निर्देशों को नजरअंदाज किया, बल्कि उसके अध्यक्ष अनुराग ठाकुर ने अदालत को कमतर आँकने वाले कई आपत्तिजनक बयान दिए। इतना ही नहीं बी.सी.सी.आई. ने लोढ़ा पैनल के आमूल-चूल परिवर्तन की सिफारिशों के खिलाफ दायर पुनर्विचार याचिका पर सुनवाई करने वाली पाँच सदस्यीय अदालत की पीठ में प्रधान न्यायाधीश को भी नहीं रखने की भी अपील की थी। असल में उच्चतम न्यायालय ने जब लोढ़ा समिति की सिफारिशों को स्वीकार किया था, तब बी.सी.सी.आई को इन्हें लागू करने के लिए छह माह का समय दिया था, लेकिन बी.सी.सी.आई. के पदाधिकारियों के व्यवहार से लग रहा था कि वह इन सिफारिशों को पूरी तरह लागू करने की स्थिति में नहीं है।

उच्चतम न्यायालय ने विगत 28 सितंबर, 2016 को बी.सी.सी.आई. को तगड़ी फटकार लगाते हुए कड़ी चेतावनी दी कि यदि वह अदालत के आदेशों का पालन नहीं करता है, तो वह उसे 'सही रास्ते पर ले आएगा' और कहा कि यह धनाढ्य खेल संस्था 'भगवान' की तरह व्यवहार नहीं कर सकती और उसे यह नहीं सोचना चाहिए कि वह स्वयं कानून है। अदालत की इस चेतावनी के बाद बोर्ड को अपनी गलती का अहसास हो जाना चाहिए और सुधार के सुझावों पर अमल की शुरुआत कर देनी चाहिए, क्योंकि बोर्ड कानून से ऊपर नहीं है और अगर अदालत के आदेशों का पालन नहीं किया गया, तो उसे ऐसा करने के लिए मजबूर किया जाएगा।

दरअसल, ज्यादातर खेल संघों में राजनेताओं की उपस्थिति ने खेलों के विकास में कोई उल्लेखनीय योगदान नहीं दिया है और पारदर्शिता एवं जवाबदेही का भी अभाव देखा गया है। इसे देखते हुए क्रिकेट के अलावा जो दूसरी खेल संस्थाएँ हैं उनमें भी गंभीर समस्याएँ हैं। इन समस्याओं की पुष्टि रियो एवं पैरॉल्पिक खेलों में भारत के निराशाजनक प्रदर्शन से भी होती है। इसलिए बेहतर हो उच्चत्तम न्यायालय क्रिकेट के अलावा दूसरे खेल संघों की गड़बड़ियों का भी स्वत: संज्ञान लें और ऐसे दिशा-निर्देश जारी करें जिससे उनके कामकाज में पादर्शिता आए और खेल एवं खिलाड़ियों के हित में हो।

(59)प्रश्न: अदालत में मुकदमा या याचिका दायर करने वाले यानी क्लाइंट को उसी का अधिवक्ता यदि धोखा दे, तो क्लाइंट को क्या करना चाहिए?

उत्तर: आज देश की अदालतों में जिस तेजी से मामले बढ़ते जा रहे हैं ऐसी स्थिति में अदालत में मुकदमा या याचिका दायर करने वाले क्लाइंट को मामला दायर करने और अधिवक्ता के दायित्व की जानकारी होना आज की सामाजिक और कानूनी जरूरत है। बहुत छोटे-छोटे मामलों में भी वकील की जरूरत होती है। ऐसे में मामला या याचिका दायर करने वाले को यह मालूम होना चाहिए कि उसके क्या अधिकार हैं और उक्त मामले से उसे किस हद तक लाभ हो सकता है।

कई बार ऐसा भी होता है कि क्लाइंट अपने ही वकीलों से धोखा खा जाते हैं। संपत्ति या अन्य मामलों में अक्सर देखने में आता है। कई बार विरोधी पक्ष तय किए गए वकील के रिश्तेदार हो सकते हैं। यही नहीं कई बार तो ऐसा भी देखा गया है कि वकील जान-बुझकर न्यायाधीश द्वारा मांगी गई आवश्यक जानकारी उपलब्ध रहने पर भी वकील इसलिए तारीख पर तारीख बढ़वाते हैं, ताकि उन्हें उनका फिस मिलता रहे, क्योंकि नैतिकता में जिस हद तक गिरावट देखी जा रही है, उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। कई बार तो ऐसा भी होता है कि मामले दायर करने वाले क्लाइंट के वकील विपक्ष के क्लाइंट से भी पैसा लेकर मुकदमें की पैरवी ठीक से नहीं कर पाते हैं।

मेरा अनुभव बताता है कि जब मैंने बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष का दायित्व संभाला तब उस वक्त बोर्ड के तकरीबन डेढ़ हजार मुकदमें अदालतों में लंबित थे, लेकिन जब मैंने बोर्ड की ओर से अदालत के मुकदमों की देखरेख करनेवाले वकील रिटेनर के साथ उनके सहायक वकीलों को बदल दिया, तो मात्र छह महीनों के बाद ही मुकदमों की संख्या डेढ़ हजार से घटकर पाँच सौ रह गई, तो मैंने इसकी जाँच की। जाँच के बाद मुझे पता चला कि बोर्ड की ओर से पूर्व में रखे गए वकील संबंधित संस्कृत विद्यालयों अथवा उसके संस्कृत शिक्षकों से भी पैसे लेकर बोर्ड को हराने में उनकी दिलचस्पी थी, क्योंकि वकील साहब को दोनों क्लाइंटों से पैसा मिल जाता था। क्या आप इस हदतक नैतिकता में गिरावट का अंदाजा लगा सकते हैं? कतई नहीं, लेकिन ऐसे कुकर्म तो आए दिन हो रहे हैं। इसलिए क्लाइंट को वकील के दायित्व और उनके अधिकार की कानूनी जानकारी क्लाइंट को अवश्य होनी चाहिए। कारण कि वकील पेशेवर होने के साथ ही अदालतों के अधिकारी की भी भूमिका में रहते हैं। साथ ही वे कानून के शासन के तामिल में अहम भूमिका निभाते हैं। इस तरह के नियम

कानून बार काउंसिल ऑफ इंडिया के चेप्टर दो के भाग-6 में रेखांकित हैं।

इसके अतिरिक्त एड्वोकेट्स एक्ट 1961 की धारा 49(1)(सी) में ये जिक्र है कि वकीलों को किन नियमों का पालन करना चाहिए। वैसे क्लाइंट के वकील का दायित्व इस प्रकार है-

(1)क्लाइंट मामले के बारे में जो कुछ कहना चाहता है या जानकारी देना चाहता है उन बातों को सुनना वकील का दायित्व बनता है।

(2)वकील क्लाइंट की सेवा से मुकर नहीं सकते।

(3)वकील क्लाइंट के मुकदमें में तब पेश नहीं हो सकते जब वकील स्वयं उसी मुकदमें में गवाह हैं।

(4)क्लाइंट को बिना किसी पक्षपात के पूरी बात दो टूक बताना वकील की जवाबदेही है, अन्यथा इससे प्रभावित हो सकते हैं।

(5) अदालत में क्लाइंट का पक्ष रखते हुए वकील का निर्भीक होना जरूरी है, ताकि मामला पक्ष में जाने पर भी उसे कोई प्रभावित न कर सके। यानी क्लाइंट का हित पहले।

(6)किसी भी स्थिति में कोई गवाह या सामग्री नहीं छुपाएँगे।

(7)वकील का यह दायित्व है कि क्लाइंट और अपनी बातें न जाहिर करें, क्योंकि दोनों के बीच आपसी विश्वास का आधार यही है।

(8)वकील अदालती लड़ाई को अनावश्यक रूप से खींचते रहते हैं। कई बार ऐसा होता है कि दोनों पक्ष मामले को हल करना चाहते हैं, लेकिन मामले को आगे बढ़ाने के लिए जोर देते रहते हैं जिसे ठीक नहीं माना जा सकता।

(9) कोई भी वकील क्लाइंट को छोड़कर किसी अन्य के निर्देश पर काम नहीं कर सकता, न ही क्लाइंट के अधिकृत व्यक्ति के निर्देश पर।

(10)यदि संपत्ति संबंधी मामले हैं, तो वकील संपत्ति में परसेंटेज बतौर फीस नहीं माँग सकता। यह बार कौंसिल द्वारा अनुमति प्राप्त नहीं है।

(11)किसी संपत्ति के मामले में वकील उक्त संपत्ति खरीदने या उसकी बोली भी नहीं लगा सकते।

(12) वकील किसी मामले से जुड़ी संपत्ति की बोली न लगाने के अलावा हस्तांतरण की कवायद भी नहीं कर सकता।

(13)किसी क्लाइंट द्वारा जाहिर की गई जानकारियों का वकील मामले के बाद भी दुरुपयोग नहीं कर सकता है। यह पेशेगत गरिमा के अनुकूल नहीं है।

इसके अतिरिक्त अधिवक्ता अधिनियम 1961 की धारा-35 के

अंतर्गत स्टेट बार कौंसिल द्वारा अधिवक्ता के खिलाफ प्राप्त शिकायत अथवा स्वप्रेरणा से अधिवक्ता को दंडित करने का प्रावधान है।

(60)प्रश्नः केंद्र सरकार और न्यायपालिका के बीच उच्च न्यायालयों में लंबित मुकदमों के निस्तारण के लिए बनी सहमति क्यों अधिक उल्लेखनीय है?

उत्तरः केंद्र सरकार और न्यायपालिका के बीच उच्च न्यायालयों में लंबित मुकदमों के निस्तारण के लिए बनी सहमति इसलिए अधिक उल्लेखनीय है, क्योंकि सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की नियुक्ति को लेकर सरकार और सर्वोच्च न्यायालय के बीच उपजे मतभेद दूर नहीं हो पा रहे हैं और उसके चलते न्यायालयों में न्यायाधीशों के करीब चार सौ पद रिक्त हैं। सबसे हैरान-परेशान करने वाला आँकड़ा यह है कि यदि उच्च न्यायालयों में लंबित मामलों का निस्तारण तेजी से नहीं हो सका तो शीघ्र ही उनकी संख्या एक करोड़ तक पहुँच सकती है। ऐसे में यह सुनिश्चित किया जाना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है कि सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की सेवाएँ लिए जाने को लेकर सरकार और न्यायपालिका के बीच जो सहमति हुई है उसके अनुरूप कदम उठाने में देर न हो।

लंबित मामलों के बढ़ते बोझ की वजह से न केवल न्यायपालिका और सरकार दोनों की छवि प्रभावित हो रही है, बल्कि सबसे बड़े लोकतंत्र के तौर पर देश की साख पर भी बुरा असर पड़ रहा है। यदि लोगों को समय पर न्याय न सुलभ हो, तो फिर हम लोकतंत्र का गुणगान करते नहीं रह सकते। इसी प्रकार निचली अदालतों में लंबित करीब ढाई करोड़ मामलों के निस्तारण के लिए भी सरकार और न्यायपालिका के बीच इन खामियों को दूर करने वास्ते कोई सहमति बनती है तो उस कदम की सराहना की जाएगी।

(61)प्रश्नः क्या आपको लगता है कि सतलज नदी के पानी के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर सियासत हो रही है?

उत्तरः हाँ, मुझे ऐसा लगता है कि सतलज नदी के पानी के मामले में कर्नाटक की तरह पंजाब में भी उच्चतम न्यायालय के फैसले पर सियासत हो रही है, क्योंकि सतलज यमुना लिंक नहर मामले में पंजाब के खिलाफ सर्वोच्च न्यायालय का फैसला आने पर पंजाब काँग्रेस के अध्यक्ष और लोकसभा सांसद कैप्टन अमरिंदर सिंह ने लोकसभा की सदस्यता से तथा उनके साथ पंजाब काँग्रेस के सभी विधायकों ने भी इस फैसले के विरोध में इस्तीफा दिया। पंजाब में अगले साल यानी 2017 में होने वाले विधान

सभा के चुनाव से पहले सर्वोच्च न्यायालय के इस फैसले के बाद इस मुद्दे पर सियासत होने लगी है।

इसके पूर्व पंजाब के मुख्यमंत्री प्रकाश सिंह बादल ने उपमुख्यमंत्री सुखबीर सिंह बादल की अगुवाई में शिरोमणि अकाली दल की कोर कमिटी की बैठक में साफ कह दिया था कि पंजाब का पानी अगर हरियाणा या किसी दूसरे राज्य को दिया जाता है, तो वह पानी उनको उनकी लाशों के ऊपर से बहकर जाएगा और वह अपने खून का एक-एक कतरा बहा देंगे, लेकिन पंजाब का पानी किसी भी राज्य को नहीं देंगे। डर इस बात का है कि कावेरी जल बँटवारे में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के बाद जो स्थिति कर्नाटक और तमिलनाडु में हुई थी, वही स्थिति कहीं पंजाब और हरियाणा की ना हो जाए, जबकि सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान सम्मत फैसला दिया है जिसे लागू करने की जिम्मेदारी केंद्र सरकार की है। इस मामले में सियासत की जा रही है जिसमें केंद्र सरकार को हस्तक्षेप करने की जरूरत है, क्योंकि हरियाणा ने भी जम्मू तक जाने वाली बस सेवा बंद कर दी है।

(62)प्रश्नः हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय ने उन वृद्ध माता-पिता के हक में फैसला दिया, जिनके बच्चे उन्हें अकेला छोड़कर अपनी दुनिया अलग बसा लेते हैं। इस फैसले पर आप क्या कहना चाहेंगे?

उत्तरः हाँ, सर्वोच्च न्यायालय ने हाल ही में एक फैसला सुनाया जिसमें अदालत ने पति को इस आधार पर तलाक की मंजूरी दी कि उसकी पत्नी माता-पिता से अलग रहने के लिए उसे उकसाती थी और दबाव डालती थी। यह मामला बेंगलुरु का है जिसमें पति-पत्नी की ओर से फेमिली कोर्ट में चला और फेमिली कोर्ट के फैसले से जब पत्नी खुश नहीं थी, तो उच्च न्यायालय में यह मामला गया और फिर जब उच्च न्यायालय के फैसले से पति सहमत नहीं हुआ, तो यह मामला सर्वोच्च न्यायालय पहुँचा।

1992 में सुमेर और रितु की शादी होने के बाद 1993 में एक बेटी दीक्षा का जन्म हुआ। फिर कुछ साल के बाद दोनों में इस बात को लेकर खटपट होने लगी कि पत्नी लगातार अपने पति पर दबाव बना रही थी कि वह माता-पिता को छोड़ दें और उसके साथ अलग से रहें। पति का कहना था कि उसके माता-पिता का और कोई नहीं है, इसलिए वह उनकी देखरेख के लिए उनके साथ ही रहना चाहता है।

सर्वोच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति अनिल दवे और न्यायमूर्ति नागेश्वर राव की खंडपीठ ने पति का पक्ष लेते हुए पत्नी की क्रूरता के आधार पर

तलाक को मंजूरी दी। हिंदू विवाह कानून 1995 के सेक्शन 13(1)(19) में क्रूरता को परिभाषित भी किया गया है जिसे तलाक का आधार भी माना है।

सर्वोच्च न्यायालय का कहना है कि पत्नी चाहती है कि पति उसके माता-पिता से अलग रहें। साक्ष्य के अनुसार पति की आय से पूरा घर चल रहा है। भारत की हिंदू संस्कृति के अनुसार कोई बेटा जो घर में अकेला कमाने वाला है, वह अपने माता-पिता से अलग हो जाए, वह भी अपनी पत्नी के कहने पर यह कतई नहीं माना जा सकता।

बच्चे को माता-पिता शिक्षा देते हैं उसे बड़ा करते हैं, ऐसे में बच्चे का दायित्व होता है कि जब वे वृद्ध हो जाएँ और उनके पास आमदनी का कोई जरिया न हो, तो बेटा उनकी देखरेख करे। हिंदू समाज में कोई बेटा अपने माता-पिता की देखरेख कर रहा है तो यह सामान्य रूप से प्रचलन में है। यह बेटे का पवित्र दायित्व है। यदि पत्नी पति को माता-पिता से अलग रहने के लिए कह रही है तो उसके पीछे कोई ठोस कारण होना चाहिए। हमें इस मामले में कोई ठोस कारण नहीं लगता है, न ही न्यायोचित लगता है। वह केवल पैसे के लिए ऐसा करना चाहती है। हमारी राय में कोई भी बेटा यह बर्दाश्त नहीं करता कि उसकी पत्नी उसे बुजुर्ग माता-पिता या परिवार के अन्य सदस्यों से अलग करे, खासतौर पर वे जो उसपर निर्भर हैं। पत्नी का लगातार पति पर अलग होने के लिए दबाव बनाना प्रताड़ना है और हमारी राय में यह क्रूरता है।

हमारी राय में अदालत का यह फैसला हमारे देश में तलाक के सामाजिक और कानूनी पक्ष का एक और पहलू उभरता है। भारत में माता-पिता बच्चे की जिम्मेदारी है। शादी के बाद भी उसे अपनी जिम्मेदारी वहन करनी होती है। शादी इस व्यवस्था को बदल नहीं सकती। इस फैसले से वह वृद्ध माता-पिता को राहत मिली, जिनके बच्चे उन्हें छोड़कर अलग रहते हैं। साथ ही इस चलन पर भी कुठाराघात हुआ कि नवदंपत्ति एक दूसरे को समझने के लिए घर छोड़कर अलग रहने लगते हैं।

(63)प्रश्नः कर्नाटक के पूर्व मुख्यमंत्री बी. एस. यदियुरप्पा के सीबीआई की विशेष अदालत से रिश्वत के मामले में बरी होने के बाद आम जनमानस में गहरे पैठी इस धारणा को क्या बल नहीं मिलता है कि 'बड़े लोगों के हाथ कानून के हाथ से लंबे होते हैं? यदि येदियुरप्पा निर्दोष हैं, तो उनके राजनीतिक और निजी जीवन में मचे उथल-पुथल के लिए दोषी कौन हैं?

उत्तर: सीबीआई की विशेष अदालत ने पिछले दिनों कर्नाटक के पूर्व मुख्यमंत्री और कर्नाटक के भाजपा अध्यक्ष बी. एस. यदियूरप्पा को उन्हें और उनके दो बेटों और दामाद के अलावा नौ अन्य लोगों को भी रिश्वत लेने के आरोपों से बरी कर दिया है। लेकिन, यदियुरप्पा पर आरोप लगने से लेकर उनके आरोप मुक्त होने तक का घटनाक्रम देश की न्यायिक प्रणाली कुछ विडंबनाओं को भी समाने ला खड़ा किया है। हाल के दशकों में ऐसे कई मामले सामने आए हैं जब बड़े नेताओं पर पद का दुरुपयोग कर आय से अधिक संपत्ति अर्जित करने के आरोप लगे, वे दागी माने गए, कुर्सी गंवायी, जेल गए, लेकिन लंबी अदालती कार्यवाही के बाद आरोपमुक्त होकर फिर पद पर काबिज हो गए, ऐसे प्रकरणों से आमजनमानस में गहरे पैठी इस धारणा को बल मिलना स्वभाविक है कि 'बड़े लोगों के हाथ कानून के हाथ से लंबे होते हैं।' बिहार में लालू प्रसाद से लेकर शहाबुद्दीन, राजबल्लभ यादव और रॉकी यादव इसके उदाहरण माने जा सकते हैं।

कर्नाटक के तत्कालीन लोकायुक्त न्यायमूर्ति संतोष हेगड़े कर्नाटक में 2008 में बनी पहली भाजपा सरकार के मुख्यमंत्री यदियुरप्पा पर आरोप था कि उन्होंने खनन लाइसेंस देने में पद का दुरुपयोग किया, जिसके लिए 2010 में उनके परिवार और फेमिली ट्रस्ट को 40 करोड़ रुपए की रिश्वत दी गयी थी जिसकी वजह से यदियुरप्पा को तीन सप्ताह तक जेल में भी रहना पड़ा था। बाद में यदियुरप्पा द्वारा उच्च एवं सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाने पर अदालत ने मामले की सीबीआई की जाँच कराने के आदेश दिए थे और सीबीआई ने 2012 में यदियुरप्पा और अन्य 12 लोगों को दोषी भी पाया था, मगर सीबीआई की विशेष अदालत ने येदियुरप्पा ही नहीं, उनके दो बेटों और दामाद के अलावा नौ अन्य लोगों को भी आरोपों से बरी कर दिया है।

सीबीआई की विशेष अदालत के फैसले से यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि येदियुरप्पा निर्दोष हैं तो उनके राजनीतिक और निजी जीवन में मचे उथल-पुथल के लिए कौन दोषी है? लोकायुक्त और सीबीआई ने जिन साक्ष्यों को आरोप लगाने के लिए पर्याप्त माना, अदालत में वे संविधान की कसौटी पर खरे क्यों नहीं उतर पाए? ऐसे सवालों से आँख मिलाकर ही देश की न्याय प्रणाली अपनी साख और मजबूत कर सकती है।

(64)प्रश्न: लोकतंत्र में इससे विचित्र और क्या हो सकता है कि कोई मुख्यमंत्री जिस-तिस को मानहानि कानून के सहारे परेशान करता दिखे?

उत्तर: यह बात ठीक है कि जयललिता तमिलनाडु की एक लोकप्रिय

मुख्यमंत्री हैं, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि वह साम्राज्ञी की तरह व्यवहार करे। पिछले दिनों उच्चतम न्यायालय ने तमिलनाडु की मुख्यमंत्री जयललिता को मानहानि कानून का दुरुपयोग करने के मामले में जो नसीहत दी उस पर उनके साथ-साथ अनेक नेताओं को भी गौर करना चाहिए। जयललिता को सुप्रीम कोर्ट की फटकार इसलिए सुननी पड़ी, क्योंकि उन्होंने डीएमडीके के अध्यक्ष विजयकांत के खिलाफ मानहानि के दो-चार नहीं, 14 मामले दर्ज कर रखे हैं। यह वही विजयकांत है जिन्होंने एक समय जयललिता के साथ मिलकर विधान सभा चुनाव लड़ा था। उस पर मानहानि का मामला सिर्फ इसलिए थोप दिया गया, क्योंकि उन्होंने कभी यह कह दिया था कि जयललिता एक भ्रष्ट सरकार चला रही है। एक आँकड़े के अनुसार जयललिता ने पिछले पाँच साल में अपने राजनीतिक विरोधियों, अन्य अलोचकों और मीडिया के खिलाफ करीब डेढ़ सौ मुकदमें कर रखे हैं। यह स्पष्ट ही है कि जब कोई मुख्यमंत्री किसी पर मानहानि का मामला दर्ज कराता है, तो उसके प्रति पुलिस प्रशासन की भी नजरें टेढ़ी हो जाती हैं।

विडंबना यह है कि विरोधी दल के नेताओं के साथ-साथ जब-तब जयललिता के दल के नेता भी उनकी असहिष्णुता का शिकार होते रहते हैं। हाल ही में तमिलनाडु विधानसभा अध्यक्ष ने विपक्षी विधायकों को यह फरमान सुनाया कि वे मुख्यमंत्री का नाम नहीं ले सकते। आखिर सार्वजनिक जीवन में सक्रिय लोग ऐसा रवैया कैसे अपना सकते हैं?

अब देखना यह है कि उच्चतम न्यायालय द्वारा जयललिता को दी गई फटकार की सीख का कितना असर पड़ता है सत्ता पक्ष के नेताओं पर। सार्वजनिक जीवन में रहने वालों को आलोचना सुनने की आदत डालनी चाहिए और सरकारी नीति की आलोचना करना मानहानि का मुकदमा दायर करने का आधार नहीं हो सकता। सुप्रीम कोर्ट ने यह भी व्यवस्था दी कि मानहानि कानून किसी से राजनीतिक बदला लेने का हथियार नहीं हो सकता, लेकिन इसका इस्तेमाल इसी रूप से अधिक हो रहा है। अच्छा हो कि देशद्रोह संबंधी कानून की तरह मानहानि के कानून को भी दुरुस्त किया जाए, ताकि उसका इस्तेमाल असहमति की आवाज दबाने में न किया जा सके। इससे भी ज्यादा जरूरी है कि हमारे नेता स्वस्थ लोकतांत्रिक तौर-तरीकों को तरजीह दें। ऐसा इसलिए क्योंकि आलोचना के प्रति असहिष्णुता दिखाने के मामले में केवल जयललिता की ही गिनती नहीं की जा सकती। अपने देश में उनके जैसे नेताओं की कमी नहीं।

(65)प्रश्नः सर्वोच्च न्यायालय ने अभी हाल ही बच्चियों से दुष्कर्म के मामले से जुड़े पक्षों के तकनीकी पहलुओं में न उलझते हुए पीड़ित को केंद्र में रखकर अपना नजरिया बनाने का फैसला दिया है। इस तरह के जटिल मामले में जो आरोपी बच निकलते हैं क्या उसमें अदालत के फैसले से बड़ा बदलाव आ सकता है?

उत्तर: हाँ, बच्चियों से दुष्कर्म के मामले से जुड़े पक्षों को तकनीकी पहलुओं में न उलझते हुए पीड़ित को केंद्र में रखकर अपना नजरिया बनाने के सुप्रीम कोर्ट के फैसले से जो आरोपी खासकर बेहद जटिल मामलों में बच निकलते हैं उसमें बड़ा बदलाव आ सकता है।

हिमाचल प्रदेश की एक नौ साल की बच्ची के साथ उसके अपने मामा द्वारा दुष्कर्म किए जाने के बाद मामा ने उसे जान से मारने की धमकी दी थी जिसकी वजह से वह बच्ची अपनी माँ से शिकायत नहीं की थी, मगर कुछ दिनों के बाद उस बच्ची के पेट में दर्द होने पर जब चिकित्सक ने परीक्षणोपरांत उसके नाजूक अंगों में कई तरह के घाव का पता चलने पर अदालत में शिकायत की गई। निचली अदालत ने आरोपी को दुष्कर्म का दोषी पाया, लेकिन उच्च न्यायालय में गवाही में कई विसंगतियों के कारण दोषी मुक्त कर दिया गया। सुप्रीम कोर्ट में अपील किए जाने के बाद उसने कहा कि इस तरह के मामलों में थोड़ा-सा हटकर देखें और पीड़ित की तरफ झुकाव अभियोजकों को होना चाहिए, ताकि दोषी सजा पा सके।

शीर्ष अदालत का यह भी कहना था कि इस तरह के मामले में पीड़ित की गरिमा का पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए, क्योंकि हर वर्ष हमारे देश में यौन प्रताड़ना के हजारों मामले कई कारणों से दबे रह जाते हैं, जिसमें पुलिस जाँच में कमी, फॉरेंसिक सबूतों का अभाव, पीड़ित की जाँच कराने में अनिच्छा जैसे कारण शामिल हैं। कानून लागू करने वाले अधिकारी और अभियोजक इस तरह के मामलों को संभालने के लिए पूरी तरह से तैयार नहीं है। इस कारण करतूत करने वाले को सजा नहीं हो पाती है। इन्हीं तकनीकी उलझनों की वजह से आरोपी बच निकलते हैं । इस शीर्ष अदालत ने यह भी कहा कि इस तरह के मामले में पूरी प्रक्रिया और जिरह के दौरान भी पीड़ित को केंद्रित कर सहानुभूतिपूर्ण नजरिया रखना चाहिए, क्योंकि इस तरह के मामलों में सदमा आजीवन रहता है और पीड़ित प्रभावित रहते हैं।

2012 में संसद ने पोस्को कानून पास किया, जिसमें बच्चों को इस तरह की प्रताड़नों और अपराधों से बचाने के लिए सजा के प्रावधान हैं। इसमें

कम से कम दस वर्ष और अधिकतम आजीवन कारावास की सजा है। कई लोगों की राय है कि पोस्को इस तरह के मामले रोकने में इसलिए विफल रहा है, क्योंकि उसमे भी दंड के प्रावधान वही हैं, जो भारतीय दंड संहिता में हैं, उससे अलग हटकर कोई प्रावधान नहीं है। सुप्रीम कोर्ट का दिशा-निर्देश है कि दुष्कर्म पीड़ित का नाम जाहिर नहीं किया जाना चाहिए। इसके बाद भी 2015 में एक अध्ययन में पता चला कि 36 फीसदी मामलों में पीड़ित के नाम दर्शाए गए।

(66)प्रश्नः हाल ही में सुप्रीम कोर्ट ने एक फैसला में पति के विवाहेत्तर संबंधों को लेकर पत्नी के संदेह को हमेशा क्रूरता न मानकर अनैतिक और अवैध माना है, ऐसा क्यों? आखिर सुप्रीम कोर्ट ने किन बातों को विवाह में क्रूरता माना है?

उत्तरः हाँ, हाल ही में सुप्रीम कोर्ट ने एक फैसले में कहा कि पति के विवाहेतर संबंधों को लेकर पत्नी के संदेह को हमेशा मानसिक क्रूरता नहीं माना जा सकता। इसमें निचली अदालत और उच्च न्यायालय दोनों ने पति को सजा सुनाई थी, जिसे सुप्रीम कोर्ट ने बरी कर दिया। दरअसल, इस व्यक्ति की पत्नी ने विवाहेतर संबंधों के कारण आत्महत्या कर ली थी। न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा और अमिताव राय की अदालत ने कहा कि विवाहेतर संबंधों को अनैतिक माना जा सकता है और इसके आधार पर तलाक लिया जा सकता है, लेकिन इसे पत्नी के प्रति क्रूरता मानकर पति को दोषी नहीं ठहराया जा सकता, क्योंकि आपराधिक मामला करार देने के लिए कुछ और परिस्थितियाँ भी जरूरी होती हैं।

सुप्रीम कोर्ट ने इन बातों को विवाह में क्रूरता माना है-

(1) अंतरंगता न रखने का एकतरफा फैसला लेना, भले ही शारीरिक रूप से सक्षम हो, फिर भी बिना कारण बताए ऐसा करना।

(2)पति या पत्नी कोई भी अकेले ही यह फैसला ले कि विवाह के बाद बच्चा पैदा नहीं करेंगे।

(3)बोलचाल में अक्खड़पन, चिड़चिड़ापन, भेदभाव व उपेक्षा भाव के कारण एक-दूसरे को सहना मुश्किल और कष्टकारक हो जाता है। परंतु रूखापन या लगाव न होने की क्रूरता नहीं माना जा सकता।

(4)लंबे समय तक नाराजगी, निराशा और कुंठा को मानसिक क्रूरता मान सकते हैं।

(5)लगातार आरोप लगाना, अपमानजनक भाषा का इस्तेमाल करना, प्रताड़ित करना क्रूरता है।

(6)बिना कहे, सुने पति या पत्नी में से एक भी अगर 'स्टरलाइजेशन' करा ले, तो वह क्रूरता की श्रेणी में आता है।

कानून विवाहेतर संबंधों को अवैध और अनैतिक मानता है। इसलिए विवाहेतर संबंधों को हतोत्साहित करने के लिए दंड प्रावधानों के अंतर्गत भी रखा गया है। इससे समाज में मुश्किलें आती हैं। इसलिए मौजूदा विवाह कानून भी इसे रोकने की कोशिश कर रहा है।

दक्षिण कोरिया में विवोहेतर संबंध बनाने को अपराध की श्रेणी में रखा जाता था। यह कानून 62 वर्षों तक रहा, लेकिन पिछले वर्ष 2015 में इसे इस श्रेणी से हटा दिया गया है।

(67)प्रश्नः आजादी के सत्तर साल बीत जाने के बाद भी केंद्र एवं राज्य सरकारों द्वारा अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के विरूद्ध होने वाले अपराधों, उत्पीड़न और उनके साथ होने वाले भेदभाव को रोकने में उसकी असफलता पर उच्चतम न्यायालय ने जो अपनी चिंता जताई है उसपर आप क्या कुछ कहना चाहेंगे?

उत्तरः सर्वोच्च न्यायालय ने आजादी के सत्तर साल बीत जाने के बाद भी अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों के विरूद्ध होने वाले अपराधों, उत्पीड़न और उनके साथ होने वाले भेदभाव को रोकने में असफल होने पर केंद्र एवं राज्य सरकारों की तीखी भर्त्सना की है और इसके लिए उनके बेरूखी नजरिये को जिम्मेदार ठहराया है। दरअसल, सरकारें वंचित-उत्पीड़ित तबकों की हिफाजत के लिए बने कानूनों के अमल में बुरी तरह असफल रही हैं। जब देश की सबसे ऊँचली अदालत इसपर अपनी चिंता जाहिर करती है, तो आप समझ सकते हैं कि पानी किस हद तक सर से ऊपर गुजर रहा है। अदालती टिप्पणी के पहले एक हफ्ते के भीतर दो राज्यों से आई खबरें इसी कड़वी हकीकत को बयान कर रही थीं। राजस्थान उच्च न्यायालय ने राज्य सरकार ने पूछा था कि आखिर अधिनियम बनने के बाद भी पीड़ितों एवं गवाहों के पुनर्वास के लिए योजनाएँ क्यों नहीं बनायी गयी हैं और उन्हें राहत क्यों नहीं दी जा रही हैं।

अगर राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरों के आँकड़ों को देखा जाए, तो पता चलता है कि अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के विरूद्ध होने वाले अत्याचारों में वृद्धि हो रही है। देश में अनुसूचित जाति के लोगों की तादाद 20 करोड़ तक है, इसका अर्थ यह है कि इस देश की आबादी के छह में से एक व्यक्ति के अधिकारों का लगातार उल्लंघन हो रहा है। इसी प्रकार

अत्याचार निवारण अधिनियम की मूल भावना के हिसाब से कभी इस पर अमल नहीं होने दिया गया है।

यही नहीं देश की 16 करोड़ से अधिक आबादी का बड़ा हिस्सा दोयम दर्जे को जीवन जीने के लिए अभिशप्त है। यह स्थिति दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र की भावी यात्रा के बारे में भी बहुत कुछ संकेत देती है। इस मायने में हमारा लोकतंत्र औपचारिकता से आगे विकसित नहीं हो सका है और उसे वास्तविक लोकतंत्र बनाने की चुनौती बनी हुई है।

ऐसी विषम स्थिति में अगर अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों को संविधान प्रदत्त समानता के अधिकार दिलाने को लेकर उच्च एवं उच्चतम न्यायालय चिंतित हैं, तो हमें अपनी ऊर्जा न केवल कानूनों के सख्त अमल को लेकर केंद्रित करनी होगी, बल्कि इसके साथ हमें अपने समाज के मानस को बदलने का भी गंभीर प्रयास करना होगा।

(68)प्रश्नः क्या आप इस बात से सहमत हैं कि जम्मू-कश्मीर से जुड़े मुद्दे पर उच्चतम न्यायालय ने अपनी भूमिका का सफलतापूर्वक निर्वाह किया है? कैसे?

उत्तरः नागेश जी, मैं इस बात से पूर्णतः सहमत हूँ कि जम्मू-कश्मीर से जुड़े मुद्दे पर उच्चतम न्यायालय ने अपनी भूमिका का सफलतापूर्वक निर्वाह किया है, क्योंकि भारत की इस सर्वोच्च अदालत ने जम्मू-कश्मीर की संवैधानिक स्थिति स्पष्ट कर दी, वरना वहाँ के उच्च न्यायालय के एक फैसले को लेकर जिस तरह विवाद उठ रहा था उसकी आड़ में दुर्भाग्यजनक हालात पैदा हो सकते थे।

दरअसल, जम्मू एवं कश्मीर उच्च न्यायालय ने भारतीय स्टेट बैंक द्वारा कर्ज की प्राप्ति के लिए कश्मीर में संपत्ति बेचने से जुड़े एक मुकदमे की सुनवाई करते हुए कहा था कि कश्मीर को संप्रभुशक्तियाँ प्राप्त हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालय के इस नजरिए को पूरी तरह खारिज करते हुए स्पष्ट कर दिया कि जम्मू-कश्मीर को जो भी दर्जा प्राप्त है, वह भारत के संविधान की सीमाओं के बाहर नहीं।

सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि भारत के संविधान के सेक्शन-3 के अनुसार भारत राज्यों का समूह है और जम्मू-कश्मीर भारत का अभिन्न भाग है। जम्मू-कश्मीर के बाशिंदे सबसे पहले भारत के नागरिक हैं, उसके बाद ही उन्हें जम्मू-कश्मीर के संविधान के तहत कुछ सुविधाएँ-सहूलियतें हासिल हैं और यह भारतीय संविधान की संप्रभुता से बाहर का विषय कतई नहीं है।

सच तो यह है जम्मू-कश्मीर उच्च न्यायालय के फैसले से संवैधानिक स्थिति को लेकर बेहद भ्रम की स्थिति पैदा हो सकती थी और इसके आधार पर वहाँ प्रशासन तक की व्यवस्था पर प्रतिकूल असर पड़ सकता था। सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालय के नजरिए को परेशान करने वाला माना और संवैधानिक स्थिति की उचित व्याख्या कर दी। जब भी संवैधानिक तौर पर भ्रम या विवाद की स्थिति पैदा होती है, तो सबकी निगाहें देश की सर्वोच्च न्यायालय पर होती हैं, क्योंकि सर्वोच्च न्यायालय को भारतीय संविधान का संरक्षक माना जाता है, इसलिए किसी भी बिंदु पर उसकी व्याख्या अंतिम और बाध्यकारी होती है। इस दृष्टिकोण से देखा जाए तो जम्मू-कश्मीर उच्च न्यायालय के फैसले को नकारते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने जो फैसला दिया है वह न केवल मील का पत्थर साबित होगा, बल्कि हमें यह कहने में कदाचित अतिश्योक्ति नहीं मानी चाहिए कि सर्वोच्च अदालत ने अपनी भूमिका का सफलतापूर्वक निर्वाह किया है।

देश की सबसे ऊँची अदालत की दो सदस्यीय पीठ ने जम्मू-कश्मीर उच्च न्यायालय के इस फैसले को खारिज कर दिया जिसमें कहा गया था कि राज्य को अपने स्थायी निवासियों की अचल संपत्ति के अधिकार के संबंध में कानून बनाने का पूर्ण संप्रभु अधिकार है। इसमें यह भी कहा गया था कि संसद में पारित कानून यदि राज्य विधानसभा के बनाए गए कानून को प्रभावित करता है, तो उसे राज्य में लागू नहीं किया जा सकता है। दो-सदस्यीय पीठ ने यह भी कहा है कि जम्मू-कश्मीर के स्थायी निवासी भारत के नागरिक हैं और यहाँ कतिपय देशों के संघीय संविधान की तरह दोहरी नागरिकता नहीं है। जो प्रावधान संसद की विधायी क्षमता के दायरे में हैं, उन्हें जम्मू-कश्मीर राज्य में भी लागू किया जा सकता है। पीठ ने इस व्याख्या को भी गलत ठहराया है कि राज्य के निवासियों के बारे में उनकी संप्रभुता अलग और विशिष्ट वर्ग जैसी है। जम्मू-कश्मीर के संविधान की धारा-3 यह घोषणा करती है कि जम्मू-कश्मीर राज्य भारतीय संघ का अभिन्न अंग है और रहेगा। यह अपरिवर्तनीय है। इस फैसले का दूरगामी परिणाम होगा।

(69)प्रश्नः देश के सभी राष्ट्रीय एवं राज्य उच्च पथ पर शराब की बिक्री पर सर्वोच्च न्यायालय का फैसला क्या स्वागत योग्य है? आखिर क्यों?

उत्तरः हाँ, हाल में सर्वोच्च न्यायालय ने देश के सभी उच्च पथों पर शराब

की बिक्री पर रोक लगाने का जो फैसला दिया है वह स्वागतयोग्य है, क्योंकि राज्य सरकारों ने राष्ट्रीय उच्च पथ पर या उसके आसपास शराब की बिक्री का लाइसेंस देकर सिर्फ पैसे बनाने का काम किया है, लेकिन लोगों की जिंदगी और सुरक्षा जैसी जरूरी बातों को दरकिनार कर रही है। उल्लेख्य है कि एक लाख चालीस हजार लोग हर साल सड़क दुर्घटनाओं में मारे जाते हैं इनमें से अधिकतर हादसों की वजह शराब पीकर गाड़ी चलाना है। राष्ट्रीय उच्च पथ पर आसानी से शराब की उपलब्धता नशे में गाड़ी चलाने को बढ़ावा देता है, लेकिन सर्वोच्च न्यायालय के इस फैसले के बाद अब इन हादसों में कमी आ सकती है, क्योंकि जल्द ही राष्ट्रीय उच्च पथ पर शराब की दुकानें बंद हो जाएँगी।

सर्वोच्च न्यायालय ने अपने फैसले में कहा कि सभी राज्यों में राष्ट्रीय उच्च पथ पर या उसके आसपास पड़ने वाली शराब की दुकानों के लिए लाइसेंस खत्म कर दिए जाएँगे। पहले दिए गए लाइसेंस का नवीनीकरण नहीं होगा। सर्वोच्च न्यायालय का यह फैसला स्वागतयोग्य है और राज्य सरकारों को इसे पूरी गंभीरता के साथ लागू करने के बारे में सोचना चाहिए।

भारत के प्रधान न्यायाधीश की अध्यक्षतावाली खंडपीठ ने शराब लॉबी के दबाव में अँधाधुंध परमिट बाँटने की प्रवृत्ति पर टिप्पणी की है कि शराब के भयावह सामाजिक, आर्थिक और स्वास्थ्य संबंधी चिंताओं पर अक्सर चर्चा की जाती है, लेकिन संवैधानिक निर्देश के बावजूद सरकारें शराब पर अंकुश लगाने की राजनीतिक इच्छाशक्ति नहीं दिखा पाती हैं। शराब व्यवसाय से जुड़े लोग भी पैसे के दम पर ऐसी किसी पहल को कुंद करने की जुगत लगाते रहते हैं तथा सरकारें शराब पर लगने वाले शुल्क से होने वाले राजस्व की कमाई की दुहाई भी देती रहती हैं। इस दृष्टि से देखा जाए तो राष्ट्रीय और राज्य के राजमार्गो के किनारे शराब की दुकानों पर प्रतिबंध लगाने का उच्चतम न्यायालय का फैसला सड़क सुरक्षा और लोक कल्याण की दिशा में ऐतिहासिक है, लेकिन डर यही है कि कहीं व्यवस्था में सुधार के लिए दिए गए अदालत के अन्य फैसलों की तरह कार्यपालिका इसे आधे-अधूरे तरीके से लागू करके इसके मूल उद्येश्य को भुला न दे।

उच्चत्तम न्यायालय का यह फैसला सड़क हादसों में होने वाली मौतों की दारुण स्थिति में एक सदिच्छा भरी पहल है, जिसे अगर समझदारी से लागू किया गया तो निश्चित तौर पर हर साल सड़क हादसों में होनेवाली 1.42 लाख मौतों का आँकड़ा नीचे आएगा। आँकड़े बताते हैं कि राजमार्गो

पर हर पाँच किलोमीटर की दूरी पर औसतन शराब की तीन दुकाने हैं। इसीलिए अदालत ने 2015 में ही सड़क सुरक्षा पर एक समिति बना दी थी और कुछ राज्य उस दिशा में काम भी कर रहे थे। विशेष तौर पर हरियाणा, म.प्र. और ओडिसा ने इस बारे में पहल भी की थी। शराब के दुष्प्रभाव के प्रति सरकारों और न्यायपालिका की बढ़ती संवेदना सराहनीय है, क्योंकि हिंसा, अपराध, आर्थिक तंगी, पारिवारिक तबाही जैसी परेशानियाँ देश के भविष्य को बर्बाद कर रही हैं। जैसे शराब सड़क हादसों का बड़ा कारण है, वैसे ही वह समाज और परिवार के अंदर भी हादसों की बड़ी वजह भी है।

(70)प्रश्नः क्या मुस्लिम पत्नियों को हमेशा तीन तलाक की स्वेच्छाचारिता से पीड़ित रहना चाहिए? क्या उनका निजी कानून इन दुर्भाग्यपूर्ण पत्नियों के प्रति इतना कठोर रहना चाहिए? क्या इन यातनाओं को खत्म करने को निजी कानून में उचित संशोधन नहीं होना चाहिए?

उत्तर: आपके ये तीनों प्रश्न इलाहाबाद उच्च न्यायालय की न्यायमूर्ति सुनीत कुमार की एकल पीठ ने याची, उमर बी तथा हिना- इन तीन तलाक मुस्लिम महिलाओं द्वारा दायर याचिकाओं की सुनवाई के बाद अपने फैसले में कहा कि, 'जो सवाल को परेशान करता है वह यह है कि क्या मुस्लिम पत्नियों को हमेशा इस तरह की स्वेच्छाचारिता से पीड़ित रहना चाहिए? क्या उनका निजी कानून इन दुर्भाग्यपूर्ण पत्नियों के प्रति इतना कठोर रहना चाहिए? क्या इन यात्नाओं को खत्म करने को निजी कानून में उचित संशोधन नहीं होना चाहिए? न्यायिक अंतरात्मा इस विद्रूपता से परेशान है। भारत में मुस्लिम कानून पैगम्बर या पवित्र कानून की भावना के विपरीत है। यही भ्रांति पत्नी को तलाक देने के कानून का क्षरण करती है। आधुनिक, धर्मनिरपेक्ष देश में कानून का उद्येश्य सामाजिक बदलाव लाना है। भारतीय आबादी का एक बड़ा हिस्सा मुस्लिम समुदाय है, इसलिए नागरिकों का बड़ा हिस्सा खासकर महिलाओं को निजी कानून की आड़ में पुरानी रीतियों और सामाजिक प्रथाओं के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता।

पर्सनल लॉ संविधान प्रदत्त अधिकारों से ऊपर नहीं हो सकता। तीन तलाक मुस्लिम महिलाओं के साथ क्रूरता है। यह न तो समाज के हित में है और न देश के हित में। इलाहाबाद उच्च न्यायालय की एकल पीठ ने भी यह टिप्पणी करते हुए तलाक के मामले को खारिज कर दिया है, क्योंकि तीन तलाक मुद्दे की सुनवाई सर्वोच्च न्यायालय कर रहा है। अदालत ने निकाह या तलाक की वैधता पर कोई फैसला नहीं देते हुए कहा कि पवित्र

कुरान तलाक या खुला की छूट देता है, लेकिन इसकी अनुमति तभी है, जब पति-पत्नी के बीच सुलह के सभी रास्ते बंद हो चुके हों।

दरअसल, लोग अपनी सुविधा के लिए तीन तलाक के इस्लामिक कानून की व्याख्या कर इसे जायज ठहरा रहे हैं। यह गलत है, क्योंकि पर्सनल लॉ संवैधानिक प्रावधानों से ऊपर नहीं हो सकता। वैसे भी सभी मुसलमान तीन तलाक को नहीं मानते, किंतु भारत में बड़ा मुस्लिम समाज तीन तलाक को स्वीकार कर रहा है, जो महिलाओं को संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों के खिलाफ है तथा भारत को एक राष्ट्र होने में बाधक है। वैसे भी लोकतंत्र में जब हाशिए की आवाज का दम घुटने लगे तो यह लोकतंत्र के लिए खतरा है। इतिहास बदलाव पर टिका है और यह बदलाव होता रहेगा। कानून समय की माँग के मुताबिक बनाए जाते हैं, जिनमें हमेशा बदलाव की संभावना मौजूद होती है। कभी बेहद तरक्की पसंद मानी जानी वाली कानून प्रणालियाँ पुरानी और बेअसर हो जाती हैं और सामाजिक जरूरतों के हिसाब से उन्हें दोबारा ढाला और गढ़ा जाता है। इस दृष्टि से शरीयत कानून में भी बदलाव लाया जा सकता है।

(71)प्रश्नः क्या आजादी के सत्तर साल बाद भी हमें देशभक्ति की कोई समझ नहीं है?

उत्तरः हाँ, आजादी के सत्तर साल बाद भी हमें देशभक्ति की कोई समझ नहीं है। राष्ट्रगान बजाने के लिए कम-से-कम सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विगत 30 नवंबर, 2016 को दिया गया आदेश तो यही बताता है। इस बारे में माननीय सर्वोच्च न्यायालय का निर्देश साबित करता है कि राष्ट्रगान गाए जाने के दौरान कैसे रहना है और क्या कुछ करना है, हमें इसका भी सलीका नहीं है। कायदे से ये हमारी जिम्मेदारी बनती है कि जो लोग यह नहीं जानते हैं कि राष्ट्रगान के वक्त खड़ा रहने, करने का सलीका क्या होना चाहिए उन्हें सुधारा जाना चहिए।

पिछले दिनों सर्वोच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा और अमिताव रॉय की खंडपीठ ने अपने आदेश में यही तो बताया है कि राष्ट्रगान के लिए जो नियम हैं उसके मूल में राष्ट्रीय पहचान, अखंडता और संवैधानिक राष्ट्रभक्ति है। इसलिए कोई भी व्यक्ति राष्ट्रगान बजाने के एवज में व्यावसायिक लाभ नहीं ले और इसका नाटकीय तौर पर प्रयोग भी नहीं किया जाए। पीठ ने निर्देश दिया है कि लोग खड़े होकर राष्ट्रगान के प्रति सम्मान दर्शाएँ और जब राष्ट्रगान बजाया जाय तब सिनेमा हॉल में दिखाए जा

रहे फिल्म के पर्दे पर राष्ट्रीय ध्वज दिखाया जाए। हर नागरिक राष्ट्रगान और राष्ट्रीय ध्वज के प्रति सम्मान दर्शाए। लोगों को यह महसूस हो कि यह मेरा देश और मेरी मातृभूमि है।

यही नहीं माननीय न्यायमूर्ति ने यह भी निर्देश दिया है कि अवांछित वस्तुओं पर राष्ट्रगान ना तो मुद्रित किया जाए, ना ही दर्शाया जाए। विभिन्न कार्यक्रमों में राष्ट्रगान बजाने और इसके संक्षिप्त प्रारूप को कहीं भी बाजार जाने पर भी पाबंदी हो। लोगों में यह जागरूकता लाई जाए कि राष्ट्रगान का अपमान देश का अपमान है। देश को नीचा दिखाने का मतलब खुद के वजूद को कम करना है। इसलिए अदालत ने कहा है कि राष्ट्रगान के वक्त सिनेमा हॉल में कोई आए-जाए नहीं और इस दौरान सिनेमाघरों के दरवाजे बंद रहेंगे। सिनेमाघरों को राष्ट्रगान का 52 सेकेंड का पूरा वर्जन ही बजाना होगा। राष्ट्रगान के दौरान खड़े नहीं हुए तो उन्हें तीन साल तक जेल की सजा भुगतनी होगी।

सर्वोच्च न्यायालय में अर्जी लगाने वाले 77 वर्षीय श्यामनारायण चौकसे 14 साल से राष्ट्रगान के प्रति सम्मान के लिए अदालत में लड़ रहे थे। उच्च न्यायालय से न्याय नहीं मिलने पर तीन माह पहले उन्होंने सर्वोच्च न्यायालय में अर्जी लगाई थी।

नि:संदेह सर्वोच्च न्यायालय ने सभी सिनेमाघरों में फ़िल्म दिखाए जाने के पहले राष्ट्रगान की धुन बजाने और उसके सम्मान में खड़े होने को अनिवार्य करके 21वीं सदी में उभरती देशभक्ति की भावना पर मुहर लगा दी है। देखना है कि इस आदेश का पालन वे लोग कितनी तन्मयता से करते हैं, जो सिर्फ फेसबुक और ट्विटर पर देशभक्ति की बहसें चलाते रहते हैं।

(72)प्रश्न: गणतंत्र के लिए आपको यह शुभ लगता है कि न्यायपालिका और सरकार दोनों ही एक-दूसरे को लक्ष्मण रेखा की याद दिला रहे है?

उत्तर: नहीं, यह मुझे कोई शुभ नहीं लगता है कि लोकतांत्रिक संसदीय प्रणाली के अंतर्गत काम कर रही सरकार के दो प्रमुख स्तंभ न्यायपालिका और सरकार एक-दूसरे को लक्ष्मण रेखा की याद दिला रहे हैं। पिछले दिनों संविधान दिवस के अवसर पर पहले भारत के प्रधान न्यायाधीश टी. एस. ठाकुर ने उच्च न्यायपालिका में जजों के खाली पदों पर नियुक्तियों में हीला-हवाला के लिए सरकार को लक्ष्मण रेखा की याद दिलाई। उन्होंने यह भी कहा कि संविधान ने हमारे लोकतंत्र के हर अंग के लिए लक्ष्मण रेखाएँ खींची हैं और उसकी निगरानी की जिम्मेदारी न्यायपालिका को दी है। फिर

नियुक्तियों पर उनकी नाराजगी का जवाब भारत के कानून मंत्री रविशंकर प्रसाद ने यह कहकर दिया कि मौजूदा सरकार ने रिकॉर्ड न्यायिक नियुक्तियाँ की हैं और नियुक्तियों के मामले में नए मापदंडों पर सुप्रीम कोर्ट को ही राय देनी है।

इसी प्रकार एक दूसरे कार्यक्रम में कुछ ऐसा ही संवाद केंद्र सरकार के सबसे बड़े कानून अधिकारी अटार्नी जनरल मुकुल रोहतगी और वरिष्ठतम न्यायाधीश के. एस. खेहर के बीच देखने को मिला। अटार्नी जनरल ने न्यायपालिका को लक्ष्मण रेखा की याद दिलाई तो न्यायमूर्ति के. एस. खेहर ने कहा कि हमें अपनी लक्ष्मण रेखा का बखूबी इल्हाम है, सरकार को अपनी हदों को याद रखना चाहिए। इसके पहले प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की मौजूदगी में प्रधान न्यायाधीश उच्च न्यायपालिका में नियुक्तियों को लेकर भावुक अपील कर चुके हैं। उन्होंने तभी कहा कि सरकार के लेटलतीफ रवैए से न्यायिक व्यवस्था के पंगु होने का खतरा आन पड़ा है।

दरअसल, सरकार और न्यायपालिका के इस टकराव की पृष्ठभूमि 'राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग' संबंधी उस विधेयक के साथ तैयार हुआ था, जिसे मोदी सरकार ने आते ही संसद के दोनों सदनों से पास करवा लिया था। इसमें न्यायिक नियुक्तियों के मामलों में न्यायपालिका के एकछत्र अधिकार को खत्म करके उसमें सरकारी हस्तक्षेप बनाई गई थी। लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने इसे असंवैधानिक करार दिया। मगर यह माना कि नियुक्ति के लिए कॉलेजियम व्यवस्था के पैमानों में कुछ सुधार की गुंजाइश है। यह मामला अभी सर्वोच्च न्यायालय के सामने लंबित है। इसी को आधार बनाकर सरकार न्यायपालिका को झुकने पर मजबूर कर देना चाहती है। बेशक, यह टकराव की स्थिति गणतंत्र के लिए चिंताजनक है जो मिटनी चाहिए और लक्ष्मण रेखा दोनों के लिए स्पष्ट होनी चाहिए।

बेहतर तो होता कि जिस संविधान का गुणगान समय-समय पर सरकार और सर्वोच्च न्यायालय दोनों करते रहते हैं, उसी संविधान के तहत व्यक्त इस भावना का सम्मान दोनों पक्षों को भी करना चाहिए कि देश में न्याय और कानून का प्रशासन की आदर्श स्थिति तब तक कायम नहीं हो सकती, जबतक सरकार और न्यायपालिका में से किसी भी पक्ष की तरफ से महज अपने मुताबिक चीजें तय करने की कोशिश की जाएगी। मुझे यह उम्मीद है कि इस तनातनी का नकारात्मक असर पड़ने से पहले सरकार और सर्वोच्च न्यायालय अपने रवैए में नरमी लाते हुए विवादों का हल निकाल लेंगे।

(73)प्रश्नः शीर्ष अदालत द्वारा दी गई व्यवस्थाओं के प्रकाशन पर एकाधिकार को लेकर सवाल उठाते हुए उच्चतम न्यायालय ने जो अभूतपूर्व फैसला सुनाया है उसके अमल में आने पर आमजन को क्या फायदा है?

उत्तरः हाँ, अभी पिछले दिनों शीर्ष अदालत द्वारा दी गई व्यवस्थाओं के प्रकाशन पर एकाधिकार को लेकर सवाल उठाते हुए उच्चत्तम न्यायालय ने जो फैसला सुनाया है, उसके अमल में आते ही अब आमजन भी न्यायाधीशों द्वारा समय-समय पर विभिन्न मामलों में दिए जाने वाले फैसलों को सूचनार्थ तथा लाभार्थी दोनों दशाओं में प्रकाशित करा सकता है।

अबतक शीर्ष अदालत से जुड़ी सामग्री के प्रकाशन पर गिनी-चुनी कंपनियों व फर्मों का ही एकाधिकार था। इन कंपनियों के मालिक ही उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों द्वारा दिए गए फैसले को संकलित करते तथा संपादन के बाद उसे पुस्तक रूप देते थे। इसी पुस्तक को कानून से जुड़े संस्थानों, वकीलों व जनता को बेचा करते थे लेकिन शीर्ष अदालत के अभी के फैसले के बाद उन कंपनियों का एकाधिपत्य समाप्त हो गया। अब कानून से जुड़ी इस सामग्री को कोई भी प्रकाशित करा सकता है तथा कोई भी इसे बेच सकता है, क्योंकि सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश रंजन गोगोई तथा एन वी रमण की खंडपीठ ने अपने फैसले में कहा है कि शीर्ष अदालत के फैसले पर किसी का कोई कॉपीराइट नहीं। सुप्रीमकोर्ट की बेवसाइट पर दी गई इस सामग्री का कोई भी प्रकाशन करा सकता है। यह फैसला इसलिए भी स्वागत योग्य है, क्योंकि कानूनी मामलों की सामग्री के प्रकाशन का यह क्षेत्र भी आमजनता के लिए खुल गया जिससे हर किसी के लिए कानूनी जानकारी जुटानी ज्यादा सुलभ तो होगी ही, रोजगार के नए अवसर भी पैदा होंगे सो अलग।

(74)प्रश्नः क्या किसी बेटे को अपने माता-पिता द्वारा खुद अर्जित किए गए घर में रहने का कोई कानूनी अधिकार है?

उत्तरः नहीं, किसी बेटे को अपने माता-पिता द्वारा खुद अर्जित किए गए घर में रहने का कोई कानूनी अधिकार नहीं है। दिल्ली उच्च न्यायालय ने पैतृक संपत्ति को लेकर पिछले दिनों 29 नवंबर, 2016 को इसी आशय का एक बड़ा फैसला दिया है। अदालत ने एक व्यक्ति और उसकी पत्नी की अपील खारिज करते हुए यह फैसला सुनाया।

दरअसल, अपील में एक निचली अदालत द्वारा माता-पिता के पक्ष

में दिए गए आदेश को चुनौती दी गई थी। माता-पिता ने निचली अदालत को बताया था कि उनके दोनों बेटों और बहुओं ने उनका जीवन नरक बना दिया है। दोनों बेटों ने माता-पिता के आरोपों को नकारते हुए इसके खिलाफ ट्रायल कोर्ट में याचिका दायर की थी जिसमें उन्होंने यह दावा किया था कि वे भी माता-पिता द्वारा अर्जित संपत्ति में हिस्सेदार हैं, क्योंकि इसकी खरीदगी और निर्माण में उनका भी योगदान है।

हालांकि ट्रायल कोर्ट ने फैसला माता-पिता के पक्ष में दिया था, जिसके खिलाफ उनका बेटा और बहु दिल्ली उच्च न्यायालय में अपील की थी। दिल्ली उच्च न्यायालय की न्यायमूर्ति प्रतिभा रानी ने अपने फैसले में कहा कि किसी बेटे को अपने माता-पिता द्वारा खुद अर्जित किए गए घर में रहने का कोई कानूनी अधिकार नहीं है और वह केवल 'दया' पर ही वहाँ रह सकता है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि बेटा विवाहित हो या अविवाहित। अदालत ने कहा कि चूँकि माता-पिता ने संबंध अच्छे होने के वक्त बेटे को घर में रहने की अनुमति दी। इसका यह मतलब नहीं कि वे पूरी जिंदगी उसका 'बोझ' उठाएँ। बेटा या बहू केवल उसी समय तक वहाँ रह सकती हैं जबतक के लिए माता-पिता उसे रहने के लिए अनुमति दें।

(75) प्रश्न: निचली अदालत या उच्च न्यायालय में नोटबंदी से संबंधित मामले की सुनवाई पर केंद्र सरकार द्वारा रोक की माँग को सर्वोच्च न्यायालय ने अस्वीकार कर दिया है। इसे आप किस रूप में देखते हैं?

उत्तर: उच्चतम न्यायालय ने केंद्र सरकार द्वारा निचली अदालतों एवं उच्च न्यायालय में नोटबंदी से संबंधित मामले की सुनवाई पर रोक लगाने की माँग को अस्वीकार कर न्यायसंगत व्यवस्था का परिचय दिया है, क्योंकि सरकार की किसी कार्रवाई से यदि देशवासियों को परेशानी होती है, तो लोगों को निचली अदालत अथवा उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाने का उसका अधिकार है जिससे उन्हें वंचित नहीं किया जा सकता। यदि इसे बंद कर दिया जाएगा, तो समस्या की गंभीरता का कैसे पता चलेगा। लोग परेशान हैं, क्रुद्ध हैं, स्थिति गंभीर है या इससे दंगे हो सकते हैं तो ऐसी स्थिति में दिक्कतें दूर होनी चाहिए। नोटबंदी से उत्पन्न स्थिति के संदर्भ में विगत 18 नवंबर, 2016 को केंद्र सरकार की अर्जी पर सुनवाई के दौरान मुख्य न्यायाधीश टी. एस. ठाकुर की अध्यक्षतावाली पीठ की यह टिप्पणी न्याय संगत व्यवस्था के अनुरूप है। हाँ, मुख्य न्यायाधीश ने यह व्यवस्था अवश्य

दी कि सभी मामले एक उच्च न्यायालय में स्थानांतरित किए जा सकते हैं। इसलिए मुझे लगता है कि उच्चतम न्यायालय ने न्याय संगत व्यवस्था देकर आम नागरिकों के अधिकारों का संरक्षण भी किया है।

(76)प्रश्नः क्या किसी प्रत्याशी की शैक्षणिक योग्यता जानना मतदाता का मौलिक अधिकार है?

उत्तरः देश की अदालतों ने समय-समय पर मतदाताओं के पक्ष में फैसले दिए हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि किसी प्रत्याशी की शैक्षणिक योग्यता जानना मतदाता का मौलिक अधिकार है। कोई प्रत्याशी यदि इस संबंध में गलत घोषणा करता है, तो उसका चुनाव आधिकारिक रूप से खत्म माना जाएगा। इस संबंध में दो अपीलें पृथ्वीराज सिंह एवं पुखरेम शरतचंद्र सिंह ने एक-दूसरे के खिलाफ दायर की थीं। साथ ही इसमें मणिपुर उच्च न्यायालय के फैसले को भी चुनौती दी गई थी। मणिपुर उच्च न्यायालय ने पृथ्वीराज का चुनाव खत्म मान लिया था।

राष्ट्रवादी काँग्रेस पार्टी के टिकट पर मणिपुर के मोइरांग विधानसभा सीट से 2012 में चुनाव लड़ने वाले पृथ्वीराज काँग्रेस प्रत्याशी शरतचंद्र सिंह के खिलाफ थे। दोनों एक-दूसरे के खिलाफ दो अपीलें दायर की थीं। आरोप है कि अपीलकर्ता ने अपने नामांकन-पत्र में यह गलत जानकारी दी थी कि उसने यूनिवर्सिटी ऑफ मैसूर से एमबीए किया है। बाद में वे कहने लगे कि शैक्षणिक योग्यता में एमबीए लिखने की गलती एक बाबू की वजह से हुई। सर्वोच्च न्यायालय ने इसमें साक्ष्य एकदम उलट पाए। उसने पाया कि जब 2008 में उन्होंने चुनाव लड़ा था, तब भी उन्होंने मैसूर यूनिवर्सिटी से एमबीए होने का जिक्र किया था। ऐसे में न्यायाधीश राव ने कहा कि यह कैसे माना जा सकता है कि एमबीए का उल्लेख करना एक बाबू की गलती है। मतदाता को गलत सूचना देने के खिलाफ यह फैसला देना विकासशील देशों में लोकतंत्र को और पुख्ता करता है।

समस्त लोकतांत्रिक राजनीतिक सिद्धांतों में इस बात को लेकर बाकायदा सहमति है कि लोकतंत्र में पारदर्शिता के उदाहरण मतदाता के लिए अनिवार्य है। नागरिकों को यह अधिकार है कि जिसे वे चुन रहे हैं , उसे क्यों चुन रहे हैं। राजनीति का तथ्यात्मक ज्ञान नागरिकों के लिए अहम पहलू है। पर्याप्त जानकारियों के अभाव में न तो वह जज्बा रहेगा और न ही किसी तरह का फैसला लेने में कोई हित परिलक्षित हो सकेंगे। जहाँ तक लोकतांत्रिक सिद्धांतों की बात है तो वे बखूबी समझे जाने चाहिए, ताकि उन्हें

स्वीकार कर अर्थपूर्ण तरह से उन्हें लागू किया जा सके। फिर भी अधिकतर मतदाता हमारे देश में अशिक्षित रहते हैं। ऐसे में किस तरह देश में लोकतंत्र आगे बढ़ेगा?

लोकतंत्र के लिए जरूरी है सूचना से परिपूर्ण वोटर, लेकिन सभी जानकारियों से लैस वोटर को बजाय हमारे यहाँ लोकतंत्र पर ज्यादा जोर दिया जाता है। निरक्षर वोटरों के कारण हमारे देश में लोकतंत्र का स्वरूप वृहतंत्र के रूप में दिखने लगा है।

इसके पूर्व 2002 में भारत सरकार बनाम एसोसियेशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट कह दिया था कि वोटर को यह मौलिक अधिकार है कि वह चुनाव लड़ रहे प्रत्याशियों के बारे में पूरी जानकारी माँगे। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि यह मतदाता का चयन होगा कि वह किसी ऐसे प्रत्याशी को चुने, जिसके खिलाफ आपराधिक मामले हों या फिर ऐसे मामले को चुने जिसकी शैक्षणिक योग्यता अच्छी हो। 2002 के सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के पश्चात् ही जनप्रतिनिधित्व कानून में धारा 33ए को शामिल किया गया था। एक अध्यादेश के मार्फत इसे सूचना के अतिरिक्त अधिकार में शामिल किया गया था। इसलिए शैक्षणिक योग्यता जानना मतदाता का मौलिक अधिकार है।

(77) प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि लोकपाल लाने के लिए सरकार के पास इच्छाशक्ति का अभाव है? आखिर क्यों?

उत्तरः हाँ, मैं भी महसूस करता हूँ कि लोकपाल लाने के लिए सरकार के पास इच्छाशक्ति का अभाव है, क्योंकि तकरीबन साढ़े चार दशक से ज्यादा समय से लटका हुआ लोकपाल बिल वर्ष 2013 में पास तो हो गया था, लेकिन अभी तक देश में लोकपाल की नियुक्ति नहीं हो पाई है। कालेधन और अर्थव्यवस्था की सफाई के लिए विमुद्रीकरण जैसा सख्त कदम उठाकर सरकार जहाँ एक ओर भ्रष्टाचार के खिलाफ निर्णायक जंग का दावा कर रही है, वहीं दूसरी ओर लोकपाल की नियुक्ति में हो रही देरी पर उच्चतम न्यायालय ने सरकार की मंशा पर ही सवाल खड़े कर दिए हैं। सच तो यह है कि ढाई साल का कार्यकाल बीत जाने के बावजूद सरकार लोकपाल के लिए पाँच सदस्यीय चयन समिति का गठन नहीं कर सकी है। केंद्र सरकार का यह कहना कि सबसे बड़े विपक्षी दल के नेता को चयनसमिति में शामिल करने के लिए उसके पास संसद में पर्याप्त संख्या नहीं है। इसके लिए सरकार अधिनियम में संशोधन करे।

दरअसल, भारतीय राजनीति में एक सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि इसमें इस्तेमाल होने वाला धन सही तरीकों से नहीं आता है। राजनीतिक दलों की आय का हिसाब-किताब किसी को पता नहीं है। वे हर साल आयकर विभाग को अपनी आमदनी दिखाते तो हैं, मगर वे टैक्स हीं देते, क्योंकि आयकर कानून की धारा-13ए के मुताबिक राजनीतिक दलों की आय पर आयकर की सौ प्रतिशत छूट है। मगर यह नहीं पता चलता कि राजनीतिक दलों की सालाना आमदनी कहाँ से आती है। सूचना का अधिकार कानून भी राजनीतिक दलों पर अभी तक लागू नहीं है, क्योंकि सारे दल ऐसा नहीं चाहते। इन सभी के पीछे कारण है कोई बढ़िया और प्रभावी लोकपाल बिल का नहीं होना। दरअसल, राजनीतिक दलों और सरकार में लोकपाल लाने की इच्छाशक्ति नहीं है। सच यह है कि उनके पास लोकपाल न लाने की इच्छाशक्ति बहुत मजबूत है।

(78)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि आखिरकार भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड के अध्यक्ष अनुराग ठाकुर और सचिव अजय शिर्के को पद से सुप्रीम कोर्ट द्वारा बर्खास्त करने का फैसला किए जाने के कदम से बीसीसीआई में पारदर्शिता आना लाजिमी है? आखिर क्यों?

उत्तरः हाँ, मुझे ऐसा लगता है कि आखिरकार भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड के अध्यक्ष अनुराग ठाकुर और सचिव अजय शिर्के को पद से सुप्रीम कोर्ट द्वारा बर्खास्त करने का फैसला किए जाने के कदम से बीसीसीआई में पारदर्शिता आना लाजिमी है, क्योंकि जब धर्म बने खेल की आड़ में गैरवाजिब काम होने लगें, अति महत्वपूर्ण व्यक्ति संस्कृति विकसित हो जाए, खेल से बड़े उसे चलाने वाले अधिकारी ही हो जाएँ और राजनीति चरम पर पहुँच जाए एक अंकुश जरूरी हो जाता है। सुप्रीम कोर्ट ने लोढ़ा समिति की सिफारिश को स्वीकार करते हुए बोर्ड के अध्यक्ष और सचिव को बर्खास्त कर यही अंकुश चलाया है।

आपको याद होगा कि भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड (बीसीसीआई) ने तकरीबन एक साल तक देश के शीर्ष अदालत के आदेशों की दुस्साहसिक तरीके से अनदेखी करने की हिमाकत की है। इन दोनों अधिकारियों पर सुप्रीम कोर्ट में गलत हलफनामा देने का भी आरोप है और अब दोनों पर कोर्ट की अवमानना करने का भी मुकदमा चलेगा। यही नहीं, बोर्ड के अध्यक्ष पद से हटाए गए अनुराग ठाकुर की अकड़ तो देखिए कि फैसले के बाद उन्होंने एक बयान में कहा- 'उच्चतम न्यायालय के जजों को

यदि लगता है कि बीसीसीआई रिटायर्ड जजों की निगरानी में बेहतर काम कर सकता है, तो मैं उन्हें शुभकामना देता हूँ। मुझे विश्वास है कि भारतीय क्रिकेट उनके मार्गदर्शन में अच्छा प्रदर्शन करेगा।' मुझे तो लगता है कि अनुराग ठाकुर के इस बयान के भीतर उनका अहम बोलता है। आखिर तभी तो उन्होंने कुछ भावुकता के साथ कहा, 'मुझे भारतीय क्रिकेट की सेवा करने का सम्मान मिला। वर्षों से भारतीय क्रिकेट ने प्रशासनिक और खेल के विकास के तौर पर अपना सर्वश्रेष्ठ समय देखा है। बीसीसीआई देश में सबसे बेहतर ढंग से संचालित होने वाला खेल संगठन है।' बोर्ड के सचिव अजय शिर्के ने भी कुछ इसी तरह की टिप्पणी देते हुए कहा कि उन्हें सर्वोच्च अदालत द्वारा बर्खास्त करने पर कोई चिंता नहीं है। इन दोनों की टिप्पणी में मुझे अदालत पर व्यंग्य कसने की बू नजर आती है।

जो भी हो, सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले से न केवल भारतीय क्रिकेट में आमूलचूल परिवर्तन की उम्मीद बनी है, बल्कि इससे क्रिकेट बोर्ड में पारदर्शिता आना लाजिमी है, क्योंकि क्रिकेट बोर्ड से अब मठाधीशों को जाना होगा जो भारतीय क्रिकेट पर कुण्डली मारकर दशकों से बैठे हैं। अगर बोर्ड के अध्यक्ष अनुराग ठाकुर और सचिव अजय शिर्के की बर्खास्तगी न होती, तो शायद खेल से खेल करने वालों के मन में कोई डर न रह जाता। माननीय सुप्रीम कोर्ट ने देश के सबसे प्रतिष्ठित खेल क्रिकेट का तो भला कर ही दिया है अब उम्मीद है कि बाकी खेलों में फैले भ्रष्टाचार, राजनीति और नौकरशाही रवैए पर भी लगाम कसी जा सकेगी। इन तौर तरीकों का विरोध करने वाले अब हिम्मत से सामने आ सकेंगे, क्योंकि उन्हें अदालत के फैसले ने भरोसा दिलाया है।

इस पूरे मामले की सुनवाई खुद भारत के प्रधान न्यायाधीश टी. एस. ठाकुर कर रहे थे जो 30 जनवरी 2017 को अवकाश ग्रहण किए। माना जा रहा है कि उन्होंने अपनी आखिरी गेंद पर बोर्ड के अध्यक्ष और सचिव को क्लीन बोल्ड(बर्खास्तगी) कर दिया।

(79)प्रश्नः क्या आप ऐसा मानते हैं कि भारतीय संविधान की धर्मनिरपेक्षता और इसकी प्रकृति को बनाए रखने के लिए सुप्रीम कोर्ट ने धर्म और जाति के नाम पर राजनीति कर रहे और धर्म की आड़ में वोट माँगनेवालों को सुप्रीम कोर्ट ने अभी हाल के अपने फैसले से एक बड़ा झटका दिया है? आखिर कैसे?

उत्तरः हाँ, यह मानता हूँ कि भारतीय संविधान की धर्मनिरपेक्षता और इसकी

प्रकृति को बनाए रखने के लिए सुप्रीम कोर्ट ने धर्म और जाति के नाम पर राजनीति कर रहे और धर्म की आड़ में वोट माँगनेवालों को एक अभी हाल के अपने फैसले से एक बड़ा झटका दिया है। सुप्रीम कोर्ट ने हिंदुत्व के मुद्दे पर दायर कई याचिकाओं पर सुनवाई करते हुए कहा कि धर्म, जाति और संप्रदाय के नाम पर नेता वोट नहीं माँग सकते, यह गैर कानूनी है। चुनाव एक धर्मनिरपेक्ष प्रक्रिया है और इसका पालन किया जाना चाहिए, अदालत ने यह भी कहा कि इंसान और भगवान के बीच रिश्ता अपनी निजी पसंद का मसला है। सरकार को इससे खुद को अलग रखना चाहिए।

हमारा संविधान धर्मनिरपेक्ष है और इसकी प्रकृति को बनाए रखना चाहिए। उम्मीदवार या एजेंट धर्म का इस्तेमाल नहीं कर सकते हैं। सुप्रीम कोर्ट ने साफ कहा कि चुनाव एक धर्मनिरपेक्ष अभ्यास है और यह प्रक्रिया हमेशा जारी रहनी चाहिए। यह अच्छा हुआ कि सुप्रीम कोर्ट की संविधान पीठ ने यह स्पष्ट कर दिया कि जाति, मजहब, समुदाय, भाषा के नाम पर वोट माँगने को भ्रष्ट चुनावी तौर-तरीका माना जाएगा।

धर्म, जाति, संप्रदाय के नाम पर वोट माँगना एक तरह से एक वर्ग को दूसरे वर्ग के खिलाफ खड़ा करना है। ऐसा कृत्य समाज को बाँटने वाली राजनीति के अलावा और कुछ नहीं। हालांकि जनप्रतिनिधित्व कानून के तहत कोई उम्मीदवार जाति, मजहब, समुदाय या भाषा के नाम पर किसी को मत देने के लिए नहीं कह सकता, लेकिन सुप्रीम कोर्ट को नया फैसला इसलिए देना पड़ा, क्योंकि इसे लेकर भ्रम था कि किसके मजहब, जाति, समुदाय, भाषा आदि का उल्लेख निषेध माना जाए, उम्मीदवार के या फिर उसके विरोधी के अथवा मतदाताओं के? अब यह स्पष्ट हो गया कि प्रत्याशी और उसके विरोधी उम्मीदवार के अलावा मतदाता के भी मजहब, जाति, राजनीतिक दलों के लिए यह आवश्यक ही नहीं, बल्कि अनिवार्य है कि वे इस फैसले की मूल भावना को आत्मसात करें। ऐसा इसलिए क्योंकि कई बार इस तरह के फैसलों का स्वागत तो बढ़-चढ़कर करते हैं, लेकिन उसे पूरी तौर पर स्वीकार करने की बजाय उससे बच निकलने के तौर-तरीके खोज लेते हैं। राजनीतिक दल मतदाताओं को समूह के तौर पर कम वर्ग के तौर पर अधिक देखते हैं। इसी क्रम में कभी वे जाति का सहारा लेते हैं, तो कभी मजहब और कभी भाषा का। अच्छा होता कि सुप्रीम कोर्ट की संविधान पीठ अपने फैसले को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए निर्वाचन आयोग को और अधिक अधिकार भी प्रदान करती। पीठ ने इसके साथ यह भी

स्पष्ट कर दिया है कि वह हिंदुत्व के मामले में दिए गए अपने 1995 के फैसले को दोबारा इक्जामिन नहीं करने जा रही है। 1995 के दिसंबर में न्यायाधीश जे. एस. वर्मा की पीठ ने फैसला दिया था कि हिंदुत्व शब्द भारतीय लोगों के जीवन की शैली की ओर इंगित करती है और इसे सिर्फ धर्म तक सीमित नहीं किया जा सकता।

(80)प्रश्नः बिहार के संस्कृत विद्यालयों के शिक्षकों और राज्य सरकार की याचिकाओं को खारिज करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने जो कठोर टिप्पणी की है और केंद्र एवं राज्य सरकारों द्वारा एक ही अध्यादेश को बार-बार जारी करने की बढ़ती प्रवृत्ति पर जो गहरी नाराजगी जताई है उसे आप किस रूप में देखते हैं और क्यों?

उत्तरः बिहार के संस्कृत विद्यालयों के शिक्षकों और राज्य सरकार की याचिकाओं को खारिज करते हुए सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायधीश टी. एस. ठाकुर की अध्यक्षतावाली सात न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने अपने फैसले में कहा है कि संस्कृत विद्यालयों का सरकारीकरण नहीं होगा और केवल अध्यादेश के समय सीमा तक ही वेतन वेतनमान मिलेगा यानी स्कूल के शिक्षकों को 1989 से 1992 तक ही वेतनमान मिलेगा। सुप्रीम कोर्ट ने अपने फैसले में ये भी कहा कि बार-बार अध्यादेश लाना असंवैधानिक है और किसी मामले को लेकर राज्य सरकार द्वारा बार-बार अध्यादेश जारी करना संविधान के साथ धोखा करने के समान है।

दरअसल, बिहार में संस्कृत विद्यालयों का अध्यादेश के जरिए सरकारी दर्जा दिया गया था, लेकिन बिहार सरकार ने अध्यादेश खत्म होने के बाद इन विद्यालयों को सरकारी मानने और इनके शिक्षकों को सरकारी वेतनमान देन से मना कर दिया था। मामला उच्च न्यायालय होते हुए सर्वोच्च न्यायालय पहुँचा था। सर्वोच्च न्यायालय में संस्कृत विद्यालयों के शिक्षकों और बिहार सरकार की याचिकाएँ 22 सालों से लंबित थीं। सच तो यह मुद्दा अध्यादेश के समाप्त होने के बाद उस दौरान हुए काम की वैधता की व्याख्या में फँसा था।

मैंने बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड का वर्ष 15 सितंबर, 2008 से 14 सितंबर, 2011 तक अध्यक्ष का दायित्व संभाल रखा है इसलिए आपको विस्तार से बता दूँ कि मामले की शुरुआत 1989 में हुई जब बिहार सरकार ने चुनाव से पहले अध्यादेश जारी कर राज्य के 429 संस्कृत विद्यालयों को संस्कृत शिक्षा बोर्ड से अनुमोदित होने के बाद बिहार सरकार उसे सरकारी

बना दिया। हालांकि एक शर्त थी कि हर स्कूल के सिर्फ सात शिक्षकों को ही सरकारी वेतनमान दिया जाएगा। अध्यादेश खत्म होने पर 1991 और 1992 में इसे पुनः लागू किया गया। 1992 में एक नई शर्त यह जोड़ी गयी कि संस्कृत स्कूलों की जाँच होगी और जो स्कूल ढाँचागत संसाधान व अन्य मानकों पर खरे होंगे उन्हें ही सरकारी बनाया जाएगा, साथ ही शिक्षकों की भी जाँच होगी। यह अध्यादेश मार्च, 1992 में खत्म हो गया। सरकार ने न तो इसे दोबारा जारी किया और न ही यह इस बीच विधानसभा से पास हो कानून की शक्ल में आया। अध्यादेश खत्म होने के बाद जब सरकार ने संस्कृत स्कूलों और उसके शिक्षकों को सरकारी मानने से इनकार कर दिया, तो शिक्षकों ने पटना उच्च न्यायालय में याचिका दायर की। शिक्षकों ने सरकारी वेतनमान माँगते हुए कहा कि जब एक बार अध्यादेश से स्कूलों को सरकारी बना दिया गया तो अध्यादेश समाप्त होने के बाद भी उनकी स्थिति नहीं बदलेगी। यहीं पर भ्रम की स्थिति पैदा हो गयी, क्योंकि विधायिका ही यह तय करने में सक्षम है कि अध्यादेश जरूरी है या नहीं। उसे संशोधन के साथ पारित करने या न करने का अधिकार सिर्फ संसद या विधान सभा का है। विधायिका से बच कर अध्यादेश को बार-बार लागू करना अध्यादेश को अवैध बना देता है। सुप्रीम कोर्ट ने बिहार के संस्कृत स्कूलों के मामले में यही फैसला दिया।

बिहार राज्य के संस्कृत स्कूलों द्वारा दाखिल याचिका पर बिहार सरकार की भी दलील थी कि अध्यादेश खत्म होने के बाद स्कूलों का सरकारी दर्जा भी समाप्त हो गया है। पटना उच्च न्यायालय ने अपने फैसले में कहा कि स्कूलों के अधिग्रहण का सरकारीकरण भी खत्म हो गया और स्कूलों की पूर्व स्थिति बहाल हो जाएगी। चूँकि कोई कानून नहीं रहा इसलिए अब उनकी स्थिति सरकारी नहीं रही, क्योंकि सरकार द्वारा जारी अध्यादेश को विधानसभा से पारित नहीं कराए जाने की वजह से उस अध्यादेश की अवधि समाप्त हो गई और वह कानून की शक्ल में नहीं आ सका।

हालांकि पटना उच्च न्यायालय ने अपने फैसले में यह कहकर संस्कृत शिक्षकों को राहत दी कि 1989 से लेकर 1992 के बीच जबतक अध्यादेश लागू रहा, तबतक ये स्कूल सरकारी थे इसलिए इन स्कूलों के सात-सात शिक्षकों को उस दौरान का सरकारी वेतनमान दिया जाए। इसके बाद में सहायता प्राप्त निजी स्कूल हो गए हैं इसलिए इसके बाद इनके शिक्षकों का पूराना वेतनमान मिलेगा। पटना उच्च न्यायालय के इस आदेश

को शिक्षकों और बिहार सरकार दोनों ने सुप्रीम कोर्ट में जब चुनौती दी तो सुप्रीम कोर्ट में कानून का मुख्य मुद्दा यह फँसा कि क्या जो स्कूल अध्यादेश के जरिए सरकारी बनाए गए थे उनका सरकारी दर्जा समाप्त करने के लिए अलग से किसी अधिसूचना की जरूरत होगी कि नहीं। सरकार का कहना है कि इसकी जरूरत नहीं है, क्योंकि स्कूलों के अधिग्रहण के लिए अलग से कोई अधिसूचना जारी नहीं की गई थी, बल्कि अध्यादेश में ही सीधे 429 संस्कृत स्कूलों को अधिग्रहित करने की बात थी ऐसे में अध्यादेश समाप्त होने के बाद वो स्थिति भी समाप्त हो गयी थी।

सुप्रीम कोर्ट ने बिहार के संस्कृत स्कूलों के शिक्षकों और राज्य सरकार की याचिकाएँ खारिज करते हुए टिप्पणी भी की। इसी प्रकार केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा एक ही अध्यादेश को बार-बार जारी करने की बढ़ती प्रवृत्ति पर भी देश के इस शीर्ष अदालत ने गहरी नाराजगी जताई है। विगत 2 जनवरी, 2017 को उसने अपने फैसले में इस बारे में तल्ख टिप्पणी करते हुए कहा कि किसी अध्यादेश को दोबारा जारी करना संविधान से धोखा है। इतना ही नहीं, उसने इसको लेकर राष्ट्रपति या राज्यपाल के संतुष्ट होने पर भी सवालिया निशान लगाया। सर्वोच्च न्यायालय का कहना था कि अध्यादेश लागू करने को लेकर राष्ट्रपति या राज्यपाल की संतुष्टि न्यायिक समीक्षा के बाहर नहीं है।

मुख्य न्यायाधीश टी. एस. ठाकुर की अध्यक्षतावाली पीठ के अनुसार अध्यादेश में भी वहीं शक्तियाँ निहित हैं, जो विधायिका द्वारा पारित किसी कानून में होती हैं। अध्यादेश को संसद या विधानसभा में पेश किया जाना बाध्यकारी है। संविधान पीठ की ओर से 6-1 बहुमतवाले इस फैसले को न्यायमूर्ति डी. वाई. चंद्रचूड़ ने सुनाया जिसमें कहा गया कि अध्यादेश को कानून बनाने के लिए विधेयक के रूप में संसद या विधान सभा में पेश नहीं किया जाना संविधान का घोर उल्लंघन है। बहुमतवाले इस फैसले में सुप्रीम कोर्ट ने साफ-साफ कहा कि किसी अध्यादेश को फिर जारी करना संविधान से धोखा है। इसी क्रम में संविधानपीठ ने यह भी स्पष्ट किया कि अध्यादेश समाप्त होने या दोबारा जारी होने पर इसके लाभार्थियों को कोई कानूनी अधिकार नहीं दिया जा सकता है। संसद में पेश करने पर सत्र शुरू होने के छह सप्ताह बाद अध्यादेश स्वत: समाप्त माना जाएगा।

(81)प्रश्नः यदि किसी केयर टेकर या नौकर को संपत्ति में बिना कुछ लिए रहने की अनुमति दी गयी, चाहे दशकों की अवधि ही क्यों नहीं हो, क्या उसका संपत्ति में कोई अधिकार हो सकता है?

उत्तरः नहीं, यदि किसी केयरटेकर या नौकर को सपंत्ति में बिना कुछ लिए रहने की अनुमति दी गयी, चाहे दशकों की अवधि ही क्यों नहीं हो, उसका संपत्ति में कोई अधिकार नहीं हो सकता। सर्वोच्च न्यायालय ने इस आशय का एक फैसला अभी हाल ही में मुंबई के एक मामले में दिया, जिसमें मालिकों ने एक परिवार को संपत्ति बिना कुछ पैसा लिए आपसी विश्वास के कारण रहने के लिए दे दी थी, किंतु जब मालिकों ने सोलह वर्ष के बाद संपत्ति की माँग की, तो नौकर ने खाली करने से इनकार कर दिया। न्यायाधीश दीपक मिश्रा और न्यायाधीश पी. सी. घोष की दो-सदस्यीय पीठ ने नौकर को बेदखल करने का फैसला सुनाते हुए कहा है कि यदि किसी को संपत्ति में बिना कुछ लिए रहने की अनुमति दी गयी, चाहे दशकों की अवधि ही क्यों न हो, उसका संपत्ति में कोई अधिकार नहीं हो सकता।

केयरटेकर, नौकर या चौकीदार लंबे समय तक रहने के बावजूद संपत्ति में अधिकार नहीं जता सकते और माँगने पर संपत्ति मालिक को सौंपनी होगी। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने फैसले में स्पष्ट कर दिया है कि संपत्ति की देखभाल करने वाले केयरटेकर या नौकर का संपत्ति में कोई अधिकार सृजित नहीं हो सकता चाहे वह उसमें लंबे समय से क्यों न रह रहे हो। इस फैसले के बाद केयरटेकरों और नौकरों को उन संपत्तियों से बेदखल होना होगा जिस पर वे दशकों से काबिज रहे हैं और अपना हक जताते रहे हैं। संपत्ति की देखभाल करने वाला मालिक की अनुमति से ही उसपर कब्जा रखता है। इसमें उसका कोई अधिकार नहीं बनता। जिन लोगों की संपत्ति उनकी उदारता के कारण केयरटेकरों ने हड़प ली हैं उनको यह फैसला सुकून देगा।

(82)प्रश्नः क्या सार्वजनिक धन का दुरुपयोग करने वाले गैर-सरकारी स्वयंसेवी संगठनों के खिलाफ कड़ी कार्रवाई नहीं की जानी चाहिए? सर्वोच्च न्यायालय का इस संदर्भ में क्या फैसला है?

उत्तरः हाँ, सार्वजनिक धन का दुरुपयोग करने वाले गैर-सरकारी स्वयंसेवी संगठनों के खिलाफ कड़ी कार्रवाई की जानी चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय ने भी हाल के अपने फैसले में नाराजगी जताई है कि आखिर गैर-सरकारी संगठनों एवं स्वयंसेवी समितियों के कोष और उनके उपयोग की निगरानी के

लिए कोई नियामक व्यवस्था क्यों नहीं है? किस्म-किस्म के गैर-सरकारी संगठन और समितियाँ कहाँ से कितना धन हासिल करती हैं और उसे किस तरह खर्च करती हैं, यह सब सुनिश्चित करने वाली व्यवस्था का निर्माण तो बहुत पहले कर दिया जाना चाहिए था।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि इस देश के करीब 30 लाख गैर-सरकारी संगठनों में से मुश्किल से मात्र तीन लाख संगठन ही अपने आय-व्यय का विवरण देते हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने यह पाया कि ऐसे संगठनों के खातों का कोई ऑडिट नहीं होता। यह तो एक तरह की अँधेरगर्दी ही है। इस तरह गैर-सरकारी संगठनों के तौर पर सक्रिय तमाम संगठन सामान्य नियम-कानूनों का भी पालन नहीं कर पा रहे हैं। हाल में ही केंद्रीय गृह मंत्रालय ने करीब 20 हजार गैर-सरकारी संगठनों के विदेश से पैसा लेने के लाईसेंस को इसलिए रद्द कर दिया था, क्योंकि वे विदेशी चंदा नियमन-कानून के विभिन्न प्रावधानों का उल्लंघन कर रहे थे।

नि:संदेह सवाल केवल गैर-सरकारी संगठनों का आय और व्यय का ही नहीं, इसका भी है कि वे समाज के नाम पर कुछ और तो नहीं करते? कई गैर-सरकारी संगठन ऐसे भी हैं जिन्होंने अनुचित तरीके से पैसा जुटाया या फिर अनुचित तरीके से ही उस पैसे को खर्च किया। पिछले कुछ समय में गैर-सरकारी संगठनों और समितियों की संख्या जिस तेजी से बढ़ी है उससे यह धारणा गहराई है कि समाज सेवा ने एक धंधे का रूप ले लिया है। कुछ गैर-सरकारी संगठनों के बारे में यह धारणा भी है कि वे परोक्ष रूप से धर्मांतरण को बढ़ावा देने का काम करते हैं और कुछ गैर-सरकारी संगठन तो पर्यावरण और मानवाधिकारों की रक्षा के बहाने विकास विरोध एजेंडे को आगे बढ़ते दिखे हैं। आमतौर पर संदिग्ध किस्म के गैर-सरकारी संगठनों के खिलाफ कोई ठोस कार्रवाई इसलिए नहीं हो पाती, क्योंकि उनके संदर्भ में स्पष्ट नियम-कानूनों का अभाव है। रही-सही कसर निगरानी के अभाव ने पूरी कर दी है।

इसी के मद्देनजर प्रधान न्यायाधीश जगदीश सिंह खेहर की अध्यक्षतावाली तीन सदस्यीय पीठ ने याचिकाकर्ताओं में से एक मनोहर लाल शर्मा और एटर्नी जनरल मुकुल रोहतगी की विस्तृत दलीलें सुनने के बाद केंद्र सरकार को देशभर के गैर-सरकारी संगठनों का ऑडिट कराने का निर्देश दिया।

(83)प्रश्नः क्या आपको ऐसा नहीं लगता है कि काँच की कोटिंगवाले माँझे से बड़े पैमाने पर दुर्घटनाओं के मद्देनजर उच्चतम न्यायालय के हाल के फैसले से लोगों को राहत मिली है? आखिर कैसे?

उत्तरः हाँ, मुझे ऐसा लगता है कि काँच की कोटिंगवाले माँझे से बड़े पैमाने पर होनेवाली दुर्घटनाओं के मद्देनजर उच्चतम न्यायालय के हाल के फैसले से लोगों को राहत मिली है, क्योंकि पतंग उड़ाने के शौकीन फिलहाल काँच की परतवाले माँझे का इस्तेमाल नहीं कर सकेंगे। उच्चतम न्यायालय ने नायलॉन के माँझे और काँच की कोटिंगवाले माँझे पर लगी रोक हटाने से मना कर दिया है। दिसंबर, 2016 में नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल ने ये रोक लगायी थी।

दरअसल, गुजरात के माँझा कारोबारी राज्य में मकर संक्रांति पर पतंग उड़ाने की परंपरा का हवाला देते हुए उच्चतम न्यायालय पहुँचे थे। लेकिन न्यायालय ने उन्हें वापस नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल जाने को कह दिया। दिसंबर, 2016 में नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल ने पिपुल फॉर एथिकल ट्रीटमेंट ऑफ एनिमल और दूसरे याचिकाकर्ताओं की याचिकाओं पर सुनवाई के बाद इस तरह के माँझे पर अंतरिक रोक लगा दी थी। एनजीटी ने कहा था कि ये रोक 1 फरवरी, 2017 तक रहेगी। इसके बाद मसले पर दोबारा सुनवाई होगी। इसके बारे में केंद्र को नोटिस जारी कर जवाब माँगा गया था। एनजीटी में दायर याचिकाओं में काँच की कोटिंगवाले माँझे से बड़े पैमाने पर होनेवाली दुर्घटनाओं का हवाला दिया गया था। नायलॉन से बने चाइनीज माँझे से पक्षियों की मौत का भी मसला उठाया गया था। ऐसी स्थिति में उच्चतम न्यायालय के फैसले से पतंग उड़ाने वाले के साथ-साथ पक्षियों को भी राहत मिली है।

(84)प्रश्नः ब्लास्ट कर निदोर्षों की हत्याएँ करने वाले आतंकियों को पारिवारिक जरूरतों के पैरोल या अंतरिम जमानत देना क्या आपकी समझ से उचित होगा? आखिर क्यों?

उत्तरः नहीं मेरी समझ से ब्लास्ट कर निर्दोषों की हत्याएँ करने वाले आतंकियों को पारिवारिक जरूरतों के लिए पैरोल या अंतरिम जमानत देना कतई उचित नहीं है, क्योंकि इससे आतंकियों का मनोबल बढ़ेगा। इसलिए आतंकियों के प्रति नरमी बरतना कतई ठीक नहीं होगा। दिल्ली के लाजपत नगर ब्लास्ट मामले में उम्रकैद काट रहे जम्मू एंड कश्मीर इस्लामिक फ्रंट के आतंकी मोहम्मद नौशाद ने जब अपनी बेटी की शादी में शामिल होने के

लिए एक माह की अंतरिम जमानत माँगी थी तब सुप्रीम कोर्ट के प्रधान न्यायाधीश जे. एस. खेहर की पीठ ने भी उसकी याचिका को खारिज करते हुए यह टिप्पणी की थी कि पारिवारिक जरूरतों को लिए बेहतर यही होगा कि वह पारिवारिक रिश्ते भूल जाएँ। पारिवारिक जरूरतों के लिए इन्हें पैरोल या अंतरिम जमानत नहीं दे सकते।

नौशाद ने 21 मई, 1996 को चोरी की कार में रखा विस्फोटक उड़ाया था और उसे 14 जून, 1996 को नई दिल्ली रेलवे स्टेशन पर विस्फोटकों के साथ पकड़ा गया था।

(85)प्रश्न: क्या आप भी ऐसा महसूस करते हैं कि जिस मसले पर राज्यों को तत्परता दिखानी चाहिए उस पर न्यायपालिका को चिंता करनी पड़ रही है? कैसे?

उत्तर: हाँ, मैं भी यह महसूस करता हूँ कि जिस मसले पर राज्यों को तत्परता दिखानी चाहिए उस पर न्यायपालिका को चिंता करनी पड़ रही है। खासतौर पर उच्चतम न्यायालय की ओर से सभी राज्य सरकारों से पुलिस कर्मियों के रिक्त पदों का विवरण माँगने से एक बार फिर यह स्पष्ट हो गया। आखिर राज्य सरकारों को इसकी परवाह करने में क्या कठिनाई है कि पुलिस के रिक्त पद समय रहते भर जाएँ?

इससे बड़ी विडंबना और क्या हो सकती है कि कानून एवं व्यवस्था के समक्ष नित नई चुनौतियाँ बढ़ने के बावजूद राज्य सरकारें पर्याप्त संख्या में पुलिस कर्मियों की भर्ती के प्रति सचेत नहीं। पुलिस की समस्याओं का समाधान करने के लिए पुलिस आयोग बनाने की माँग करने वाली याचिका के अनुसार देशभर में पुलिस के करीब पाँच लाख पद खाली पड़े हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि राज्यों को न तो कानून एवं व्यवस्था की चिंता है और न ही काम के बोझ से दबे पुलिस कर्मियों की। जब पुलिस की जिम्मेदारी लगातार बढ़ती जा रही है तब इसका कोई औचित्य नहीं कि पुलिस कर्मियों के लाखों पद रिक्त बने रहें। संख्या बल के हिसाब से पुलिस को सक्षम बनाने के मामले में राज्य सरकारें तब सुस्ती का परिचय दे रही हैं जब देश में प्रति एक-लाख आबादी पर मुश्किल से एक सौ दस पुलिसकर्मी ही हैं। यह अनुपात आदर्श स्थिति से कोसों दूर है। आखिर तभी तो इसकी चिंता न्यायपालिका को करना पड़ रहा है।

हमारे राजनीतिक दल और सरकार न तो चुनाव सुधार के लिए तैयार हैं और न ही राजनीतिक सुधार के लिए इसलिए गण की अपेक्षाओं

के आगे हमारा तंत्र सुस्त और नाकाम दिखने लगा है। यही कारण है कि न्यायपालिका को इसके लिए चिंता करनी पड़ रही है।

(86)प्रश्नः क्या गिरजाघर अदालत से तलाक को कानूनी करार देने का फैसला संवैधानिक प्रावधान की जगह ले सकता है?

उत्तरः नहीं, गिरजाघर-अदालत से तलाक को कानूनी करार किए जाने का फैसला संवैधानिक प्रावधान की जगह नहीं ले सकता है। विगत 19 जनवरी, 2017 को देश की शीर्ष अदालत उच्चतम न्यायालय ने भी अपने एक ऐतिहासिक फैसले में चर्च कोर्ट के जरिए मिला कानूनन वैध को इस सिलसिले में दायर याचिका को खारिज कर दी। कर्नाटक कैथोलिक एसोसियेशन के पूर्व अध्यक्ष कलोरेंस पेस की तरफ से दायर की गई इस याचिका में गिरजाघर-अदालत से मंजूर तलाक को कानूनी मान्यता देने की माँग की गई थी। सुप्रीम कोर्ट ने इस याचिका को खारिज करते हुए कहा कि चर्च-कोर्ट का फैसला संवैधानिक प्रावधान की जगह नहीं ले सकता है। शीर्ष अदालत का यह फैसला संवैधानिक मूल्यों के अनुरूप तो है ही, साथ ही इसे ईसाई महिलाओं के भी पक्ष में कहा जा सकता है। ईसाई विवाह अधिनियम और ईसाई तलाक अधिनियम अँग्रेजों द्वारा बनाए गए हैं जो एक सदी से भी ज्यादा पुराने हैं। इतने लंबे अरसे में समाज काफी बदल चुका है। फिर चर्च कोर्ट की भूमिका को संसद से बनाए गए कानूनों की जगह लेने की इजाजत कैसे दी जा सकती है? सुप्रीम कोर्ट का फैसला तलाक लेने के इच्छुक ईसाई जोड़ों के लिए भी राहत का संदेश है।

(87)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि सीबीआई के पूर्व निदेशक रंजीत सिन्हा के खिलाफ जाँच का आदेश देकर उच्चतम न्यायालय ने एक तरह से यही रेखांकित किया कि उन पर कोयला घोटाले की जाँच प्रभावित करने के आरोपों में कुछ न कुछ सच्चाई है? कैसे?

उत्तरः हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि सीबीआई के पूर्व निदेशक रंजीत सिन्हा के खिलाफ जाँच का आदेश देकर उच्चतम न्यायालय ने एक तरह से यही रेखांकित किंया कि उनपर कोयला घोटाले की जाँच प्रभावित करने के आरोपों में कुछ न कुछ सच्चाई अवश्य है, क्योंकि इससे बड़ी विडंबना और क्या हो सकती कि जिस संस्था यानी सीबीआई पर भ्रष्टाचार के एक बड़े मामले की जाँच सही तरह की जिम्मेदारी थी उसके ही प्रमुख के खिलाफ उस मामले की जाँच में लीपापोती करने का न केवल आरोप लगा, बल्कि वह प्रथम दृष्टया सही भी माना गया। इस आरोप को बल तब मिला जब

रंजीत सिन्हा के आवास की आगंतुक पंजी में उन लोगों के नाम दर्ज मिले जो कोयला घोटाले में शामिल थे। इस पंजी में कुछ ऐसे भी नाम थे जो 2-जी स्पेक्ट्रम घोटाले के आरोपी थे। इससे समझा जा सकता है कि आखिर घपले-घोटाले के आरोपियों को सी.बी.आई. प्रमुख जो खुद जाँच पदाधिकारी थे उनके निवास पर उनसे मिलना क्यों जरूरी था? आखिर घपले-घोटालों के आरोपियों को जाँच पदाधिकारी सीबीआई प्रमुख के घर जाकर अपना पक्ष रखने की सुविधा क्यों मिलनी चाहिए? यह एक नैतिक सवाल ही नहीं सीबीआई के पूर्व निदेशक की कार्य प्रणाली पर प्रश्न चिह्न भी है।

पता नहीं अपने पूर्व प्रमुख की जाँच करने जा रही सीबीआई इस सवाल का समाधान कर पाएगी या नहीं, लेकिन अच्छा हो कि इस स्तर पर वे इस जाँच को प्रभावित करना चाह रहे थे या फिर उनपर किसी का दबाव था? ऐसा इसलिए जरूरी है, क्योंकि यह किसी से छिपा नहीं कि कोयला घोटाले की प्रारंभिक जाँच रपट को बदलने की कोशिश की गई थी।

नि:संदेह चूंकि खुद उच्चतम न्यायालय के समक्ष यह उजागर हुआ था कि कोयला घोटाले की प्रारंभिक जाँच रपट में उस वक्त सत्ता में बैठे लोगों की ओर से हेरफेर किया गया था इसलिए यह तो पता चलना ही चाहिए कि गफलत केवल रंजीत सिन्हा की ओर से की गई या फिर उसमें तत्कालीन शासन की भी भागीदारी थी? पता नहीं इस जाँच का क्या नतीजा निकलता है क्योंकि अभी तक का अनुभव तो यही बताता है कि बड़े नेताओं ओर नौकरशाहों से जुड़े घपले-घोटाले के मामलों की जाँच में यह जाँच एजेंसी यानी सीबीआई मुश्किल से ही दूध का दूध और पानी का पानी कर पाती है। उसके पास ऐसे कई मामले अभी भी हैं। कई बार ऐसे मामले जरूरत से ज्यादा लंबे खिंचते हैं जिससे यह संदेश भी जाता है कि रसूखवाले भ्रष्ट नेता या नौकरशाहों को उनके किए की सजा देना मुश्किल है। मगर बहरहाल उच्चतम न्यायालय द्वारा इसकी जाँच करने का आदेश दिए जाने से यह तो साफ हो गया है कि जाँच प्रभावित करने के आरोपों में कुछ न कुछ सच्चाई है।

(88)प्रश्न: विद्यालय शुल्क को लेकर दिल्ली के निजी विद्यालयों पर उच्चतम न्यायालय के हाल में दिए गए फैसले को आप किस रूप में आँकते हैं ?

उत्तर: विद्यालय शुल्क को लेकर दिल्ली के निजी विद्यालयों पर उच्चतम न्यायालय के हाल में दिए गए फैसले वाकई ऐतिहासिक इसलिए है, क्योंकि

दिल्ली के करीब 450 ऐसे विद्यालय अब मनमाने तरीके से विद्यालय शुल्क नहीं बढ़ा सकेंगे। दरअसल, निजी विद्यालयों का एकसूत्री फार्मूला हर साल शुल्क बढ़ाना रहता है। शिक्षा की गुणवत्ता या अभिभावकों की मजबूरी या परेशानी से इनका दूर-दूर तक कोई सरोकार नहीं दिखता। दिल्ली सरकार पिछले कई सालों से इस मसले पर मगजमारी कर रही थी। इसलिए सरकार के साथ-साथ ही अभिभावकों के लिए अदालत का यह फैसला सुकून भरा है। इस फैसले **से न केवल राजधानी** दिल्ली, बल्कि देश के बाकी राज्यों के निजी विद्यालयों, जो सस्ती सरकारी जमीनों पर बने हैं के लिए मॉडल बनेगा।

सच तो यह है कि दिल्ली-एनसीआर में निजी विद्यालयों के रंग-ढंग की नकल देश के करीब सभी निजी विद्यालयों ने की है। वे फीस बढ़ाने को अपना हक समझते हैं जबकि गुणवत्ता पर कोई भी बात करना नहीं चाहता। यहाँ तक कि दिल्ली के कई विद्यालयों ने इसे विशुद्ध व्यापार के चश्में से ही देखा है। हाँ, इतना जरूर है कि कई निजी विद्यालयों की ईमानदारी और इस पेशे की सराहना भी की जानी चाहिए, मगर ज्यादातर निजी विद्यालयों की कार्यशैली निराशाजनक है। इस दृष्टि से अदालत का फैसला स्वागतयोग्य है।

(89)प्रश्नः क्या आपको ऐसा नहीं लगता है कि कमोवेश, कई मामलों में सलमान खान जिस तरह लगातार बरी होते गए, उसने न्याय के पलड़े के झुकाव पर सवाल खड़े किए?

उत्तरः हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि कमोवेश, कई मामलों में सलमान खान जिस तरह लगातार बरी होते गए, उसने न्याय के पलड़े के झुकाव पर भी सवाल खड़े किए। इससे मैं मानता हूँ कि भारतीय परंपरा में 'समरथ को नहीं दोष गोसाईं' की उक्ति चरितार्थ हुई है। ईरानी कहावत भी है कि कहीं न कहीं न्याय में ताकतवर की भी बात होती है। एक तो आर्म्स एक्ट के मामले में कई दशकों के बाद फैसला आया। फिर सलमान का बरी हो जाना बताता है कि अभियोजन पक्ष की दक्षता संदेह से परे नहीं है जो अभियुक्त को संदेह का लाभ देती है। अब चाहे हिरण व चिंकारा मारने का मामला हो या फिर मुंबई में हिट एंड रन का मामला, सलमान पर लगे आरोप कमजोर केस होने की वजह से अदालत में टिक नहीं पाए। अब यही देखिए न वर्ष 1998 में जोधपुर में एक फिल्म की शूटिंग के दौरान सलमान पर हिरण के शिकार के आरोप लगे थे जिसमें अवैध हथियार रखने का आरोप भी था, पर

विडंबना यह कि जोधपुर की अदालत को अवैध हथियार रखने के मामले में फैसला देने में 18 साल लगे। इस बीच एक गवाह की मृत्यु हो गई और दूसरा पागल हो गया और सलमान खान बरी हो गए । इसे देखते हुए व्यवहार में भी न्याय होता नजर आए। पुलिस व न्यायिक प्रशासन को इन विरोधाभासों पर गंभीरता के साथ मंथन करना होगा, ताकि न्याय की शुचिता कायम रहे।

(90)प्रश्नः पढ़ी-लिखी लड़की, जो शादी से पहले लड़के के साथ संबंध बनाती है क्या उसे अपने फैसले की जिम्मेदारी नहीं लेनी चाहिए? इस संदर्भ में अदालत का फैसला क्या है?

उत्तरः हाँ, पढ़ी-लिखी लड़की, जो शादी के पहले लड़के के साथ संबंध बनाती है उसे अपने फैसले की जिम्मेदारी अवश्य लेनी चाहिए। 21 साल के एक युवक को अग्रिम जमानत देते हुए बॉम्बे उच्च न्यायालय की न्यायाधीश मृदुला भटकर ने हाल ही अपने फैसले में कहा है कि पढ़ी-लिखी लड़की जो शादी से पहले लड़के के साथ संबंध बनाती है, उसे अपने फैसले की जिम्मेदारी लेनी होगी। इस युवक पर उसकी प्रेमिका ने ब्रेकअप के बाद बलात्कार का आरोप लगाया था। न्यायमूर्ति मृदुला भटकर ने कहा कि अगर कोई लड़की को धोखा देकर सहमति ले, तो उसे प्रलोभन का एक हिस्सा माना जाता है, मगर प्रथम दृश्टया में ये मानने के लिए कुछ सबूत होने चाहिए कि लड़की को इस हद तक झांसा दिया गया कि वह शारीरिक संबंध बनाने के लिए तैयार हो गई। इस तरह के मामले में शादी के वादे को प्रलोभन नहीं माना जा सकता। हालांकि अदालत ने कहा कि लंबे समय से नैतिकता के आधार पर शादी के समय तक वर्जिन रहने की जिम्मेदारी लड़की की है।

हालांकि समाज कई पहलुओं पर लिबरल होने की बात करता है, लेकिन जैसे ही शादी से पहले सेक्स की बात आती है, तो समाज पर नैतिकता हावी होने लगती है। ऐसे हालात में जब एक लड़की एक लड़के से प्यार करती है, तो वह भूल जाती है कि सेक्स करने में उसकी सहमति भी शामिल थी, लेकिन बाद में अपने फैसले की जिम्मेदारी लेने से बचती है।

(91)प्रश्नः क्या आपको ऐसा नहीं लगता है कि हाल के वर्षों में अदालतों द्वारा दिए जा रहे फैसले लोगों में उम्मीद जता रहे हैं? आखिर कैसे?

उत्तरः हाँ, मुझे ऐसा लगता है कि हाल के वर्षों में विभिन्न अदालतों द्वारा

दिए फैसले देशवासियों में उम्मीद जता रहे हैं। उदाहरण के रूप में यदि सहारा इंडिया और उसके मुखिया पर निवेशकों के हजारों करोड़ रुपए बकाया मामले को लें, तो सहारा के प्रति सर्वोच्च न्यायालय का सख्त रूख स्पष्ट उम्मीद जगाता है कि कानून के घर देर है, अँधेर नहीं। अपने संपर्क और साधनों के बल पर नियम कानून को अक्सर ठेंगा दिखाते रहे सहारा इंडिया और उसके प्रमुख सुब्रत रॉय को संभवत: पहली बार न्यायपालिका से सख्त सबक मिल रहा है। हालांकि अब भी वे तर्कों-कुतर्कों के जरिए कानूनी छिद्रों की तलाश कवायद से बाज नहीं आते। मगर सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट कर दिया कि अगर तय समय सीमा में धनराशि जमा नहीं करायी गयी तो सहारा की संपत्तियाँ जब्त कर रिसीवर नियुक्त कर दिया जाएगा और फिर संपत्तियाँ नीलाम कर पैसा जुटाया जाएगा।

स्वाभाविक है कि सुब्रत रॉय और उनके अधिवक्ता सर्वोच्च न्यायालय की सख्ती से खुश नहीं होंगे, लेकिन इतना तो तय है कि जनसाधारण में यह उम्मीद अवश्य मजबूत हुई है कि संपर्क और संसाधनों के बल पर नियम-कानून को ठेंगा दिखाने वाले भी अंतत: बच नहीं पाएँगे।

सच तो यह है कि सहारा इंडिया और उसके सर्वेसर्वा सुब्रत रॉय का मामला हो या मो. शहाबुद्दीन का, रॉकी यादव का हो या कृष्णवल्लभ यादव का इन सबके मामले अब टेस्ट केस बन गए हैं, जिसके तार्किक परिणति तक पहुँचने से एक मिसाल कायम होगी कि एक ओर जहाँ निवेशकों या बैंकों को चूना लगाने वाले यों ही बचकर नहीं निकल सकते, वहीं वोट बैंक के लिए तुष्टीकरण की नीति अपनाने वाले राज्य सरकारों द्वारा अपराधियों को बचाने की कोशिश भी विफल होगी।

आपको याद होगा माँ के निधन पर मिले पैरोल से पहले सुब्रत रॉय को तकरीबन दो साल तिहाड़ जेल में गुजारने पड़े थे उससे पहले सर्वोच्च न्यायालय के ऐसे सख्त रूख की उम्मीद शायद ही किसी ने की होगी कि निवेशकों का पैसा न लौटाने पर कंपनी के मालिक को ही अनिश्चित काल के लिए जेल की हवा खानी पड़ेगी या राजद नेता मो. शहाबुद्दीन जैसे खूँखार अपराधी को वर्तमान सरकार के रहते सर्वोच्च न्यायालय से जमानत रद्द होने के पश्चात् पुन: जेल की कोठरी में बंद होना पड़ेगा। मुझे लगता है कि ऐसे सभी मामलों में ऐसी ही सख्ती की उम्मीद गलत नहीं होगी और हाल के न्यायिक फैसले से यही उम्मीद हुई है और आगे भी यही उम्मीद है।

इसी प्रकार जाति, धर्म, समुदाय या भाषा आदि के नाम पर वोट

माँगने वाले उम्मीदवार को कदाचार माना जाएगा। न्यायालय का यह फैसला प्रगतिशील है, हालांकि व्यवहार में कितना अमल होगा, कहना मुश्किल है। एक तथ्य यह भी काबिलेगौर है कि तमाम बड़े और ऐतिहासिक महत्व के फैसले जनहित याचिकाओं की देन हैं। जनहित याचिकाओं ने न्यायपालिका और विशेष रूप से उच्चतम न्यायालय के प्रति आम लोगों के भरोसे को बढ़ाया है।

शायद सहजता से इस बात पर विश्वास नहीं हो कि देश में विभिन्न प्रकार के सामाजिक कार्यों के लिए करीब 33 लाख गैर-सरकारी संगठन पंजीकृत हैं, जिन्हें हर साल औसतन करीब 950 करोड़ रुपए की आर्थिक सहायता केंद्र एवं राज्य सरकारों से मिलती है। लेकिन दिलचस्प बात यह है कि सरकारों की आर्थिक सहायता मिलने के बावजूद इनमें से करीब 90 प्रतिशत संगठन इस धन के उपयोग का विवरण ही दाखिल नहीं करते जबकि इन संगठनों के लिए इस धनराशि के उपयोग का विवरण दाखिल करना अनिवार्य होता है, लेकिन करीब 30 लाख संगठन यह विवरण दाखिल ही नहीं करते और सरकार इसके लिए गंभीरता से प्रयास नहीं करती। इसी को देखते हुए देश की शीर्ष अदालत सर्वोच्च न्यायालय ने सरकार से सहायता प्राप्त करने वाले संगठनों के खातों की लेखा परीक्षा (ऑडिट) का आदेश दे दिया है। यही नहीं न्यायालय ने इसके साथ ही सरकारों को उन गैर-सरकारी और स्वैच्छिक संगठनों के खिलाफ दंडात्मक कार्रवाई करने के लिए अधिकृत किया जो सरकार से मिले धन का उपयोग सही तरीके से लेखा-जोखा मुहैया कराने में विफल रहते हैं। सरकारी ऑडिट में खरे नहीं उतरने वाले संगठनों के खिलाफ दीवानी और फौज़दारी मुकदमें की कार्रवाई की जा सकेगी, ताकि सरकार से मिले धन की वसूली की जा सके। इस प्रकार सेवा के कारोबार में मेवा पाने वालों पर सख्ती कर न्यायिक फैसले से उम्मीद जताई जाती है, इसमें संदेह नहीं।

(92)प्रश्नः क्या आप ऐसा महसूस करते हैं कि पिछले कुछ समय से फालतू की जनहित याचिकाएँ सर्वोच्च न्यायालय का कीमती वक्त बर्बाद करने का काम कर रही हैं? आखिर क्यों?

उत्तरः हाँ, मैं भी महसूस करता हूँ कि पिछले कुछ समय से खासतौर पर मनोहर लाल शर्मा तथा ख्यातिप्राप्त अधिवक्ता प्रशांत भूषण जैसे लोगों द्वारा दायर फालतू की जनहित याचिकाएँ सर्वोच्च न्यायालय का न केवल कीमती वक्त बर्बाद करने का काम कर रही हैं, बल्कि सच तो यह है कि

कॉमन काउज तथा सेंटर फॉर पब्लिक इंटरेस्ट लिटिगेशन जैसे संगठन तो जनहित याचिकाओं की दुकानों में तब्दील हो चुके हैं।

जब सर्वोच्च न्यायालय ने कह दिया कि ऐसा कोई कानून नहीं है जो सरकार को तय वक्त से पहले बजट पेश करने से रोक सके या फिर जब सरकार की ओर से यह अनुरोध किया गया कि उच्च न्यायालयों में नोटबंदी के खिलाफ दाखिल हो रही याचिकाओं की सुनवाई एक साथ शीर्ष अदालत में ही हो तो कहा गया कि ऐसा नहीं हो सकता, आप सब जगह अपना पक्ष रखिए। एक ओर जजों की कमी और दूसरी ओर एक ही मसले को विभिन्न उच्च न्यायालयों में सुनने की छूट! क्या यह समय और श्रम की बर्बादी नहीं? सर्वोच्च न्यायालय के सामने न जाने कितने गंभीर मसले लंबित हैं, लेकिन एक जनहित याचिका के चलते वह यह तय करने की भी कोशिश कर रहा है कि संता-बंता के चुटकुले कैसे होने चाहिए।

इसी प्रकार एक जैसी जनहित याचिका सर्वोच्च न्यायालय ने सुनी थी कि रक्षा मंत्री मनोहर पार्रिकर को 'सर्जिकल स्ट्राइक' को श्रेय लेने से रोका जाए, जो कहा जाए तो यह एक बेतुकी याचिका थी जिसे अदालत द्वारा खारिज किया गया। प्रशांत भूषण, अरविंद केजरीवाल तथा राहुल गाँधी द्वारा दायर सहारा-डिल डायरी केस को भी खारिज इसलिए किया गया, क्योंकि प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के दिए गए घूस को डायरी में नोट करने का कोई सबूत इन याचिका प्रस्तुत करने वालों ने पेश नहीं किया। आखिर सर्वोच्च न्यायालय ने इन कथित जनहित याचिकाओं पर अपना समय क्यों बर्बाद किया?

(93)प्रश्नः 26 वर्षों तक लंबी लड़ाई लड़ने के बाद सेकेंड लेफ्टिनेंट रहे एस.एस. चौहान के पक्ष में आया सशस्त्र सैन्य अधिकरण, लखनऊ का ऐतिहासिक फैसला क्या सेना के लिए सबक नहीं कहा जाएगा? आखिर क्यों?

उत्तरः हाँ, 26 वर्षों तक लंबी लड़ाई लड़ने के बाद सेना के सेकेंड लेफ्टिनेंट रहे एस. एस. चौहान के पक्ष में आया सशस्त्र सैन्य अधिकरण, लखनऊ का ऐतिहासिक फैसला सेना के लिए एक सबक कहा जाएगा, क्योंकि इस ऐतिहासिक फैसले में न्यायमूर्ति देवी प्र. सिंह की अध्यक्षता वाले अधिकरण ने इस फैसले के माध्यम से सेना की कार्यशैली पर न केवल गंभीर प्रश्न लगा दिया है, बल्कि एस. एस. चौहान का कोर्ट मार्शल रद्द करते हुए रक्षा मंत्रालय पर पाँच करोड़ रुपए का जुर्माना भी लगाया है। साथ ही चौहान को बहाल कर सेवा के सभी लाभ दने का भी आदेश दिया है। तीन सौ पृष्ठों

के इस फैसले में कहा गया है कि चौहान को चार करोड़ रुपए दिए जाएं और एक करोड़ रुपए आर्मी सेंट्रल वेलफेयर कोष में जमा कराया जाए। अधिकरण ने सेना को यह भी आदेश दिया है कि एस. एस. चौहान के खिलाफ की गई जाँचों में उन्हें प्रताड़ित करने और फँसाने वालों के खिलाफ जाँच कर सख्त कार्रवाई करें। जाँच चार माह में पूरी होनी चाहिए। साथ ही पीड़ित चौहान को प्राथमिक दर्ज कराने की छूट दे दी गई हैं।

उत्तर प्रदेश के मैनपुरी निवासी एस. एस. चौहान की सेना की छठवी राजपूत बटालियन, श्रीनगर में तैनाती हुई थी। 11 अप्रैल, 1990 को उन्हें बाटमालू में घर-घर तलाशी चलाने का निर्देश मिला। उनकी टीम ने एक आतंकी के घर से 27 किलो 500 ग्राम सोना बरामद किया। उन्होंने इसे कर्नल को सौंप दिया, लेकिन कर्नल ने छापे में हुई बरामदगी सोने का जिक्र नहीं किया। इस पर चौहान ने आपत्ति की, तो कर्नल ने उन्हें फँसाने की साजिश की। चौहान का यह भी आरोप था कि तत्कालीन कर्नल और लेफ्टिनेंट ने साठगांठ कर सोना हड़प लिया है। अधिकरण ने यह भी कहा है कि सेना ने कोर्ट मार्शल की कार्रवाई के दौरान चौहान की ओर से प्रस्तुत किए गए साक्ष्यों की अनदेखी की है। ऐसा करना साक्ष्य अधिनियम के खिलाफ है। चौहान को यातना देते हुए उन्हें पागल तक बताया गया। उनपर जानलेवा हमले हुए, लेकिन अधिकारियों ने कोई सुनवाई नहीं की। अधिकरण ने इस प्रकरण में अनेक गंभीर टिप्पणियाँ की हैं। उल्लेख्य है कि संसद ने भी 2008 में एस. एस. चौहान के पक्ष में फैसला सुनाया था।

अधिकरण के फैसले के बाद अब उन अधिकारियों के खिलाफ जाँच होनी चाहिए जिन्होंने साजिश कर सेकेंड लेफ्टिनेंट एस. एस. चौहान को फँसाया। दोषी पाए जाने पर इन अधिकारियों को कड़ी सजा भी मिलनी चाहिए। यह असाधारण घटना है इसलिए सजा भी यदि असाधारण हो, तो यह न्यायसंगत होगी। इस प्रकार इस फैसले के पूर्व की सभी घटनाओं पर गौर करते हुए सशस्त्र सैन्य अधिकरण, लखनऊ के ऐतिहासिक फैसले को देखा जाए, तो यह कहना बाजिब होगा कि एक ओर जहाँ सेना के लिए यह बहुत बड़ा सबक है, तो वहीं दूसरी ओर ऐसे न्यायिक फैसले आमजन में एक उम्मीद जगाते दिख रहे हैं।

(94)प्रश्न: फसल बर्बाद होने और कर्ज की वजह से किसानों की खुदकुशी के लगातार बढ़ते मामलों को सुप्रीम कोर्ट ने बेहद संवेदनशील मामला बताते हुए विस्तृत सुनवाई का आदेश देकर क्या किसानों के बीच एक उम्मीद नहीं जगायी है? आखिर कैसे?

उत्तर: हाँ, फसल बर्बाद होने और कर्ज के कारण किसानों की खुदकुशी के लगातार बढ़ते मामलों को सुप्रीम कोर्ट ने बेहद संवेदनशील मामला बताते हुए और विस्तृत सुनवाई का आदेश देकर निश्चित रूप से किसानों के बीच एक उम्मीद जगायी है, क्योंकि सुप्रीम कोर्ट ने किसानों के हित तथा उन्हें संरक्षण प्रदान करने के लिए राष्ट्रीय नीति बनाने की जरूरत जताई है। यही नहीं, गुजरात के किसानों की बदहाली को लेकर दायर जनहित याचिका को सुप्रीम कोर्ट ने विस्तार दिया तथा सरकार से पूछा कि देश भर के किसानों की हालत पर जवाब दायर करें, क्योंकि यह सिर्फ जनहित का ही नहीं, बल्कि मानवाधिकार से जुड़ा मामला भी है।

याची गैर-सरकारी संगठन द्वारा दायर याचिका पर गुजरात उच्च न्यायालय के फैसले के खिलाफ सुप्रीम कोर्ट के इस रूख से निश्चित रूप से एक उम्मीद जगी है।

(95)प्रश्न: पटना एम्स के पूर्व निदेशक गिरीश कुमार सिंह की पिछले साल 14 नवंबर 2016 को अदालत की रोक के बाद गिरफ्तारी से जो बेइज्जती हुई उसे क्या जायज ठहराया जा सकता है?

उत्तर: नहीं, कतई नहीं। पटना स्थित अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स) के पूर्व निदेशक गिरीश कुमार सिंह की पिछले वर्ष 14 नवंबर, 2016 को अदालत की रोक के बावजूद गिरफ्तारी से उनकी जो बेइज्जती हुई उसे जायज नहीं ठहराया जा सकता है, क्योंकि उन्हें तीन दर्जन पुलिसकर्मी गिरफ्तार करने गए थे जबकि अमूमन दुर्दांत अपराधियों की गिरफ्तारी के वक्त भी ऐसा नहीं होता है।

पटना उच्च न्यायालय अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान(एम्स) के पूर्व निदेशक गिरीश कुमार सिंह द्वारा दायर आपराधिक अवमाननावाद के मामले पर सुनवाई करते हुए खंडपीठ के न्यायाधीश नवनीति प्रसाद सिंह एवं न्यायाधीश विकास जैन ने नौकरशाहों पर तल्ख टिप्पणी की कि गिरफ्तारी पर अदालत द्वारा रोक लगाने के बावजूद निदेशक को गिरफ्तार किया गया और वह भी तीन दर्जन पुलिसकर्मियों की उपस्थिति में जो अमूमन दुर्दांत अपराधियों की गिरफ्तारी के वक्त भी नहीं होता। कोर्ट ने भी कहा कि पूरे प्रकरण में

निदेशक की जो बेइज्जती हुई उसे क्या जायज ठहराया जा सकता है? ऐसे में कार्रवाई करने वाले अधिकारियों को कैसे माफ किया जा सकता है?

दरअसल, एम्स के पूर्व निदेशक को एक एससीएसटी एक्ट में पिछले 14 नवंबर, 2016 को कोर्ट की रोक के बाद भी गिरफ्तार किया गया था। खंडपीठ ने तो यहाँ तक कहा कि नौकरशाह की स्किन गैंडे की चमड़ी से भी ज्यादा मोटी हो गई है। प्रकरण में शामिल अधिकारियों पर कार्रवाई संभव है।

(96)प्रश्नः दक्षिण दिल्ली के उपहार सिनेमा की भयावह त्रासदी मामले में दशकों बाद आए नाउम्मीदी फैसला से क्या देश की जनता मायूस नहीं होगी? क्या अदालत के इस इंसाफ से लोगों का भरोसा बन पाएगा?

उत्तरः आपको याद होगा आज से तकरीबन दो दशक पूर्व दक्षिण दिल्ली के ग्रीन पार्क इलाके में विगत 13 जून, 1997 को उपहार सिनेमा में फिल्म 'बार्डर' के प्रदर्शन के दौरान हुए अग्निकांड में 59 लोग मारे गए थे और करीब 100 लोग जख्मी हो गए थे, क्योंकि उस भयावह त्रासदी ने निर्माण कार्य में लापरवाहियों को भी उजागर किया था और यह भी जाहिर किया था कि कैसे भ्रष्टाचार के बल पर निर्माणकर्ता अंसल बंधुओं ने बुनियादी मानकों को भी धता बताया था। उस अग्निकांड में ज्यादातर जानें दम घुटने और बाहर निकलने की पर्याप्त जगहें न होने से हुई।

उल्लेख्य है कि किसी भी सार्वजनिक प्रदर्शन स्थल में यह बुनियादी जरूरत होनी चाहिए कि किसी अनहोनी की दशा में वहाँ से सुरक्षित निकलने के लिए अधिकतम उपायों पर जोर दिया जाए, लेकिन इस मामले में पाया गया कि सुरक्षा मानकों का घोर उल्लंघन किया गया था। दरअसल, पैसा कमाने की लालच में सरकारी महकमों की मिली भगत से यह सब होता रहा है जिसका खामियाजा आम जन को भुगतना पड़ता है। इसलिए उम्मीद थी कि देश के बड़े बिल्डरों में एक अंसल बंधुओं को ऐसी सजा मिलेगी कि आगे ऐसी कोई हिम्मत न कर पाए। यही नहीं, जिम्मेदार सरकारी महकमों और अधिकारियों को भी सबक दिया जाना था, लेकिन एक तो दो दशक बाद फैसला आया और उसमें भी इसके दोषी अंसल भाइयों में से एक को साल भर की जेल की सजा सुनाई गई जबकि दूसरे को ज्यादा उम्र के कारण राहत दे दी गई।

अदालत के इस फैसले से पीड़ित परिवारों की ओर से न्याय की

वेदी पर इंसाफ की माँग करने वालों में कुछ ने तो यकीनन कहा कि उनका न्याय-प्रक्रिया से भरोसा उठ गया। उपहार त्रासदी पीड़ित संगठन की अध्यक्ष नीलम कृष्णमूर्ति तो यहाँ तक कह गई कि इससे बेहतर होता कि 'उसी दिन उन लोगों (अंसल भाइयों) को गोली मार देती, जिस दिन मेरा बेटा मारा गया। यह टिप्पणी कुछ अतिरेकी और बेहद भावुक उद्‌गार हो सकती है, लेकिन जिनके परिजन उसमें जान गंवा बैठे, वे ऐसा इंसाफ चाहते होंगे, जो मिसाल बने। लेकिन अफसोस वह हो नहीं सका। न्यायिक प्रक्रिया की अपनी गति और दलीलें हो सकती हैं, लेकिन उससे नजीरें कायम होती हैं। तभी वह देश की व्यवस्था में सुधार का कारण बन सकती है। इसलिए अदालत के इस फ़ैसले से लोगों का भरोसा टूटना स्वाभाविक कहा जाएगा।

(97)प्रश्नः भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड के बारे में उच्चतम न्यायालय द्वारा लिए गए ताजा फैसले को आप क्या कहेंगे और क्यों?

उत्तरः विगत 30 जनवरी, 2017 को देश की सर्वोच्च न्यायालय ने भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड (बीसीसीआई) की बागडोर भारत के नियंत्रक-महालेखा परीक्षक (सीएजी) के पद पर रहे विनोद कुमार राय की अध्यक्षतावाली चार सदस्यीय प्रशासक समिति को सौंप दी। समिति के अन्य तीन सदस्य होंगे इतिहासकार रामचंद्र गुहा, भारतीय महिला क्रिकेट टीम की पूर्व कप्तान डायना एडुलजी और वित्तीय कंपनी आईडीएफसी के प्रबंध निदेशक और मुख्य कार्यपालक अधिकारी विक्रम लिमये। इस प्रशासक समिति के अध्यक्ष विनोद कुमार राय न केवल एक ईमानदार एवं प्रशासनिक क्षमता से भरपूर प्रतिभाशाली नियंत्रक-महालेखा परीक्षक के पद को संभाल चुके हैं, बल्कि 2 जी स्पेक्ट्रम और कोलगेट जैसे घोटालों से पर्दा हटाने का काम बखूबी कर चुके हैं। यह बात ठीक है कि डायना एडुलजी को छोड़कर प्रशासक समिति के अन्य तीन लोग खेलों से बहुत संबद्ध नहीं दिखते हैं, पर अध्यक्ष सहित पैनल के तीनों सदस्य में अनुभव और काबिलियत का बेहतरीन मेलजोल है तथा इन पर किसी की उँगलियाँ नहीं उठ सकतीं। एक ओर केंद्र एवं राज्य सरकारों के आय-व्यय का हिसाब रखने में माहिर विनोद कुमार राय जहाँ अध्यक्ष बनाए गए हैं, वहीं दूसरी ओर विभिन्न विषयों पर गहरी ऐतिहासिक निगाह रखने वाले रामचंद्र गुहा लंबे समय तक अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट खेल चुकीं डायना एडुलजी और वित्तीय कामकाज में दक्ष विक्रम लिमये हैं जिनसे भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड पर आए सुप्रीम कोर्ट के फैसलों से जनता और खिलाड़ियों की आशाएँ बढ़ी हैं। इसलिए उच्चतम न्यायालय इस बड़े फैसले

को अभूतपूर्व कदम और नई इबारत तो कहा ही जा सकता है, मगर क्रिकेट के धर्म की तरह मानने वाले भारत में इसे ऐतिहासिक और पूरे खेल जगत को नई दिशा देने वाला फैसला भी कहा जाएगा। कारण कि इस देश में खेलों की जो स्थिति है उससे हर कोई पूरी तरह वाकिफ है कि किस तरह राजनीतिज्ञ और नौकरशाह खेल के अहम पदों पर बरसों से कब्जा जमाए क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड को भ्रष्टाचार का अड्डा बना दिए हैं और मनमाने अंदाज में खेल प्रशासन को संचालित कर रहे हैं।

ऐसी विषम स्थिति में सुप्रीम कोर्ट के फैसले के बाद भारत में सबसे अधिक पोपुलर क्रिकेट खेल में तो ढाँचागत बदलाव निश्चित तौर पर बाकी खेलों के लिए भी एक राह बनाने का काम तो करेगा ही। मुझे पूरी उम्मीद है कि क्रिकेट के खेल में अब पारदर्शिता आएगी तथा खेल-खिलाड़ियों के साथ न्याय होगा और सबको अवसर मिलेगा। इस दृष्टि से सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले का हार्दिक स्वागत है।

(98)प्रश्नः क्या हर आपराधिक मामले में अदालत दोबारा सुनवाई का आदेश दे सकती है?

उत्तरः नहीं, हर आपराधिक मामले में अदालत दोबारा सुनवाई का आदेश नहीं दे सकती है। सिर्फ उन्हीं मामलों की दोबारा सुनवाई करवाई जा सकती है जिनमें न्याय की हत्या (मिसकैरेज ऑफ जस्टिस) हुई हो। भागलपुर में दहेज हत्या के एक मामले की सुनवाई के दौरान सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश दीपक मिश्रा और न्यायाधीश आर. भानुमति की एक खंडपीठ द्वारा दोबारा सुनवाई संबंधी पटना उच्च न्यायालय का आदेश रद्द कर दिया गया। साथ ही अदालत से तीन आरोपियों की याचिका पर दोबारा विचार करने को कहा। न्यायाधीश आर. भानुमति ने कहा, 'अक्सर हाईकोर्ट हाउस आपराधिक मामले में रिट्राइल का आदेश देते हैं, जिसके खिलाफ याचिका दायर हो जाए। यह गलत है।

भागलपुर के तिलकामांझी थाने में राजकुमार घोषाल, उसके पिता अजय घोषाल और माँ मुनमुन घोषाल के खिलाफ 15 मई, 2007 को दहेज हत्या का केस दर्ज हुआ था। राज कुमार घोषाल की शादी 3 फरवरी, 2007 को हुई थी। जिला अदालत ने 9 अप्रैल, 2015 को तीनों को दोषी करार देते हुए 10 साल की कैद की सजा सुनाई। तीनों ने इसे पटना उच्च न्यायालय में चुनौती दी। उच्च न्यायालय ने निचली अदालत को दोबारा सुनवाई का आदेश दिया। इसके खिलाफ तीनों सुप्रीम कोर्ट पहुँचे थे।

सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश ने कहा कि दोबारा सुनवाई तभी करवा सकते हैं, जहाँ लगे कि सुनवाई अधिकार क्षेत्र के बाहर के किसी न्यायिक अधिकारी ने की है या निचली अदालत ने सबूत और गवाह की अनदेखी की है। जाँच की जिन कमियों से मुकदमें पर कोई असर नहीं पड़ा वह दोबारा सुनवाई का आधार नहीं हो सकती। न्यायाधीश दीपक मिश्रा ने कहा कि 'पटना हाईकोर्ट ने जाँच अधिकारी की लापरवाहियों का हवाला तो दिया है, लेकिन यह नहीं बताया कि न्याय की हत्या करने वाली यह खामियाँ कौन सी हैं। आरोपी की अपील पर हाईकोर्ट का कर्तव्य बनता है कि सबूतों के आधार पर खुद स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुँचे। पटना हाईकोर्ट ने फैसले में गलती की है। इसलिए हम हाईकोर्ट के 28 अगस्त, 2015 के उस फैसले को रद्द करते हैं, जिसमें दहेज हत्या के दोषियों के खिलाफ मामले की दोबारा सुनवाई का आदेश जारी किया गया था। हाईकोर्ट इस मामले में आरोपियों की अपील पर दोबारा जाँच करे।'

(99)प्रश्नः जो लोग मतदान नहीं करते हैं, क्या उन्हें सरकार से सवाल पूछने या दोष देने का हक नहीं है?

उत्तरः नहीं, जो लोग चुनाव में मतदान नहीं करते हैं उन्हें सरकार से सवाल पूछने या दोष देने का हक नहीं है। हाल ही में उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश जे. एस. खेहर की अध्यक्षतावाली खंडपीठ ने एक गैर सरकारी संगठन 'वॉइस ऑफ इंडिया' की ओर से सामाजिक कार्यकर्ता के अतिक्रमण हटाने को लेकर दायर याचिका पर सुनवाई के दौरान टिप्पणी देते हुए कहा कि हर बात के लिए सरकार को दोषी नहीं दिया जा सकता। वॉइस ऑफ इंडिया की ओर से पेश हुए धनेश ईशधन ने कहा कि सरकारें अतिक्रमण हटाने के लिए कुछ नहीं करतीं। इसलिए पूरे देश में इसे हटाने के लिए आदेश जारी किया जाए। उच्चतम न्यायालय ने उनसे पूछा कि क्या आपने वोट डाला है। ईशधन ने जवाब दिया, मैंने जीवन में कभी वोट नहीं दिया। इससे गुस्साई खंडपीठ ने कहा, 'यदि आपने वोट नहीं दिया, तब आपको सरकार से सवाल करने या दोष देने का अधिकार नहीं है।'

(100)प्रश्नः क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि आतंकवाद को रोकने के लिए सात देशों के नागरिकों के अमेरिका आगमन पर पूरी तरह रोक लगाने के राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप के फैसले को संघीय अदालत (फेडरल कोर्ट) ने अनुचित ठहराकर कुल मिलाकर अमेरिकी हितों और मूल्यों की रक्षा ही की है?

उत्तर: हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि आतंकवाद को रोकने के लिए ईरान, इराक, लीबिया, सोमालिया, सूडान, सीरिया और यमन जैसे सात देशों के नागरिकों के अमेरिका आगमन पर पूरी तरह रोक लगाने के राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप के फैसले को संघीय अदालत (फेडरल कोर्ट) ने अनुचित ठहराकर कुल मिलाकर अमेरिकी हितों और मूल्यों की रक्षा ही की है, क्योंकि डोनाल्ड ट्रंप को आदेश उन अमेरिकी मूल्यों और मर्यादाओं का निरादर करने वाला था जिनके लिए वह दुनिया में अपनी पहचान और प्रतिष्ठा रखता है। वैसे भी अमेरिका कुछ वर्षो पहले दुनिया में लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रसार के लिए सक्रिय था।

हालांकि यह भी सच है कि अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप पूरी दुनिया के लिए चिंता का विषय बने आतंकवाद पर चोट करना चाहते हैं, क्योंकि यह बात किसी से छिपी नहीं है कि पिछले कुछ वर्षों में किस तरह आतंक विरोधी नीतियों ने नए आतंकी पैदा करने का काम किया है। इसलिए डोनाल्ड ट्रंप का यह कदम अमेरिका के हित में उठा था न कि मुस्लिम देशों के आम नागरिकों को निशाने पर लेना था। हाँ, यह दिगर बात है कि उन देशों के उन नेताओं और संस्थाओं के खिलाफ कड़ी कार्रवाई बरतने की आवश्यकता है जो आतंकवाद को परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से हवा देने का काम कर रहे हैं।

अमेरिका के संघीय अदालत के फैसले के बाद डोनाल्ड ट्रंप के इस बयान से सहमत हुआ जा सकता है कि अब अमेरिका में कुछ हुआ तो जज जिम्मेदार होंगे। न्यूयॉर्क के विश्व व्यापार केंद्र (वर्ल्ड ट्रेड सेन्टर) पर आतंकियों द्वारा किए गए हमले और उससे नुकसान से सब कोई वाकिफ है वैसे भी संघीय अदालत के न्यायाधीश जेम्स राबर्ट, जिन्होंने डोनाल्ड ट्रंप के फैसले पर रोक लगाई और अमेरिकी कानून विभाग द्वारा अपील कोर्ट में दायर चुनौती को अस्वीकार किया गया की गणना अमेरिका में उदारवादी के रूप में होती है।

हालांकि संघीय अदालत ने भले ही ट्रंप के आदेश को रद्द करने का फैसला किया हो, मगर यह भी सच है कि विश्व के कई संपन्न मुस्लिम राष्ट्रों का ट्रंप के फैसले का समर्थन प्राप्त है जहाँ संयुक्त अरब अमीरात ने ट्रंप के आदेश का समर्थन किया, वहीं कुवैत ने ट्रंप के पद चिह्नों पर चलते हुए पाँच मुस्लिम राष्ट्रों के नागरिकों पर प्रतिबंध लगाया जिसमें पाकिस्तान और अफगानिस्तान भी शामिल है। दूसरी बात यह सोचने की है क्या किसी

भी राष्ट्र द्वारा कुछ देशों के नागरिकों के खिलाफ मजहब के आधार पर इस तरह की कार्रवाई पहली बार हुई है? आपकी जानकारी के लिए मैं आपको बता दूँ कि इजरायली पासपोर्ट धारकों पर मजहबी कारणों से 16 इस्लामिक या फिर मुस्लिम बहुल देशों ने गत कई वर्षो से प्रतिबंध लगाया हुआ है। इन देशों में अल्जारिया, बांग्लादेश, ब्रुनेई, ईरान, ईराक, कुवैत, लेबनान, लीबिया, मलेशिया, ओमान, पाकिस्तान, सऊदी अरब, सूडान, सीरिया, संयुक्त अरब अमीरात और यमन शामिल हैं। क्या इसके खिलाफ किसी उदारवादी और मानवाधिकार संगठन ने कभी आवाज उठाई?

(101)प्रश्नः क्या आप मानते हैं कि सुप्रीम कोर्ट द्वारा कलकत्ता उच्च न्यायालय के वर्तमान न्यायाधीश सी. एस. करनन के खिलाफ अवमानना मामले में स्वतः संज्ञान लिया जाना एक अभूतपूर्व घटना है? आखिर क्यों?

उत्तरः हाँ, मैं मानता हूँ कि सुप्रीम कोर्ट द्वारा कलकत्ता उच्च न्यायालय के वर्तमान न्यायाधीश सी. एस. करनन के खिलाफ अवमानना मामले में स्वतः संज्ञान लिया जाना एक अभूतपूर्व घटना है, क्योंकि यह पहला मौका है जब सुप्रीम कोर्ट ने हाईकोर्ट के किसी वर्तमान न्यायाधीश के खिलाफ अवमानना मामले में स्वतः संज्ञान लिया हो। इतना ही नहीं यह भी पहली बार होगा जबकि सुप्रीम कोर्ट के वरिष्ठतम न्यायाधीश के खिलाफ अवमानना पर सुनवाई करेगी।

दरअसल, अभी तक न्यायाधीशों के खिलाफ इधर-उधर से आयी शिकायतों पर सुप्रीम कोर्ट कोलेजियम विचार करती थी और इनहाउस प्रक्रिया अपनाई जाती थी। खुली अदालत में इस तरह मामले पर सुनवाई नहीं होती थी।

वैसे कामेश्वर बाबू, आप तो खुद वकील हैं और वकील होने के नाते जानते होंगे कि न्यायाधीश करनन ऐसे न्यायाधीश हैं जो आपने कामों के लिए कई बार चर्चा में रहे हैं। यह मामला जिसमें सुप्रीम कोर्ट ने स्वतः संज्ञान लिया है, न्यायाधीश करनन के प्रधानमंत्री को न्यायाधीशों के बारे में पत्र लिखने से जुड़ा है। न्यायाधीश करनन ने गत जनवरी में प्रधानमंत्री को पत्र लिखकर करीब 20 न्यायाधीशों पर भ्रष्टाचार के आरोप लगाए हैं और उनसे पैसे वापस लेने की बात कही है। पत्र में सुप्रीम कोर्ट के कई अवकाश प्राप्त न्यायाधीशों के भी नाम हैं। उन्होंने यह भी कहा था कि नोटबंदी से भ्रष्टाचार कम हुआ है, लेकिन न्यायपालिका में बिना डर के भ्रष्टाचार हो रहा है।

(102)प्रश्नः डॉक्टर्स को धरती का भगवान कहा जाता है, लेकिन मेडिकल जैसी परीक्षाओं में नकल करके कोई एमबीबीएस डॉक्टर्स बनता है, तो क्या वह धरती का भगवान बन सकता है?

उत्तर: नहीं, कतई नहीं, क्योंकि नकल के जरिए पास होने वाले एमबीबीएस के छात्रों की नाकाबिलियत की कीमत मरीज को चुकानी पड़ेगी, तो लोगों को भगवान और व्यवस्था से ही विश्वास उठ जाएगा। आखिर तभी तो मध्य प्रदेश के व्यापमं परीक्षा में नकल करने वाले 634 मुन्नाभाई छात्रों को एमबीबीएस नामांकन भी रद्द करने का सुप्रीम कोर्ट ने फैसला सुनाया। व्यांपम भर्ती मामले में इस फैसले के साथ ही कोर्ट ने यह संकेत भी दे दिया कि गलत सिर्फ गलत होता है, उसे किसी भी कीमत पर सही नहीं ठहराया जा सकता। मेडिकल जैसी परीक्षाओं के मामले में यह फैसला पूरी तरह जायज भी है, क्योंकि डॉक्टर्स को धरती का भगवान भी कहा जाता है।

हालांकि 2012 के इस मामले में जब पिछले साल यानी 2016 में सुप्रीम कोर्ट में सुनवाई हुई थी, तब दो न्यायाधीशों के बीच आपस में फैसले पर सहमति नहीं बन पाई थी। न्यायाधीश चेलमेश्वर चाहते थे कि ये छात्र पढ़ाई पूरी कर चुके हैं, इसलिए इनके ज्ञान का उपयोग किया जाना चाहिए। हाँ, सजा के रूप में इनसे 5 साल तक सेना या ग्रामीण इलाकों में सेवा ली जाए और इसके बाद सामान्य रूप से काम करने दिया जाए। लेकिन दूसरे न्यायाधीश अभय सप्रे इन छात्रों को कोई रियायत देने के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने साफ कहा कि गलत सिर्फ गलत होता है और इन छात्रों ने नकल का सहारा लेकर गलत किया है। इसके बाद तीन न्यायाधीशों की पीठ में सुनवाई हुई और अंततः सभी मुन्ना भाई को कोर्ट ने गलत बताते हुए नामांकन रद्द कर दिया। इस फैसले के बाद यह उम्मीद भी जगी है कि उस व्यवस्था पर भी अंकुश लगे जो मुन्ना भाइयों की फौज खड़ी करने का काम करते हैं। खासकर ऐसी परीक्षाओं में जिनके जरिए देश का भविष्य निकलता है। व्यापमं तो मात्र एक उदाहरण है उस व्यवस्था का, जो हमारी शिक्षा प्रणाली और युवाओं को खोखला करता जा रहा है। व्यापमं का स्वरूप इतना व्यापक था कि इसने दर्जनों लोगों की जान ले ली, तो सैकड़ों बड़े-बड़े लोगों को कठघरे में खड़ा कर दिया। अब इंतजार है फैसले की उस घड़ी का जब ऐसे गिरोह चलाने वाले और प्रणाली को तार-तार करने वाले बड़े लोगों को भी सजा के साथ समाज में भी यह संदेश दिए जाएँ कि गलत के साथ गलत ही होगा।

(103)प्रश्नः आय से अधिक संपत्ति मामले में विगत 13 फरवरी, 2017 को आया उच्चतम न्यायालय का वी. के. शशिकला और अन्य दो के विरूद्ध फैसला क्या नजीर बनेगा?

उत्तरः हाँ, उम्मीद तो की जानी चाहिए कि आय से अधिक संपत्ति मामले में शशिकला एवं अन्य दो के विरूद्ध उच्चतम न्यायालय से आया फैसला नजीर बनेगा, उन राजनेताओं के लिए जिनके लिए राजनीति लोक सेवा से अधिक स्वहित साधने का माध्यम बन गई है। यह फैसला राजनीति में बढ़ते भ्रष्टाचार पर चोट करता है। बी. के. शशिकला उच्चतम न्यायालय का फैसला आने से पहले जिस तरह अन्ना द्रमुक की महासचिव बनीं व तमिलनाडु का मुख्यमंत्री पद हासिल करने की कोशिश की, वह राजनीतिक मूल्यों में आ रही गिरावट की ओर संकेत करता है। राजनीति में भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने के लिए ऐसे मामलों की सुनवाई में तेजी लाई जानी चाहिए तथा साथ ही ठोस कदम भी उठाने होंगे।

उल्लेख्य है कि आय से अधिक संपत्ति रखने के मामले में शशिकला व उनके दो रिश्तेदारों वी. एन. सुधाकरण और जे. इलावरसी को बरी करने का कर्नाटक उच्च न्यायालय का फैसला रद्द करते हुए उच्चतम न्यायालय ने तीनों को भ्रष्टाचार के जुर्म में चार-चार साल की कैद वे दस-दस करोड़ रुपए जुर्माने की सजा पर अपनी मुहर लगा दी और तीनों को तत्काल सरेंडर करने को कहा है। भ्रष्टाचार के अपराध में दोषी होने की वजह से शशिकला दस साल के लिए चुनाव लड़ने के अयोग्य हो गई है। कानून के अनुसार सजा पूरी होने के छह साल बाद तक चुनाव लड़ने की अयोग्यता रहती है। जयललिता की मृत्यु हो जाने के कारण अदालत ने उनके खिलाफ मामला खत्म कर दिया है।

जिस प्रकार हाल के वर्षों में भारतीय राजनीति में धनबल व बाहुबल का दबदबा बढ़ रहा है, वह लोकतंत्र के स्वास्थ्य के लिए सही नहीं है। इन सबके चलते भ्रष्टाचार को भी पनपने का मौका मिला है। गौरतलब है कि आजादी के बाद के वर्षों में राजनीति जहाँ जन सेवा का माध्यम हुआ करती थी वहीं समय बदलने के साथ निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए राजनीति करने वालों की कतार लंबी होती चली गई। जहाँ कानून अपना काम कर रहा है, वहीं लोगों को भी ऐसे तत्वों को अपने वोट की ताकत का अहसास कराते रहना चाहिए। भारतीय राजनीति को भ्रष्टाचार के मकड़जाल से बाहर निकालने के लिए राजनीतिक दलों को भी आज आगे आने की जरूरत है।

अगर वह ऐसा नहीं करते, तो इस बात को बल मिलेगा कि वह राजनीति महज स्वार्थपूर्ति का साधन बनकर रह गया है, जबकि लोकतंत्र में उनका अस्तित्व जनहित पर टिका है।

सच तो यह है कि आमजन को अब यह लगने लगा है कि भारतीय लोकतंत्र में राजनीति चुनाव जीतने तक सीमित होती जा रही है। सत्ता साधन है साध्य नहीं। लोकतंत्र में नागरिकों के जीवन में गुणात्मक बदलाव लाने का समय आ गया है। राजनेताओं और राजनीतिक दलों को यह बात जल्दी समझ में आ जानी चाहिए और दिवाल पर लिखे को पढ़ लेना चाहिए। ऐसे लोगों के लिए ही उच्चतम न्यायालय का शशिकला के मामले में यह फैसला नजीर बनेगा।

(104)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि सर्वोच्च न्यायालय के हाल के फैसले से हमारी आत्मरक्षा का दायरा बढ़ा है? आखिर कैसे?

उत्तरः हाँ, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा हाल ही में दिए गए एक फैसले से हमारी आत्मरक्षा का दायरा बढ़ा है, क्योंकि फैसले में आत्मरक्षा के अधिकार को और व्यापक कर दिया गया है। इस फैसले में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यदि किसी को अपनी जान का खतरा जरा सा भी महसूस हो, तो वह आत्मरक्षा की पहल कर जवाब दे सकता है। यह जरूरी नहीं कि पीड़ित के साथ कोई घटना हो।

दरअसल, भारतीय दंड संहिता की धारा 96 से लेकर 106 तक में सभी नागरिकों को आत्मरक्षा का अधिकार दिया गया है जिसमें धारा 97 के अंतर्गत शहरी और संपत्ति दोनों की ही रक्षा का अधिकार है। प्रत्येक व्यक्ति को धारा 99 के अंतर्गत पहले स्वयं के शरीर और किसी और के शरीर पर किसी भी तरह के हमले या अत्याचार को रोकने का अधिकार है। संपत्ति भले ही चल हो या अचल हो, उसकी चोरी, डकैती, उसके खिलाफ शरारतपूर्ण या आपराधिक रवैया रखना या उसका प्रयास करने से रोकना भी आत्मरक्षा की श्रेणी में आता है।

दिल्ली के नांगलोई में सुरेश सिंघल, दलाल श्यामसुंदर तथा दलाल लाला हरकिशन के बीच विगत 4 मार्च, 1991 को घटित घटना का मामला जब सुप्रीम कोर्ट गया तो न्यायाधीश एम. ए. बोबड़े और न्यायाधीश एल. नागेश्वर ने सुरेश सिंघल को दोषी नहीं पाया, क्योंकि उसकी जान पर बन आई थी। उसकी अपील को अनुमति देते हुए भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के तहत मामला नहीं बना जबकि उच्च न्यायालय ने सुरेश को श्याम

सुंदर की हत्या के आरोप में दोषी माना था धारा 302 और 304 के तहत। इस प्रकार सुरेश को आत्मरक्षा के अधिकार पर बरी कर दिया गया।

(105)प्रश्नः देश के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा हाल ही में अदालतों में सीसीटीवी कैमरा लगाने का जो आदेश दिया क्या यह फैसला नागरिक अधिकारों को ध्यान में रखते हुए किया गया है?

उत्तर: हाँ, उच्चतम न्यायालय ने हाल ही में अदालतों में सीसीटीवी कैमरा लगाने का जो आदेश दिया है वह फैसला नागरिक अधिकारों को ध्यान में रखते हुए किया गया है, क्योंकि हमारे देश में इसकी लंबे समय से माँग हो रही थी, हालांकि यह भी सत्य है कि दुनिया के अधिकतर देशों में अदालतों में कैमरे की अनुमति नहीं दी गई है। इंग्लैंड, वेल्स में अदालतों की कार्यवाही का इलेक्ट्रॉनिक मीडिया पर कवरेज प्रतिबंधित किया हुआ है। स्कॉटलैंड में इंग्लैंड की तरह सख्ती नहीं है। यहाँ पर पायलट प्रोग्राम की अनुमति कुछ रोक के साथ दी जा चुकी है। कनाडा में ज्यूडिशियल काउंसिल ने अदालतों में कैमरे का विरोध किया है। फिर भी कदाचित मामलों में कैमरे का प्रयोग किया गया है।

पिछले दिनों सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश न्यायमूर्ति आदर्श के गोयल और न्यायमूर्ति उदय यू. ललित की एक खंडपीठ ने देश के 24 उच्च न्यायालयों को निर्देश दिए हैं कि सभी राज्यों में वे यह सुनिश्चित करें कि कम से कम दो जिलों में जिला एवं सत्र अदालतों में सीसीटीवी कैमरे कोर्टरूम में लगाए जाएँ जिसमें ऑडियो रिकॉर्डिंग नहीं हो सकेगा। विधि आयोग ने भी अपनी सिफारिशों में कहा था कि अदालतों में ऑडियो-वीडियो रिकार्डिंग की जानी चाहिए। अब देखना यह है कि यह पहला कदम किस तरह काम करता है। एक बार अदालतों में कैमरे का प्रवेश हो गया तो इन्हें हटाना मुश्किल होगा। यदि यह उचित नहीं हुआ तो इससे होने वाले नुकसान संभालना कठिन होगा, मगर इससे अदालतों के काम को लोग देख सकेंगे।

(106)प्रश्नः क्या आप मानते हैं कि दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा इस्लामिक प्रचारक जाकिर नाईक के गैर सरकारी संगठन (एनजीओ) इस्लामिक रिसर्च फाउंडेशन पर लगाया गया प्रतिबंध देशहित में है? आखिर कैसे?

उत्तर: हाँ, मैं मानता हूँ कि दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा इस्लामिक प्रचारक जाकिर नाईक के गैर-सरकारी संगठन इस्लामिक रिसर्च फाउंडेशन पर लगाया गया प्रतिबंध देशहित में है, क्योंकि दिल्ली उच्च न्यायालय ने सरकार

द्वारा इस एनजीओ पर लगाए गए प्रतिबंध को सही ठहराया है। कारण कि नाईक के इस संगठन पर पाबंदी लगाने का केंद्र का फैसला भारत की संप्रभुता और अखंडता की सुरक्षा के लिए लिया गया था जो देशहित में है। सरकार द्वारा लगाए गए पाबंदी के खिलाफ जाकिर नाईक ने अदालत का दरवाजा खटाखटाया था और इस मामले में केंद्रीय गृह मंत्रालय के 17 नवंबर, 2016 की अधिसूचना को चुनौती दी थी। सरकार ने गैर कानूनी गतिविधि कानून की संबंधित धाराओं के तहत नाईक के एनजीओ पर पाबंदी लगाई थी। केंद्र सरकार ने अपने जवाब में कहा कि इस्लामिक रिसर्च फाउन्डेशन को इसलिए बैन किया गया है, क्योंकि इस बात का डर है कि यह संगठन युवाओं को टेरर ग्रुप ज्वॉयन करने के लिए प्रोत्साहित कर रहा हे। दिल्ली उच्च न्यायालय ने यह भी कहा कि सरकार के पास पाबंदी लगाने को लेकर पर्याप्त सबूत हैं। इसलिए पाबंदी देशहित में है।

(107)प्रश्नः सर्वोच्च न्यायालय ने देश को दहलाने वाले दिल्ली के निर्भया दुष्कर्म कांड के अपराधियों को फाँसी की सजा पर जो मुहर लगाई है क्या नीति-नियंताओं के साथ ही समाज को भी नसीहत और हिदायत के तौर पर नहीं लेना चाहिए? आखिर क्यों?

उत्तरः हाँ, सर्वोच्च न्यायालय ने देश को दहलाने वाले दिल्ली के निर्भया दुष्कर्म कांड के चारों अपराधियों को जो फाँसी की सजा बरकरार रखी और जो टिप्पणियाँ दी हैं उन्हें नीति-नियंताओं के साथ ही समाज को भी नसीहत और हिदायत के तौर पर लेना चाहिए, क्योंकि अपने देश में महिलाओं के प्रति होने वाले अपराधों की एक बड़ी वजह वह मानसिकता है जिसके तहत महिलाओं को दोयम दर्जे के नागरिक के तौर पर देखा जाता है। इस मानसिकता की वजह से ही महिलाएँ घर-परिवार में भी उपेक्षित-प्रताड़ित होती हैं तो बाहर छेड़छाड़ और दुष्कर्म का शिकार बनती हैं। इस दृष्टि से हर कोई यह समझे कि महिलाओं के प्रति पुरुष प्रधान समाज की मानसिकता में बदलाव लाने की सख्त जरूरत है। यह काम बच्चों की शिक्षा-दीक्षा में सुधार करके ही किया जा सकता है। खासकर अब जब पुलिस और अदालतों ने अपने हिस्से का काम कर दिया है, तो फिर यह जरूरी हो जाता है कि समाज भी अपने हिस्से का काम करे।

सर्वोच्च न्यायालय ने इस फैसले से यह संदेश देने का प्रयास किया है कि इस तरह के बर्बरतापूर्ण अपराध के लिए नरमी की कोई गुंजाइश नहीं है। अब इस फैसले के बाद न्यायपालिका से लोगों की मजबूत होती उम्मीद को

और बल मिला है और यह संकेत भी अब हर निर्भया के साथ इंसाफ होगा और दोषी को बख्शा नहीं जाएगा। देश की शीर्ष अदालत ने विगत 5 मई, 2017 को निर्भया कांड के दोषियों को फाँसी की सजा यह कहते हुए बरकरार रखी कि '16 दिसंबर, 2012 की रात निर्भया के साथ जो कुछ हुआ वह इतना नृशंस और बर्बर था कि उसने दुनिया भर के लोगों में सदमे की सुनामी ला दी। ऐसे अपराधियों के लिए कानून में किसी भी तरह के रहम और माफी की गुँजाइश नहीं है।'

(108)प्रश्नः मामला दीवानी हो या आपराधिक, अदालत में जाने से पहले किन-किन बातों की जानकारी होना जरूरी है?

उत्तरः समाज के अनेक लोगों के साथ किसी न किसी तरह की घटना होती रहती है तो स्वाभाविक है कि उन्हें अदालत का दरवाजा खटखटाना पड़ता है। ऐसी स्थिति में उन्हें अदालत में जाने से पहले कुछ बातों की जानकारी जरूरी है, क्योंकि इसे जानने के बाद अदालत में मामला दायर करना आसान होगा।

किसी के खिलाफ अदालत में मुकदमा दायर करने के पूर्व आपको इन बातों का ध्यान रखना जरूरी है-

(1) **मुकदमा करने का कानूनी अधिकार**। मुकदमा दायर करने वाले शख्स को यह जानना जरूरी है कि किसी के खिलाफ मुकदमा करने का कानूनी अधिकार है या नहीं इसे आपको समझ लेना जरूरी है। क्या किसी के खिलाफ मुकदमा करने का कोई कारण है?

(2) **गलत व्यक्ति के खिलाफ ही मुकदमा करें**- कई बार ऐसा होता है कि सही व्यक्ति के खिलाफ मुकदमा कर दिया जाता है जबकि अदालत में ऐसे पक्ष के खिलाफ ही जाना चाहिए जिसके खिलाफ आपकी आपत्ति है।

(3) **सही फोरम और अदालत**- किसी के खिलाफ उपभोक्ता अदालत में न जाए, जब तक आप स्वयं उपभोक्ता की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आते हों। यदि आपको सामान्य मामला पेश करना है तो समरी सूट दायर करने की जरूरत नहीं है। क्षेत्राधिकार का चयन करना भी एक अहम कदम होता है। इसके लिए अनुभवी और कार्यवाही के कारण का अध्ययन करना जरूरी है। इसके बाद ही क्षेत्राधिकार तय किया जा सकता है।

(4)**अनुपालन की अनिवार्यता**- अनुपालन की अनिवार्यता से तात्पर्य यह है कि विधायी नोटिस को सही पंते पर ही भेजा जाना चाहिए। जहाँ तक कामकाज समेटने या बंद करने के नोटिस होते हैं तो वे कंपनी या फर्म या संस्था के पंजीकृत कार्यालय को ही भेजे जाने चाहिए। इसी प्रकार चेक

अनादरित के मामले 138 एनआई कानून के तहत आते हैं। इस तरह के मामलों में नोटिस 30 दिन के अंदर भेज दिया जाना चाहिए। यदि आप किसी सरकारी संगठन के खिलाफ मुकदमा दायर करना चाहते हैं, तो दो माह पहले ही नागरिक प्रक्रिया संहिता की धारा 80 के तहत अग्रिम नोटिस देना होता है।

(5)**अस्पष्टता न हो**–मामला दायर करते समय कार्यवाही, तिथि समय और घटना के स्थान का जिक्र स्पष्ट हो।

(6)**दस्तावेज**– दस्तावेज दोधारी तरह के होते हैं इसलिए प्रत्येक दस्तावेज को बार–बार पढ़ लेना चाहिए।

(7)**सीमाएँ**– मामला दायर करते वक्त सीमा का ध्यान रखना होता है। दीवानी मामलों में सीमा तीन वर्ष की होती है, जबकि संपत्ति आदि के मामलों में यह सीमा बाहर वर्ष की होती है। इसी प्रकार अपील के लिए सीमा 30 से 90 दिनों की रहती है। इसमें कई तरह की धाराएँ और अनुसूची होती है। यह पूरे देश में लागू है, सिवाय जम्मू–कश्मीर के। प्रत्येक दीवानी मुकदमें के लिए आपको अदालत में शुल्क लगता है, जो कभी बेहद कम, कभी बहुत अधिक होता है। प्रत्येक राज्य में अदालती फीस की दरें अलग हैं। जितना अधिक दावा होगा, उतना ही ऊँचा अदालती फीस होगा।

(109)प्रश्नः क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि अयोध्या के विवादित ढाँचे को गिराने के मामले में भाजपा और विश्व हिंदू परिषद के 13 नेताओं पर लखनऊ के सीबीआई अदालत में मुकदमा चलाने का सुप्रीम कोर्ट के फैसले से रसूखवाले लोगों के मामले में भी न्याय की उम्मीद जगी है इसलिए इस फैसले का स्वागत किया जाना चाहिए?

उत्तरः हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि अयोध्या के विवादित ढाँचे को गिराने के मामले में भाजपा और विश्व हिंदू परिषद के 13 नेताओं पर लखनऊ के सीबीआई अदालत में मुकदमा चलाने का देश की सर्वोच्च न्यायालय से रसूखवाले लोगों के मामले में भी न्याय की उम्मीद जगी है इसलिए इस फैसले का स्वागत किया जाना चाहिए। सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले से मुस्लिम समुदाय की यह धारणा भी टूटेगी कि मोदी सरकार के दबाव में सीबीआई भाजपा नेताओं को बचाने की कोशिश करेगी। निश्चित रूप से यह फैसला न्याय व्यवस्था में विश्वास की फिर से स्थापना करता है। अब किसी पक्ष को शिकायत का मौका नहीं है। दोनों के लिए न्याय का रास्ता खुला है। अब सीबीआई अदालत को फैसला करना है कि भाजपा और विश्व हिंदू परिषद के ये नेता विवादित ढाँचा गिराने के षड्यंत्र के दोषी हैं या नहीं?

(110)प्रश्नः महिला सिर्फ माँ और पत्नी नहीं है, वो परिवार को वित्त मंत्री और चार्टर्ड एकाउंटेंट भी होती है-मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए एक फैसले की टिप्पणी पर आपकी क्या प्रतिक्रिया है?

उत्तरः मद्रास उच्च न्यायालय ने पुडुचेरी बिजली की एक याचिका पर सुनवाई के दौरान यह टिप्पणी की कि महिला सिर्फ माँ और पत्नी नहीं है, वो परिवार की वित्त मंत्री और चार्टड एकाउंटेंट भी होती है। दरअसल, बिजली बोर्ड को बिजली की चपेट में आकर मृत महिला के पति को चार लाख रुपए बतौर मुआवजा देना था। इस पर बिजली बोर्ड ने अदालत में तर्क दिया था कि वह महिला सिर्फ एक होममेकर थी और उसकी आय कुछ नहीं थी।

विगत 28 जून, 2017 को इस मामले की सुनवाई करते हुए न्यायाधीश के. के. शशिधरन और न्यायाधीश एम. मुरलीधरन की खंडपीठ ने कहा-'वह एक कर्तव्यनिष्ठ पत्नी और दो बच्चों को प्यार करने वाली माँ थी। वह अपने परिवार की वित्त मंत्री, शेफ, चार्टर्ड एकाउंटेंट भी थी। वह घर की आमदनी और खर्च का ख्याल रखती थी। उसके पति ने अपने पति और उसके बच्चों ने अपनी माँ को खो दिया। उसकी मौत से पति उसकी देखरेख से भी महरूम हो गया। हमें खाना पकाना, कपड़े धोना, सफाई करना जैसे रोजाना के कामों को अलग नजरिए से देखने की जरूरत है। पति अपने साथी का प्यार और साथ खो चुका है, बच्चे अपनी माँ को खो चुके हैं, ये सारी चीजें भी ध्यान में रखने की जरूरत है।' खंडपीठ ने यह भी कहा 'आम आदमी का इलेक्ट्रिकल सिस्टम और ट्रांसमिशन लाइन पर कोई नियंत्रण नहीं होता है। यदि कोई हादसा होता है तो इसकी पूरी जिम्मेदारी बिजली विभाग की होती है। विभाग से इस मामले में और ज्यादा सावधानी बरतने की अपेक्षा की जाती है।'

मद्रास उच्च न्यायालय ने बिजली बोर्ड से पीड़ित पति को 9 प्रतिशत ब्याज के साथ मुआवजे की पूरी रकम देने का निर्देश दिया है। जहाँ तक न्यायाधीश द्वारा दिए गए फैसले की उपर्युक्त टिप्पणी पर हमारी प्रतिक्रिया का सवाल है, मैं फैसले की इस टिप्पणी को शत-प्रतिशत सही मानता हूँ, क्योंकि मैं भी अपने मित्रों व शुभेच्छुओं को अपनी पत्नी की भूमिका के विषय में जानकारी देता हूँ तो अपनी पत्नी को गृहमंत्री के अतिरिक्त वित्तमंत्री भी बताता हूँ। यह सच है कि मेरी पत्नी ही पहले हमारे वेतन और अब पेंशन की राशि के अतिरिक्त मकान किराए के रूप में जो रकम मिलती है उसे

वही रखती हैं, बल्कि वही किराएदारों से खुद तसीलती भी हैं और मुझे जब अपनी जेब खर्च के लिए जरूरत पड़ती है अथवा गाड़ी में पेट्रोल भरना रहता है तो मेरी पत्नी ही वह रकम मुहैया कराती हैं। इस दृष्टि से देखा जाए तो पत्नी सचमुच घर-परिवार की वित्त मंत्री होती हैं। इसके खाना बनाना, घर की साफ-सफाई, बिजली बिल जमा करना आदि सभी कार्यों की जिम्मेदारी उन्हीं के कंधों पर है। यहाँ तक कि योजना तथा अल्पाहार आदि के सामानों की खरीद-फरोख्त भी वही करती हैं। इस दृष्टि से माननीय न्यायालय के फैसले की उपर्युक्त टिप्पणी को न केवल मैं सही मानता हूँ, बल्कि व्यवहारिक भी।

(111)प्रश्नः सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति जे. एस. खेहर द्वारा एक मामले की सुनवाई के दौरान की गई यह टिप्पणी कि भारत के लोगों पर कानून को तोड़ने और न्यायालय के आदेशों के अनुपालन कर किए गए कटाक्ष के मद्देनजर क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि देश के कानून का सम्मान करना हर भारतीय का फर्ज है?

उत्तरः दिल्ली के लाजपत नगर में एक संस्थान के प्रमुख दिनेश खोसला द्वारा अपने घरेलू भवन का इस्तेमाल कॉमर्सियल के तौर पर करने के मामले की सुनवाई के दौरान भारत के मुख्य न्यायाधीश जे. एस. खेहर ने यह टिप्पणी की थी कि तरक्कीवाले देश में कानून का पालन होना ही चाहिए। अगर कानून का पालन नहीं होगा, तो अपराध बढ़ेंगे और लोगों को सजा भुगतनी ही पड़ेगी। उन्होंने यह भी कटाक्ष किया कि भारत के लोगों पर कानून को तोड़ने और न्यायालय के आदेशों की अवहेलना की धज्जियाँ उड़ाने में अपनी शान समझते हैं। जस्टिस खेहर ने कटाक्ष करते हुए भी बहुत गहरी बात जो कही है वह केवल पुलिस और प्रशासन के समझने के लिए नहीं, बल्कि आम नागरिकों के लिए ज्यादा है। किसी एक के लिए कानून तोड़ने का असर कई लोगों पर पड़ता है। इस बात को हर नागरिक को समझना चाहिए। मुझे भी एक सजग नागरिक होने के नाते ऐसा लगता है कि देश के कानून और न्यायालय के आदेशों का सम्मान करना हर भारतीय का फर्ज है।

दरअसल, कानून के राज में यकीन करने वालों के लिए भारत के मुख्य न्यायाधीश जे. एस. खेहर की यह टिप्पणी कि कानून तोड़ना और अदालत के आदेशों की अवमानना करना हमारे खून और संस्कृति में समा चुका है, गहरा आघात पहुँचाने वाली है। न्यायमूर्ति खेहर की इस चेतावनी को एक आदेश के रूप में लिया जाना चाहिए कि कानून का उल्लंघन करने

वालों को सजा होनी चाहिए, क्योंकि एक तो देश में बढ़ती अराजकता और भीड़ द्वारा कानून हाथ में लिए जाने का है और दूसरा मुद्दा अदालत की अवमानना का है। अदालत अपनी अवमानना के बढ़ते मामलों से भी चिंतित है, जिसमें अपने ही न्यायमूर्ति दिनकरण का विवाद तो है ही, पूँजीपति और शराब माफिया विजय माल्या जैसे मामले भी हैं। सच तो यह है कि अदालत की अवमानना बढ़ने की घटनाएँ, रसूखदार लोगों में कानून का भय कम होने और उससे बचने के रास्ते निकालने में महारत होने से पैदा हुई है। जबकि लोकतंत्र में किसी व्यक्ति का नहीं कानून का राज होता है। इसलिए कानून का राज कायम करने के लिए उसके प्रति खौफ और आदर तो होना ही चाहिए।

(112)प्रश्नः क्या आपको ऐसा नहीं लगता है कि संविधान के अनुच्छेद 35ए और 370 से संबंधित सर्वोच्च न्यायालय से फैसला आने के पूर्व उमर अब्दुल्ला का बयान न्यायिक मर्यादा का उल्लंघन और राष्ट्रीय भावना के प्रतिकूल है? क्यों?

उत्तरः हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि सर्वोच्च न्यायालय से फैसला आने के पूर्व संविधान के अनुच्छेद 35ए और 370 से संबंधित उमर अब्दुल्ला का बयान न्यायिक मर्यादा उल्लंघन और राष्ट्रीय भावना के प्रतिकूल है, क्योंकि उमर अब्दुल्ला ने चेतावनी भरे अंदाज में कहा है कि यदि अनुच्छेद 35ए और धारा 370 से कोई छेड़छाड़ हुई तो कश्मीर में जो कभी नहीं हुआ, वह होगा। जबकि उमर अब्दुल्ला इस बात से वाकिफ हैं कि अनुच्छेद 35ए को चुनौती देते हुए सर्वोच्च न्यायालय में 2014 में एक याचिका दायर की गई थी जिसको लेकर सर्वोच्च न्यायालय ने केंद्र एवं राज्य सरकारों से जवाब मांगा था। इस अनुच्छेद पर व्यापक बहस की आवश्यकता को भी रेखांकित किया गया था। सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकरण का तीन न्यायाधीशों की एक पीठ को सौंप दिया है।

उल्लेख्य है कि संविधान के अनुच्छेद 35ए के अनुसार जम्मू-कश्मीर का नागरिक तभी राज्य का हिस्सा माना जाएगा जब उसका जन्म जम्मू-कश्मीर में हुआ हो। अन्य लोग उस राज्य में कोई संपत्ति नहीं खरीद सकते हैं और वहाँ के नागरिक भी नहीं हो सकते है। सच कहा जाए तो यह अनुच्छेद ही विवादित है। आज की तिथि में इसकी प्रासंगिकता भी नहीं रह गई है। इसलिए 35ए और 370 को हटाना वक्त का तकाजा है, क्योंकि जम्मू-कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है। इसलिए उसे अन्य राज्यों की भाँति ही समान दर्जा मिलना चाहिए। इस संबंध में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की प्रतीक्षा की

जानी चाहिए और उसका पूरा सम्मान भी आवश्यक है।

मगर जम्मू-कश्मीर के पूर्व मुख्यमंत्री उमर अब्दुल्ला ने अपने पिता फारूख अब्दुल्ला की भाँति ही अनर्गल और अमर्यादित बयान देकर सर्वोच्च न्यायालय की मर्यादा का उल्लंघन किया है। दरअसल, उमर अब्दुल्ला का यह बयान विरासत में मिली उनकी विकृत मानसिकता का परिचायक है, क्योंकि उनके पिता फारूख अब्दुल्ला भी जब न तब प्रायः राष्ट्र विरोधी बयान देते रहते हैं। उमर का बयान भी उसी श्रेणी में आता है। इसलिए कहा जा सकता है कि उमर अब्दुल्ला का बयान न्यायिक मर्यादा का उल्लंघन और राष्ट्रीय भावना के प्रतिकूल है।

(113)प्रश्नः क्या तीन तलाक पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उसे असंवैधानिक करार किए जाने का ऐतिहासिक फैसला मुस्लिम महिलाओं के लिए नए युग की शुरुआत है? आखिर क्यों?

उत्तरः हाँ, तीन तलाक पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विगत 22 अगस्त, 2017 को अंसवैधानिक करार किए जाने का ऐतिहासिक फैसला मुस्लिम महिलाओं के लिए नए युग की शुरुआत तो है ही, नए भारत के निर्माण की दिशा में बढ़ा एक कदम भी कहा जाएगा, क्योंकि इससे तय हो गया है कि शताब्दियों से चली आ रही इस कुप्रथा का हमेशा के लिए भारत में अंत हो गया है। मुझे आश्चर्य इस बात को लेकर होता है कि जब ऑल इंडिया पर्सनल लॉ बोर्ड जैसी संस्थाओं की नजर में यह तीन तलाक कुरान का उल्लंघन है और फिर तमाम मुस्लिम देशों में इस पर रोक है तो फिर इतने दिनों तक भारत में कैसे जारी रहा। ये इस बात का साक्षी है कि हर चीज को राजनीति से जोड़ देने की आदत में कुरीतियाँ भी फैलती-फूलती हैं। यह तो कहिए कि तीन तलाक का शिकार इंदौर की शाहबानो 1985 में जब गुजारा भत्ता की माँग को लेकर सुप्रीम कोर्ट पहुँची और कोर्ट ने उसके पक्ष में फैसला सुनाया तो उस समय की सरकार इस फैसले को खारिज करने पर तुल गई, मगर कोर्ट ने उसके पति के तर्क को नहीं मानकर शाहबानो को गुजारा भत्ता देने के आदेश दिए जिसे मुस्लिम समाज के कट्टर नेताओं ने इसे पारिवारिक और धार्मिक मामलों में जहाँ दखल माना, वहीं 31 साल पहले शाहबानो के साथ नाइंसाफी में सत्ता पक्ष समेत कई राजनीतिक दलों ने अपनी सहभागिता दिखाई। मगर 1985-86 में जो शाहबानो को हासिल नहीं हुआ वह 2017 में शायराबानो और उनकी जैसी तीन तलाक की शिकार अन्य मुस्लिम महिलाओं को हासिल होने जा रहा है।

सच तो यह है कि समाज जागरूक हो गया है और अब इस बात को मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड को भी समझ लेना चाहिए कि पढ़ा-लिखा मुस्लिम समाज भी कुरान और हदीस के हिसाब से नहीं चलेगा और वो आँख मूँद कर मौलानाओं की बात नहीं मानेगा। किसी देश का समाज कितना सभ्य है, इसका पता वहाँ की महिलाओं की स्थिति से कहीं बेहतर ढंग से चलता है। महिलाओं की स्थिति के लिए समाज के रूख-रवैए के साथ-साथ उसे सबसे अधिक प्रभावित करने वाली जिम्मेदार है। दरअसल, इस देश में आजादी के बाद जैसे-जैसे वोट बैंक की राजनीति ने जड़ें जमाईं राजनीतिक दलों ने समाज सुधार के कार्यक्रम को अपनी राजनीति से बाहर कर दिया। शायद ही कभी किसी दल के घोषणा पत्र में किसी सामाजिक कुरीति के खिलाफ कुछ लिखा मिलता हो। वे देश की बड़ी-बड़ी बातें तो करते हैं, लेकिन यह समझने से इनकार करते हैं कि अगर समाज का सही तरह से निर्माण हो जाए, तो देश अपने-आप बन-संवर जाएगा।

वैसे ख्यातिप्राप्त शायर फैज अहमद फैज ने तो बहुत पहले यह कहकर महिलाओं को झकझोरने की कोशिश की थी- 'बोल कि लब आजाद है तेरे, बोले जुबां अब तेरी है...।' उनकी इस नज़्म ने समाज पर गहरा असर डाला जब विगत 22 अगस्त, 2017 को सुप्रीम कोर्ट ने भी औरतों को कह दिया कि बोल कि लब आजाद हैं तेरे...। यकीनन 22 अगस्त का दिन मुस्लिम समाज की आधी आबादी के लिए ईद का जश्न जैसा दिन है। यह उसके संघर्ष और उसकी खुशी को सलाम करने का दिन है, क्योंकि सर्वोच्च न्यायालय की पाँच जजों की खंडपीठ में से तीन जजों ने तीन तलाक को असंवैधानिक करार दिया और इन तीन जजों का फैसला ही मान्य होगा।

कहना नहीं होगा कि सभी धर्मों की महिलाएँ किसी न किसी स्तर का परिवार के भीतर पिस रही हैं और उनके पास नाइंसाफी बरती जा रही है, इसलिए परिवार के भीतर और बाहर महिला अधिकारों के प्रश्न की धार्मिक चिंताओं के दायरे से बाहर खींच कर मानवाधिकार के प्रश्न के रूप में स्थापित करना जरूरी है। इस लिहाज से सर्वोच्च न्यायालय का तीन तलाक पर दिया गया यह फैसला यकीन दिलाता है कि हमारे आपके प्रयासों से एक नई दुनिया के साथ-साथ एक नए भारत का निर्माण मुमकिन है। जिस समाज में वक्त के साथ मूल्य-मान्यताएँ बदलते नहीं वह ठहराव का शिकार बनता है। इस लिहाज से सुप्रीम कोर्ट का यह 395 पन्नों में लिखा

फैसला नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय है जो कानून और संविधान की प्रतिष्ठा बढ़ाता है और यह फैसला निश्चित रूप से मुस्लिम महिलाओं के लिए नए युग की शुरुआत है।

अक्सर ऐसा देखा-सुना जाता है कि परिवार में तलाक हमेशा परेशानियों का सबब ही बनता है। जब किसी महिला को अचानक से तीन तलाक का फरमान सुना दिया जाता है, तो उसका असर उसके वालिद और बच्चों पर पड़ता है। बहुत सी महिलाएँ ऐसी भी हैं, जिन्हें अपने परिवार का साथ भी नसीब नहीं होता। उनके सामने तो चुनौतियाँ और भी गंभीर होती हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि ऐसा देश भर में हो रहा है। उत्तराखंड की शायरा बानो हो या राजस्थान की अफरीन रहमान, प. बंगाल की इशरत जहां हो या उत्तर प्रदेश की अतिया सबरी और गुलशन परवीन, इन सभी ने तीन तलाक का दर्द झेला है। जो मौलाना इस्लाम का हवाला देकर यह तर्क दे रहे हैं कि तीन तलाक जायज है, वे असल में लोगों को गुमराह करने का काम कर रहे हैं। सच तो यह है कि असल में शरीयत के संरक्षकों ने ही तीन तलाक का बड़े स्तर पर गलत तरीके से इस्तेमाल किया, ताकि वे अपने व्यक्तिगत हितों को साध सकें। इसी वजह से मुस्लिम महिलाओं का काफी शोषण हुआ। उन पर तमाम तरह के जुल्म होने लगे। इस अनैतिक तीन तलाक के कारण औरतों से इज्जत भरी जिंदगी जीने का मूल अधिकार भी छीन लिया गया।

कुछ इसी ख्याल से सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीशों ने अपने फैसले में छह महीने के भीतर कानून बनाने का आदेश भी सरकार को दिया है। मुझे विश्वास है कि कानून निर्माता विशेष अदालत बनाकर मुस्लिमों को कानूनी तौर पर अलग होने का समान अवसर देंगे और वहाँ दोनों पक्षों की समान रूप से सुनवाई होगी। वहाँ जोड़ने की बात होगी न कि किसी एक पक्ष की बात सुनकर फैंसला सुनाने की जल्दबाजी होगी। मुझे उम्मीद है कि सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले के बाद आने वाले समय में अब तमाम महिलाओं को तीन तलाक की त्रासदी झेलनी नहीं पड़ेगी। धर्म की आड़ लेकर पुरुषों ने जिस तरह से महिलाओं को लगातार तलाक के डंडे से पीटा, सताया और बेसहारा छोड़ दिया, समझिए कि यह दु:स्वप्न अब खत्म हुआ। आखिर तभी तो मुस्लिम समाज के सारे कठ-मुल्ले सर्वोच्च न्यायालय के इस फैसले के बाद अपनी-अपनी खोपड़ी पीट रहे हैं और कवि ओम प्रकाश तिवारी ने इसे व्यंग्य की निम्न पंक्तियों में यों कहा है-

'मुल्ला जी चेतो जरा खोल बुद्धि का लॉक,
अब मनमानी से नहीं होगा ट्रिपल तलाक।
होगा ट्रिपल तलाक न रोएगी अब बेगम,
लेकर बेलन हाथ तुम्हें कर देगी बेदम।
नहीं चलेगा आज शाहबानो साहल्ला,
रहे खोपड़ी पीट तभी सारे कठ-मूल्ला।'

(114)प्रश्नः निजता के अधिकार को मूल अधिकार में तब्दील करने का सुप्रीम कोर्ट का फैसला किन-किन मायने में महत्वपूर्ण है?

उत्तर: सुप्रीम कोर्ट की नौ-सदस्यीय पीठ ने विगत 24 अगस्त, 2017 को निजता के अधिकार को संविधान के अनुच्छेद-21 के तहत जीवन के अधिकार का हिस्सा मानकर जो फैसला दिया है वह ऐतिहासिक तो है ही कई मायने में महत्वपूर्ण भी है। अब इसे संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत जीवन का अधिकार माने जाने से निजता के अधिकार का दर्जा मूलभूत अधिकार का हो गया है। इसके साथ ही यह भी तय हो गया है कि जबतक कोई ऐसा न्यायसंगत कानून और प्रक्रिया न हो, जो किसी की निजता में ताक-झाँक की इजाजत देती हो, तबतक इस अधिकार का उल्लंघन नहीं किया जा सकता है।

यह एक ऐतिहासिक फैसला इसलिए भी है कि आतंकवाद से युद्ध के बहाने बढ़ते राज्य के हस्तक्षेप और प्रौद्योगिकी के बहाने बढ़ती साइबर घुसपैठ के विरूद्ध लोकतांत्रिक देश के सदस्य छतरी प्रदान करता है, जिसे अभी खोलना बाकी है। हालांकि इस फैसले में आधार कार्ड को हर प्रकार की आर्थिक गतिविधि से जोड़ने को अनिवार्य किए जाने के विरूद्ध साफ तौर पर कुछ नहीं कहा गया है, लेकिन निजता को मौलिक अधिकार मानकर अदालत ने उस दिशा में संकेत दे दिया है।

निजता का अधिकार मूल अधिकार बन जाने के बाद विभिन्न सरकारी योजनाओं एवं अन्य क्रियाकलापों के साथ सब्सिडी वितरण में आधार के इस्तेमाल पर सुप्रीम कोर्ट की पाँच सदस्यीय पीठ का फैसला कुछ भी हो, यह तय है कि सरकार को रेलयात्रा आदि में आधार के अनिवार्य इस्तेमाल को औचित्यपूर्ण साबित करने के साथ ही लोगों की निजी जानकारियों से संबंधित डेटा के रख-रखाव और सुरक्षा के लिए पुख्ता उपाय करने होंगे।

इस फैसले में एक उल्लेखनीय बात यह है कि निजता के अधिकार

पर फैसला देने वाली नौ-सदस्यीय संविधान पीठ में शामिल जज डी. वाई. चंद्रचूड़ ने आपातकाल के दौरान एडीए मजबलपुर मामले में अपने पिता जज वी. आई. चंद्रचूड़ द्वारा दिए गए फैसले को उलटकर न्यायिक गरिमा की एक नई मिसाल पेश की है।

दरअसल, जीवन का अधिकार हमारा मौलिक अधिकार है। सर्वोच्च न्यायालय ने निजता को भी इसके बराबर माना है। अदालत की नौ जजों की संविधान पीठ ने 63 साल पुराने फैसले को पलटते हुए कहा कि निजता अब देश के हर नागरिक का मौलिक अधिकार है । आमतौर पर ऐसा देखा जा रहा था कि पुलिस, सेना, बैंक, कर विभाग आदि सरकारी एजेंसियाँ अपराध की रोकथाम या राष्ट्रीय सुरक्षा का अस्पष्ट-सा कारण देकर नागरिकों की निजता के उल्लंघन को जायज बताती रही हैं। राज्यों की पुलिस और केंद्र में सीबीआई तथा आयकर विभाग को लेकर लगातार यह धारणा और शंका बनी हुई है कि ये संस्थाएँ सत्तारूढ़ दल के इशारे पर राजनीतिक विरोधियों को दबाने या मटियामेट करने के लिए भी काफी तत्परता से काम करती हैं। यह भी संभव है कि यह प्रवृत्ति देश को निरंकुश तानाशाही की ओर भी ले जा सकता है। निजता का अधिकार समाज में विभिन्न मतों, नए विचारों, अभिव्यक्ति की आज़ादी, स्वस्थ आलोचना, लोकतांत्रिक विमर्श और समाजिक, राजनीतिक व नैतिक प्रगति की न केवल आवश्यक शर्त है, बल्कि जरूरी बुनियाद भी है। कुछ इसी को ध्यान में रखते हुए संविधान पीठ ने फैसले में कहा है कि 'सूचनागत निजता, निजता के अधिकार का एक पहलू है।' यह स्वीकारते हुए सरकार से आग्रह किया गया है कि वह डेटा प्रोटेक्शन की मजबूत व्यवस्था स्थापित करें। सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले को अमल में लाने के लिए राजनीति के अलावा अनेक व्यावहारिक चुनौतियाँ आ सकती हैं, जिन्हें राजनीतिक सहयोग से ही हल किया जा सकता है। सरकार को अब साबित करना होगा कि उसके द्वारा ली गयी जानकारी तर्कपूर्ण है। अभी तक निजता के मौलिक अधिकार नहीं होने से सरकार के असीमित अधिकार थे।

इस प्रकार क्रेडिट कार्ड, इन्कम टैक्स रिटर्न भरते समय की गई घोषणाएँ, सोशल नेटवर्किंग प्लेटफॉर्मों पर दी गई जानकारी और इसी तरह की सार्वजनिक जानकारियों को साझा न करने के लिए अब नागरिकों को संवैधानिक संरक्षण मिल गया है। डिजिटल होती इस दुनिया में आज के समय देश की एजेंसियाँ अपने देशवासियों की हर गतिविधि पर नजर रख रही हैं। ऐसे में नागरिकों की निजता की रक्षा करने की दिशा में सुप्रीम कोर्ट

का यह फैसला मील का पत्थर साबित होगा, ऐसा मेरा विश्वास है। न्यायपालिका के निर्भीक रवैए और प्रयासों की वजह से ही राजनेताओं-बाबा की अंदरूनी सांठ-गांठ उजागर हुई। त्रासदी यह है कि 38 लोगों की बलि चढ़ने के बाद जनता की आँखें खुलीं कि राजनेता व कथित बाबा किस तरह उनके भरोसे के साथ खिलवाड़ करते हैं। हकीकत तो यह है कि राजनेता कभी किसी धार्मिक नेता का विरोध नहीं करना चाहते, क्योंकि वे उसके समर्थकों का वोट पाना चाहते हैं। दरसअल, मतदाताओं की धार्मिक भावनाओं का दोहन करने के लिए वे इनका महिमामंडन करते हैं।

(115)प्रश्नः क्या आप भी इस बात से सहमत हैं कि सर्वोच्च न्यायालय ने 2002 के दंगों में ध्वस्त हुए धार्मिक स्थलों के पुनर्निमाण के लिए सरकारी सहयोग को खारिज करके उचित ही किया है? आखिर क्यों?

उत्तरः हाँ, मैं भी इस बात से सहमत हूँ कि सर्वोच्च न्यायालय ने गुजरात में 2002 के दंगों में ध्वस्त हुए धार्मिक स्थलों के पुनर्निर्माण के लिए सरकारी सहयोग को खारिज करके उचित ही किया है, क्योंकि इससे राज्य का धर्मनिरपेक्ष चरित्र खंडित होता है।

दरअसल, 2002 में गोधरा में हुए दंगों में जो पाँच सौ अराधना स्थल नष्ट हुए थे उनकी मरम्मत के लिए गुजरात सरकार को गुजरात उच्च न्यायालय ने आदेश दिया था। इस आदेश के विरूद्ध गुजरात सरकार की याचिका को स्वीकार करके सुप्रीम कोर्ट ने याचिका पर बहस के दौरान दलील सुनने के बाद कहा कि संविधान का अनुच्छेद 27 धार्मिक स्थलों के रखरखाव के लिए जनता पर कर लगाने की इजाजत नहीं देता। इसलिए सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्रा की दो सदस्यीय खंडपीठ ने व्यक्तियों को आवासीय और वाणिज्यिक स्थलों के नुकसान के लिए सभी को पचास-पचास हजार रुपए की अनुग्रह राशि देना इस आधार पर सही माना है कि संविधान के अनुच्छेद 21 में दिए जीवन और निजी स्वतंत्रता के अधिकार के तहत यह सहयोग जायज है, मगर संविधान के अनुच्छेद 27 धार्मिक स्थलों के रखरखाव के लिए जनता पर कर लगाने की इजाजत नहीं देता। इसलिए गुजरात सरकार धार्मिक स्थलों में ऐसी मदद नहीं कर सकती।

सुप्रीम कोर्ट के नए मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्रा की दो-सदस्यीय पीठ का यह फैसला भारतीय इतिहास की उस घटना की याद दिलाता है,

जिसमें भारत के उप प्रधानमंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल ने सोमनाथ के टूटे हुए मंदिर का सरकारी खर्च से जीर्णोद्धार करवाने से इनकार कर दिया था। उनकी साफ दलील थी कि सरकार धर्म-निरपेक्ष है और उसका काम मंदिर-मस्जिद बनवाना नहीं है। राज्य के इसी धर्मनिरपेक्ष चरित्र का दबाव उन नेताओं पर भी पड़ना चाहिए, जो जिम्मेदार पदों पर बैठने के बाद सरकारी आवासों में पूजा और गंगाजल से सफाई का धार्मिक अभियान चलाते हैं। इससे राज्य का धर्मनिरपेक्ष चरित्र खंडित होता है। इसी आधार पर एक बार डॉ. राम मनोहर लोहिया ने भी तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद द्वारा वाराणसी में ब्राह्मणों के चरण धोने की कड़ी निंदा की थी। राज्य को अपने चरित्र में धर्मनिरपेक्षता रखनी होगी और वह तभी कायम होगी जब उसके शीर्ष पदों पर विराजमान लोग अपने व्यवहार में विचलन न करें। समाज के विभिन्न संप्रदायों और संगठनों का यह दायित्व बनता है कि वे दूसरे समुदाय की आहत भावनाओं पर मरहम लगाने में सहयोग करें। अगर हिंदुओं के पूजा स्थल टूटे हैं तो मुस्लिम सहयोग करें और अगर मुस्लिमों के धार्मिक स्थल टूटे हैं तो हिंदू सहयोग करें।

(116)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि 1993 में मुंबई में हुए भीषण और मुंबई को लहूलुहान करने वाले बम धमाके के सात अपराधियों को विशेष टाडा अदालत द्वारा सजा सुनाए जाने से यह कहा जा सकता कि आखिरकार इंसाफ पूरा हुआ? क्यों?

उत्तरः हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि 1993 में मुंबई में हुए सबसे भीषण और मुंबई को लहूलुहान करने वाले बम धमाके के सात अपराधियों को विशेष टाडा अदालत द्वारा सजा सुनाए जाने से यह नहीं कहा जा सकता कि आखिरकार इंसाफ पूरा हुआ, क्योंकि इस हमले के अगुआ दाउद इब्राहिम सहित दो दर्जन से अधिक अपराधी अभी भी फरार हैं।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि 1993 का मुंबई बम ब्लास्ट एक ऐसा दर्द दे गया, जिसकी टीस देश के हर हिस्से के लोग समान रूप से महसूस करते हैं, क्योंकि धमाकों में 257 लोगों की मौत हो गई थी, जबकि 713 गंभीर रूप से घायल हुए थे। 24 साल बाद धमाकों के पीड़ितों के जख्मों पर विशेष टाडा अदालत ने ताहिर मर्चेन्ट और फिरोज राशिद खान को जहाँ फाँसी की सजा सुनाई है, वहीं अबू सलेम और करीमूल्लाह खान को आजीवन कारावास और रियाज सिद्दीकी को 10 साल की सजा सुनाई गई है।

निश्चित रूप से यह फैसला स्वागत योग्य है, लेकिन फैसला आने में 24 साल का इतना लंबा समय का लग जाना कहीं न कहीं पीड़ितों की पीड़ा को बढ़ाने वाला रहा, क्योंकि देर से आने वाला फैसला अक्सर हौसला तोड़ने का काम करता है। यह बात ठीक है कि यह बहुत आसान नहीं है, लेकिन इसे संभव बनाना इसलिए जरूरी है, ताकि न्याय व्यवस्था से लोगों का विश्वास न डगमगाए। हाँ, इतना अवश्य है कि अपराधियों को विगत 7 सितंबर, 2017 को सजा सुनाए जाने के साथ कानूनी प्रक्रिया का एक अध्याय अवश्य पूरा हुआ, लेकिन इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि इसमें जरूरत से ज्यादा बिलम्ब हुआ। हालांकि यह भी सही है कि इस विलम्ब का एक कारण इन पाँचों अपराधियों का बाद में पकड़ा जाना रहा और इसके पहले इसी मामले में 2006 में करीब सौ लोगों को सजा सुनाई जा चुकी है। फिर भी इसे ठीक नहीं कहा जा सकता कि आतंक के गंभीर मामलों का निपटारा होने में इतनी देर लगे कि पीढ़ियाँ बदल जाएँ।

(117)प्रश्नः गुरुग्राम के रेयान इंटरनेशनल स्कूल में कक्षा दो के मासूम छात्र प्रद्युम्न हत्याकांड प्रकरण में सुप्रीम कोर्ट ने जिस सख्त लहजे का इस्तेमाल करते हुए उसने बच्चों की सुरक्षा को एक स्कूल से न जोड़कर पूरे देश का मामला बताया, क्या इसे सभी स्कूलों खासकर निजी स्कूलों के लिए चेत जाने का संकेत नहीं कहा जाएगा?

उत्तर: जी, हरियाणा स्थित गुरुग्राम के रेयान इंटरनेशनल स्कूल में कक्षा दो के मासूम छात्र प्रद्युम्न हत्याकांड प्रकरण में सुप्रीम कोर्ट ने जिस सख्त लहजे का इस्तेमाल करते हुए उसने बच्चों की सुरक्षा को एक स्कूल से न जोड़कर पूरे देश का मामला बताया, इसे सचमुच सभी स्कूलों खासकर निजी स्कूलों के लिए चेत जाने का संकेत कहा जाएगा, क्योंकि शीर्ष अदालत की यह टिप्पणी इस लिहाज से भी गंभीर हो जातीं है कि आए दिन स्कूल परिसर में जिस तरह से बच्चों की जान जा रही है, उसके बारे में संजीदगी के साथ सोचने का वक्त आ गया है। अगर किसी मासूम की हत्या पर भी स्कूल प्रबंधन अपनी लापरवाही पर पर्दा डालने की साजिश रचे तो यह बर्दाश्त के बाहर की बात है। शायद स्कूल के इसी सतही और 'सब कुछ चलता है' के तौर-तरीके पर सुप्रीम कोर्ट ने अपनी सुनवाई के दौरान ऐसी टिप्पणी की।

दरअसल, छात्र प्रद्युम्न ठाकुर के पिता वरुण ठाकुर एवं अधिवक्ताओं के एक समूह द्वारा सर्वोच्च न्यायालय में स्कूलों में सुरक्षा व्यवस्था को लेकर विगत 11 सितम्बर, 2017 को एक याचिका दाखिल किए जाने और इस

मामले को स्वत: संज्ञान में लिए जाने के बाद सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्र की अध्यक्षता में बनी तीन न्यायाधीशों की पीठ ने केंद्र सरकार, राज्य सरकार एवं सीबीआई को तो नोटिस जारी किया ही, साथ ही हरियाणा के डीजीपी और सीबीआई को भी नोटिस जारी कर तीन सप्ताह में जाँच रिपोर्ट तलब करने को कहा है। अदालत ने सुनवाई के दौरान यह भी कहा कि स्कूल अपनी हद में रहें और बच्चों की सुरक्षा समेत तमाम आशंकाओं को दूर करने के प्रति गंभीर बनें, यही देश के हर मां-बाप की ख्वाहिश है। पेट काटकर मोटी फीस देने के पीछे बच्चे की कैरियर को परवान चढ़ाने की इच्छा ही सर्वोपरि होती है।

देखना है शीर्ष अदालत की इस बात का कितना असर स्कूल प्रबंधन पर पड़ता है। अभी तो सिर्फ एक जाँच एजेंसी की रिपोर्ट आई है, जिसमें रेयान स्कूल की कई सारी गलतियों बाहर आई हैं। चमक-दमक और ब्रांड के नाम पर माँ-बाप को भरमाने के खेल से स्कूलों को बाहर आने के लिए सरकार और अदालत के इस प्रयास की सराहना स्वागत योग्य है, फिर भी प्रद्युम्न हत्याकांड में सरकार ऐसा कुछ जरूर करे, जो आगे चलकर एक नजीर बने। स्कूलों में हो रहे हादसों से देश के जनमानस में बेचैनी व असुरक्षा की भावना फैल रही है। ऐसे में मेरे ख्याल से प्रशासनिक, प्रबंधकीय और वित्तीय उपायों के साथ-साथ वैधानिक उपायों की भी जरूरत है। आपको याद होगा 2009-2010 में शिक्षा का अधिकार कानून (आरटीईएक्ट) लागू किया गया था और सभी निजी स्कलों की 25 प्रतिशत सीटें निर्धन वर्ग के विद्यार्थियों के लिए आरक्षित की गई थीं। मुझे लगता है कि इसी कानून में एक ऐसा प्रावधान जोड़ा जा सकता है, जो हर स्कूली बच्चे को स्कूल में शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक सुरक्षा की गारंटी प्रदान करे।

(118) प्रश्न: भारत में लंबे समय से जेल सुधार की माँग के मद्देनजर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा हाल ही में सभी राज्य सरकारों को कैदियों की काउंसलिंग के लिए काउंसलर व सहायक नियुक्त करने के लिए जारी निर्देश क्या नई उम्मीद जगाते हैं?

उत्तर: हाँ, भारत में लंबे समय से जेल सुधार की माँग के मद्देनजर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पिछले 15 सितम्बर, 2017 को सभी राज्य सरकारों को कैदियों की काउंसलिंग के लिए काउंसलर व सहायक नियुक्त करने के लिए जारी 11 सूत्रीय दिशा-निर्देशों से नई उम्मीद जगाते हैं। इसके साथ ही सर्वोच्च न्यायालय ने सभी उच्च न्यायालयों से ऐसे कैदियों के परिजनों की

पहचान के लिए याचिका दर्ज करने को कहा है जिनकी 2012 के बाद मृत्यु अप्राकृतिक कारणों के चलते हुई है, ताकि उन्हें मुआवजा दिया जा सके। एक ताजा रिपोर्ट के अनुसार अकेले 2015 में 115 कैदियों की मौत अप्राकृतिक कारणों से हुई है।

दरअसल, भारतीय जेलों की हालत किसी से छिपी नहीं है। अधिकतर जेलों में क्षमता से अधिक कैदी बंद हैं। इनमें से तकरीबन दो तिहाई कैदी अंडरट्रायल हैं। कई बार ऐसे कैदी मुकदमें का फैसला आने तक अपराध से भी लंबी सजा काट चुके होते हैं। क्षमता से अधिक संख्या होने के चलते वह अमानवीय परिस्थितियों में रह रहे होते हैं। वहीं काउंसलिंग की सुविधा न होने का सबसे बड़ा खामियाजा पहली बार अपराध कर जेल पहुँचने वालों को उठाना पड़ता है जो सही दिशा न मिलने की वजह से जेल से बाहर आने के बावजूद दोबारा अपराध की राह पकड़ लेते हैं। ऐसे में जेल सुधारों को लंबे समय तक टाला नहीं जाना चाहिए। अतीत में जेल सुधारों की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया, जिसके चलते हालात बिगड़े। ऐसी स्थिति में सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश जहाँ एक ओर इस मामले में नई उम्मीद जगाते हैं, वहीं दूसरी ओर सरकारों को भी इस दिशा में आवश्यक कदम उठाने से पीछे नहीं हटना चाहिए।

यदि सर्वोच्च न्यायालय के दिशा निर्देशों पर अमल हो सके तो जेलों और साथ ही बाल सुधार गृहों की दयनीय दशा को बदला जा सकता है, लेकिन देखना यह है कि ऐसा हो पाता है या नहीं? यह सवाल मैं इसलिए खड़ा कर रहा हूँ, क्योंकि सर्वोच्च न्यायालय ने 2006 में पुलिस सुधारों को लेकर जो सात सूत्रीय दिशा निर्देश जारी किए थे उनकी कुल मिलाकर अनदेखी ही हुई है। ऐसे निराशाजनक अनुभव को देखते हुए सर्वोच्च न्यायालय को अपने स्तर पर यह सुनिश्चित करना चाहिए कि सरकारें जेलों में सुधार के साथ-साथ पुलिस सुधारों की दिशा में भी तेजी से आगे बढ़ें। अच्छा होगा कि सर्वोच्च न्यायालय यह महसूस करे कि न्यायिक सुधारों की ओर बढ़ने और अदालतों को मुकदमों के बोझ से मुक्त करने का समय आ गया है। चूँकि हमारी अदालतें मुकदमों के बोझ से बुरी तरह दबी हैं, इसलिए तमाम विचाराधीन कैदी सालों-साल जेलों में सड़ते रहते हैं। अच्छा होगा कि ऐसी कोई व्यवस्था बने जिससे इसकी सतत निगरानी हो सके कि दिशा निर्देशों पर अमल हो रहा है या नहीं।

(119) प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि कलकत्ता उच्च न्यायालय के फैसले और फटकार के बाद प. बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी सरकार को एक ओर जहाँ नीर-क्षीर ढंग से फैसला लेना सीखने की जरूरत है, वहीं दूसरी ओर यह भी आवश्यक है कि आम जनता दशहरा और मुहर्रम इस तरह मनाए कि सारे देश में सद्भाव का संदेश जाए?

उत्तर: हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि कलकत्ता उच्च न्यायालय के हाल के फैसले और फटकार के बाद ममता सरकार को एक ओर जहाँ नीर-क्षीर ढंग से फैसला लेना सीखने की जरूरत है, वहीं दूसरी और यह भी आवश्यक है कि आम जनता दशहरा और मुहर्रम इस तरह मनाए कि सारे देश को सद्भाव का संदेश जाए, क्योंकि साल 2017 के मुहर्रम के दिन दुर्गा प्रतिमा विसर्जन पर ममता सरकार के द्वारा रोक लगाए जाने के आदेश को खारिज करते हुए कलकत्ता उच्च न्यायालय ने प. बंगाल सरकार को जिस तरह कड़ी फटकार लगाई उसके बाद तो मुख्यमंत्री ममता बनर्जी को अपनी गलती का अहसास हो जाना चाहिए, क्योंकि उनकी सरकार ने कानून एवं व्यवस्था बनाए रखने के नाम पर दशहरे को शाम से लेकर अगले पूरे दिन यानी मुहर्रम और एकादशी के अवसर पर प्रतिमा विसर्जन पर रोक लगाकर तुष्टीकरण की राजनीति का परिचय देने का काम किया था। चूँकि राज्य सरकार के इस फैसले से एक पक्ष ही प्रभावित होता दिख रहा था। इसलिए उसका न केवल विरोध हो रहा था, बल्कि यह सवाल भी उठ रहा था कि क्या ममता बनर्जी के शासन में बंगाल के हिंदू-मुस्लिम आपसी सद्भाव के साथ अपने-अपने त्योहार नहीं मना सकते? इसके साथ यह भी सवाल उठता है कि अन्य राज्यों की सरकारें ममता सरकार की तरह दूर्गा प्रतिमा के विसर्जन पर रोक के आदेश आखिर क्यों नहीं देतीं? यह तो अच्छा हुआ कि कलकत्ता उच्च न्यायालय ने प्रतिमा विसर्जन पर लगाई रोक को हटाने का अंतरिम आदेश देने के साथ ही राज्य सरकार को यह जरूरी नसीहत भी दी कि वह नियमन और प्रतिबंध के बीच का अंतर समझे। इस प्रकार प. बंगाल में मुहर्रम के दिन देवी दुर्गा की प्रतिमाएँ विसर्जित करने पर लगी रोक हटाकर कलकत्ता उच्च न्यायालय ने समाज को भाईचारा कायम करने का एक संदेश और मौका दिया है और समाज के तानेबाने पर भरोसा जताया है।

यह भी समझने वाली बात है कि जब पिछले वर्ष यानी 2016 में भी ममता सरकार को ऐसे ही फैसले की वजह से उच्च न्यायालय की फटकार सुननी पड़ी थी तब भी उसने वैसा ही काम फिर क्यों किया? इससे

तो ऐसा लगता है कि ममता बनर्जी येन-केन-प्रकारेण अल्पसंख्यकों का हितैषी दिखने के लिए बेकरार हैं। ममता बनर्जी एक ओर धर्मनिरपेक्षता का झंडा उठाए हुई है और दूसरी ओर उनकी सरकार एक के बाद एक फैसला ले रही है जबकि सरकार को चाहिए कि हिंदू-मुसलमानों के बीच विभाजन करने से बाज आए।

(120)प्रश्नः राष्ट्रीय हरित न्यायाधिकरण (एनजीटी) ने देशभर के मजदूरों, किसानों, मानवाधिकार संगठनों और पर्यावरण प्रेमियों के विरोध और असहमति का आँगन बन चुके दिल्ली के जंतर-मंतर रोड पर धरना और प्रदर्शन करने पर स्थाई रोक लगाकर आखिर क्या संदेश दिया है?

उत्तरः राष्ट्रीय हरित न्यायाधिकरण(एनजीटी) ने देश भर के मजदूरों, किसानों, मानवाधिकार संगठनों और पर्यावरण प्रेमियों के विरोध और असहमति का आँगन बन चुके दिल्ली के जंतर-मंतर रोड पर धरना और प्रदर्शन करने पर स्थाई रोक लगाकर यह संदेश दिया है कि लोकतंत्र में वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पूर्ण नहीं है। वह साफ सुथरे और शांत जीवन के अधिकार से बड़ी नहीं है।

सर्वोच्च न्यायालय की एक शाखा के रूप में काम करने वाला एनजीटी प्रदूषण हटाने, पर्यावरण को बचाने और साफ-सफाई कायम करने के आदेश देता रहता है। सरकारें कभी उसे लागू करती हैं और कभी मुँह फेरे रहती हैं। इसके बावजूद एनजीटी का 1981 के वायु प्रदूषण कानून के उल्लंघन के आधार पर दिया गया यह आदेश तत्काल प्रभाव से लागू किया गया है। एनजीटी ने जिस याचिका के आधार पर रोक लगाई है, उसमें कहा गया था कि यहाँ पर गोरक्षा आंदोलन के लिए लोग गोवंश और बैलगाड़ियाँ लेकर आने लगे हैं। इसके कारण गंदगी व शोर बढ़ता है और स्थानीय लोगों को जीवन दूभर हो जाता है। हाल में भी तमिलनाडु के किसानों ने भी जंतर-मंतर पर प्रदर्शन में गंदे तरीकों का सहारा लिया था। उससे पहले 'आप' पार्टी की सभा में राजस्थान के एक किसान के पेड़ पर चढ़कर फाँसी लगाने से विवाद हुआ था। तथ्य यह भी है कि जंतर-मंतर पर बनाए गए स्थायी-अस्थायी टॉयलेट वहाँ आने वाले लोगों को संभालने में सक्षम नहीं है। गंदगी और प्रदूषण को ही आधार बनाकर कभी दिल्ली में बोट क्लब पर होने वाली रैलियों को प्रतिबंधित कर दिया था और उन्हें संसद के नजदीक जंतर-मंतर रोड पर अस्थायी स्थल के तौर पर अनुमति दी गई थी।

एनजीटी के इस फैसले से सफाई के सवाल के साथ लोकतंत्र और व्यवस्था का द्वंद्व भी उभरा है। लोकतंत्र का कारोबार सिर्फ पाँच सालों में होने वाले चुनाव से संपूर्ण नहीं होता। उसके भीतर सहमति के साथ असहमति के लिए जगह देनी ही होती है। देखना है जंतर-मंतर रोड पर होने वाले विरोध प्रदर्शनों को अब कहाँ जगह मिलती है और उनका स्वरूप क्या होता है।

(121) प्रश्नः सर्वोच्च न्यायालय ने फौजदारी मामलों में किसी समझौते के आधार पर मामले को खत्म किए जाने के विरूद्ध जो सख्त फैसला दिया है क्या उसके दूरगामी असर होंगे? कैसे?

उत्तरः हाँ, सर्वोच्च न्यायालय ने फौजदारी मामलों में किसी समझौते के आधार पर मामले को खत्म किए जाने के विरूद्ध जो सख्त फैसला दिया है उसके दूरगामी असर अवश्य होंगे, क्योंकि अब डरा धमकाकर और लेन-देन के माध्यम से मामलों को रफा-दफा करने का चलन बंद होगा। सर्वोच्च न्यायालय ने डकैती, दुष्कर्म और हत्या जैसे मामलों में अदालत के बाहर पक्षकारों के बीच होने वाले किसी समझौते के तहत मामले को रफा-दफा किए जाने का आधार मानने से इनकार किया है और कहा है कि उन अपराधों का समाज पर गंभीर असर पड़ता है और समाज चाहता है कि ऐसे मामले चलते रहें। सर्वोच्च न्यायालय के इस फैसले से वैसे विडंबनापूर्ण मामले भी नहीं होंगे जिनमें दुष्कर्म करने वाला पीड़ित से विवाह करने को तैयार हो जाए तो अदालत मामले को खत्म कर देती थी। यानी जेल गए बिना सुधरने की कोई गुँजाइश नहीं है और न्याय को खरीदे और दबाए जाने की आशंका घट गई है। न्यायालय ने फौजदारी मामलों के समकक्ष धोखाधड़ी के मामलों को रखकर दूसरी व्यवस्था दी है। अदालत की यह व्यवस्था मौजूदा शासन के उस रूख के भी अनुकूल है कि भ्रष्टाचार के मामले में किसी तरह की माफी नहीं दी जाएगी।

अब आर्थिक अपराध भी उतने ही गंभीर माने जाएँगे जितने मानव शरीर के प्रति होने वाले अपराध। अदालत की यह व्यवस्था समाज में बढ़ते जातिगत और सांप्रदायिक अपराधों के लिहाज से भी स्वागत योग्य है। इससे कमजोर लोगों के दमन और अल्पसंख्यकों पर अत्याचार के मामलों में दोषी को सजा मिलने की संभावना बढ़ती है। इसके बावजूद मुझे ऐसा लगता है कि अदालत इस बात की गारंटी कैसे करेगी कि सुरक्षा और जाँच एजेंसियाँ अपना काम किसी पक्षपात के बिना करेंगी और उसमें निर्दोष लोगों को नहीं फँसाया जाएगा। जब जाँच एजेंसियाँ राजनीतिक हथियार बन जाएँ तो न्याय

पर उसका असर पड़ना स्वाभाविक है। ऐसे में अदालत को अपनी इस कठोर व्यवस्था के साथ न्यायिक विवेक की भी गुँजाइश रखनी होगी।

(122)प्रश्नः यदि कोई पत्नी अपने पति के साथ नहीं रहना चाहती तो पति को शादी में बाँधे रखना भी क्या मानसिक क्रूरता नहीं माना जाएगा?

उत्तरः हाँ, यदि कोई पत्नी अपने पति के साथ नहीं रहना चाहती तो पति को शादी में बाँधे रखना भी मानसिक क्रूरता माना जाएगा। सर्वोच्च न्यायालय ने हाल ही में 17 साल से अलग रह रहे प. बंगाल के एक जज दंपती का तलाक मंजूर कर लिया है यह कहते हुए कि पूरी तरह खत्म हो चुकी शादी में पति को बाँधे रखना और तलाक की प्रक्रिया में शामिल न होने को कोर्ट ने महिला की मानसिक क्रूरता माना।

इससे पहले क्रूरता का आधार साबित नहीं होने पर निचली अदालतों ने तलाक मंजूर नहीं किया था। सुप्रीम कोर्ट ने संविधान की धारा-142 के तहत विशेषाधिकार का इस्तेमाल कर यह फैसला सुनाया। प. बंगाल के जज दंपती ने 1992 में विवाह किया था। घरेलू विवाद के बाद वर्ष 2000 से दोनों अलग रहने लगे। पति ने तलाक के लिए जिला अदालत में अर्जी दायर की। क्रूरता साबित नहीं करने के आधार पर 6 अगस्त, 2009 को अर्जी खारिज हो गई थी।

(123)प्रश्नः क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि सुप्रीम कोर्ट वर्ष 2017 की दिवाली के मौके पर दिल्ली और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में पटाखों की बिक्री पर पाबंदी लगाकर जहाँ सांस लेने में राहत का उपाय किया है, वहीं धार्मिक और व्यावसायिक नजरिए से विवाद भी पैदा हो गया है?

उत्तरः हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि सुप्रीम कोर्ट ने इस साल यानी 2017 की दिवाली के मौके पर दिल्ली तथा राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में पटाखों की बिक्री पर पाबंदी लगाकर जहाँ सांस लेने में राहत का उपाय किया है, वहीं धार्मिक और व्यावसायिक नजरिए से विवाद भी पैदा हो गया है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि दिवाली के मौके पर प्रदूषण की वैश्विक राजधानी बन जाने वाली दिल्ली को बचाने के लिए सुप्रीम कोर्ट कई वर्षो से मुस्तैद है और उसने पटाखे फोड़ने के नियम और समय निर्धारित कर रखे हैं। पिछले साल यानी 2016 में भी सुप्रीम कोर्ट ने पटाखों पर पाबंदी लगाई थी, लेकिन वह आदेश दिवाली के बाद की गतिविधियों के लिए था। इस साल ऐन दिवाली के मौके पर कुछ बच्चों की याचिका के आधार पर देश के

सर्वोच्च न्यायालय ने यह जानने के लिए पटाखों की बिक्री प्रतिबंधित करने का निर्णय लिया है कि इससे दिल्ली का वातावरण पर कितना फर्क पड़ेगा। इस पाबंदी के ठीक पहले अदालत ने एक पटाखा उत्पादक की याचिका पर अस्थायी निर्माण और बिक्री की अनुमति दे दी थी। बाद में बच्चों की तरफ से आई पुकार पर ध्यान देकर यह कहते हुए कठोर फैसला लिया गया कि कानून और समाज के बीच अंतर नहीं रहना चाहिए। निश्चित तौर पर दिल्ली और एनसीआर के वृद्ध और बच्चे इस क्षेत्र के प्रदूषण से परेशान हैं और दिवाली के मौके पर दिल्ली दुनिया का सबसे प्रदूषित शहर बन जाता है। इसकी तस्वीर भी उपग्रहों पर आती रही हैं और प्रदूषण मानने की इकाई पीएम भी तीन गुना बढ़ी पाई गई। इसके बावजूद दिवाली के मौके पर पटाखे फोड़ने की लंबी परंपरा है और उसका एक धार्मिक-सांस्कृतिक पक्ष भी है। यही कारण है कि कई तर्कवादी नागरिकों ने भी इस पक्ष की ओर ध्यान दिलाया है। दूसरा पक्ष व्यापारियों और उससे जुड़े कर्मचारियों का है। दुकानों पर पचास लाख किलो पटाखे बिक्री का इंतजार कर रहे हैं और यह कारोबार 1000 करोड़ रुपए का है। अगर पहले अस्थायी अनुमति न मिली होती, तो वे शायद ही इतना भंडार जमा करते। विडंबना यह है कि पटाखे चलाने पर रोक नहीं है। ऐसे में लोग पहले से खरीदे पटाखे चला सकते हैं या एनसीआर के बाहर से खरीदकर ला सकते हैं। समाज को बेहतर बनाने के लिए न्यायालय का प्रयोग करना स्वागत योग्य है, लेकिन वह जोर का झटका धीरे से लगाए तो समाज को संभलने और सुधरने का मौका मिलता है। फिर भी मेरा मानना है कि पटाखों की बिक्री पर अदालत द्वारा लगाया गया प्रतिबंध न केवल वायु प्रदूषण को रोकने में कारगर साबित हो सकता है, बल्कि ध्वनि प्रदूषण को भी कम कर पाएगा।

(124)प्रश्नः सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 18 वर्ष से कम उम्र की लड़की से शारीरिक संबंध बनाने को दुष्कर्म करार दिए जाने को क्या आप दूरगामी प्रभाववाला ऐतिहासिक फैसला मानते हैं? आखिर क्यों?

उत्तरः हाँ, विगत 11 अक्टूबर, 2017 को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 18 वर्ष से कम उम्र की लड़की से शारीरिक संबंध बनाने को दुष्कर्म करार दिए जाने को मैं दूरगामी प्रभाववाला ऐतिहासिक फैसला इसलिए मानता हूँ, क्योंकि कोर्ट ने कहा है कि 15 से 18 वर्ष की पत्नी के साथ शारीरिक संबंध बनाने को दुष्कर्म की श्रेणी से बाहर रखने वाले आईपीसी की धारा 375 का अपवाद (2) शादीशुदा और गैर शादीशुदा लड़कियों के बीच बेवजह का

भेद करता है। यह अंतर बनावटी है और बच्चियों के हित में नहीं है। ऐसे मामलों में कार्रवाई के लिए सीआरपीसी की धारा 186(6) में दी गई 18 वर्ष से कम आयु की पत्नी से दुष्कर्म पर तय प्रक्रिया का पालन किया जाएगा। इसके मुताबिक पत्नी को घटना के एक साल के भीतर पति के खिलाफ शिकायत करनी होगी। तभी कोर्ट उस शिकायत पर संजान लेगा।

यह व्यवस्था न्यायाधीश मदन बी सोकुर और न्यायाधीश दीपक गुप्ता की पीठ ने गैर सरकारी संस्था 'इंडिपेंडेंट थॉट' की याचिका पर दी है। दोनों न्यायाधीशों ने अलग-अलग फैसला देते हुए एक-दूसरे से सहमति जताई है। कोर्ट ने पोक्सो अन्य बाल कानूनों को आईपीसी की धारा 375 के अपवाद (2) को नए ढंग से परिभाषित किया है। कोर्ट ने कहा कि आईपीसी के इस अपवाद को अब से पढ़ा जाएगा कि 'अगर कोई व्यक्ति अपनी पत्नी जिसकी उम्र 18 वर्ष से कम नहीं है शारीरिक संबंध बनाता है तो उसे दुष्कर्म नहीं माना जाएगा।' फैसले का असर विवाह संस्था और पति-पत्नी के आपसी रिश्ते पर भी पड़ेगा।

सुप्रीम कोर्ट का यह फैसला इसलिए भी ऐतिहासिक माना जाएगा, क्योंकि इत्तेफाक से यह फैसला अंतरराष्ट्रीय बालिका दिवस के अवसर पर सुनाया गया है, जो निश्चय ही स्त्री सशक्तीकरण की दिशा में एक बड़ा कदम है। इससे समाज में एक व्यापक बदलाव की शुरुआत हो रही है। भारत का शर्मनाक शिशू मृत्युदर के पीछे भी एक बड़ा कारण था, लिहाजा इस फैसले से कई मामलों में बदलाव आएँगे।

सुप्रीम कोर्ट ने 18 वर्ष से कम उम्र की पत्नी के साथ यौन संबंध को दुष्कर्म करार देकर जहाँ बाल अधिकारों के बारे में समाज और सरकार को कड़ा संदेश दिया है, वहीं बेटी बचाओ की दिशा में एक साहसिक कदम उठाया है। बाल विवाह रोकने और अव्यस्क लड़कियों के स्वास्थ्य, भविष्य और सम्मान की रक्षा के लिए दिया गया यह फैसला न सिर्फ कानूनी लिहाज से दूरदर्शी है, बल्कि सामाजिक लिहाज से बड़ी हलचल पैदा करने वाला है।

(125)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि हाल के भारतीय इतिहास के सबसे रहस्यमय और सनसनीखेज आरूषि-हेमराज हत्याकांड में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा आरोपी तलवार दंपति यानी उसके माता-पिता को बरी किए जाने का फैसला कई सवालों का जन्म देने वाला है?

उत्तरः हाँ, मुझे ऐसा लगता है कि हाल के भारतीय इतिहास के सबसे

रहस्यमय और सनसनीखेज आरूषि-हेमराज हत्याकांड में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा आरोपी तलवार दंपति यानी उसके माता-पिता को बरी किए जाने का फैसला कई सवालों का जन्म देने वाला है, क्योंकि उच्च न्यायालय द्वारा आरोपी पिता डॉ. राजेश तलवार और माँ नूपुर तलवार को आईपीसी की धारा 302 के तहत उम्र कैद की सजा से बरी कर दिया गया है। ट्रायल कोर्ट के फैसले के चार साल बाद दंपत्ति को संदेह का लाभ देते हुए बरी कर दिया है, तब पहला सवाल तो यह उठा है कि क्या अब न्याय हुआ है? और दूसरा सवाल यह कि आखिर आरूषि और घरेलू सहायक हेमराज को किसने मारा? दुर्भाग्य से यह वह सवाल है जिसका जवाब न तो सीबीआई के पास है और न ही न्यायपालिका के पास।

आरूषि और हेमराज की हत्या के मामले में पहले तो उत्तर प्रदेश पुलिस किसी नतीजे पर नहीं पहुँच सकी और अब उच्च न्यायालय के फैसले से यह स्पष्ट हो गया कि सीबीआई की जाँच भी ढाक के तीन पात वाली रही। ऐसा संभवत: इसलिए हुआ, क्योंकि उत्तर प्रदेश पुलिस ने देश-दुनिया का ध्यान खींचने वाले नोएडा के इस हत्याकांड की जाँच बेहद खराब तरीके से की। क्या इससे हास्यास्पद और कुछ हो सकता है कि जिस घर में आरूषि की हत्या हुई उसकी छत पर घरेलू सहायक हेमराज का शव पड़ा था, लेकिन पुलिस उसकी खोजबीन किए बिना लौट गई? जबतक जाँच सीबीआई के पास आती तबतक तमाम साक्ष्यों से छेड़छाड़ हो चुकी थी। रही-सही कसर साक्ष्यों को मिटाने की कोशिश ने पूरी कर दी। सीबीआई की मानें तो साक्ष्य मिटाने का यह काम खुद तलवार दंपति ने किया। सबसे बड़ी बात तो यह दिखती है कि घरेलू सहायक की कोई खोज-खबर किए बिना तलवार दंपति अपनी बेटी का अंतिम संस्कार करने हरिद्वार निकल गए थे। यह बात ठीक है कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने तलवार दंपति को साक्ष्यों के अभाव में उसका लाभ देकर बरी कर दिया है, लेकिन उन दोनों को निर्दोष करार नहीं दिया है। न्याय तो तभी होगा जब यह पता चलेगा कि आरूषि की हत्या किसने की, क्यों की और जब अपराधी को सजा मिलेगी।

(126) प्रश्न: विगत 27 अक्टूबर 2017 को खतरनाक ब्लू व्हेल गेम पर चिंता जताते हुए इस पर रोक लगाने के सुप्रीम कोर्ट के फैसले को आप किस रूप में आँकते हैं?

उत्तर: भाई करण जी, सुप्रीम कोर्ट ने बच्चों की जान ले रहे ब्लूव्हेल गेम पर चिंता जताते हुए अपने फैसले में जो निर्देश जारी किए हैं वह स्वागत योग्य है।

उल्लेख्य है कि विगत 27 अक्टूबर, 2017 को ब्लूव्हेल गेम पर रोक लगाने की माँगवाली याचिका पर सुनवाई के दौरान मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्रा की अध्यक्षतावाली पीठ ने माता-पिता और बच्चों को इस खतरनाक खेल के प्रति जागरूक करने के लिए खेल के दुष्परिणामों पर दूरदर्शन को 10 मिनट का प्रोग्राम बनाने का निर्देश दिया। साथ ही कहा है कि ये प्रोग्राम प्राइम टाइम पर हर टीवी चैनल पर चलाया जाए, ताकि बच्चे इसके जाल में न फँसे।

डॉ. करण जी, मैं आपको यह भी बता दूँ कि ब्लूव्हेल गेम पर रोक लगाने की माँगवाली जनहित याचिका पर सुनवाई के दौरान दिए गए निर्देश के पहले सरकार की ओर से पेश एएसजीपी नरसिम्हन ने कहा कि सरकार ने ब्लूव्हेल गेम की जाँच करने और इस पर रोक लगाने के लिए एक विशेषज्ञ समिति गठित की है। समिति तीन सप्ताह में अपनी रिपोर्ट सरकार को सौंपेगी जिसमें इसे रोकने के लिए किए जाने वाले उपायों को भी बताए जाएँगे। नरसिम्हन ने यह भी बताया कि अभी तक ब्लूव्हेल गेम के 28 मामले सामने आए हैं। ये खेल किसी वेबसाइट आदि पर सामान्य तौर पर उपलब्ध नहीं है इसलिए इस पर रोक लगाना मुश्किल हो रहा है। सरकार ने गूगल और वाट्सएप से सहयोग माँगा है। बच्चों को इसके प्रति जागरूक करने के लिए महिला एवं बाल विकास मंत्रालय व एचआरडी मंत्रालय ने स्कूलों को जरूरी निर्देश जारी किए हैं। सुप्रीम कोर्ट इस मामले में 30 नवम्बर 2017 को फिर सुनवाई करेगा।

सुप्रीम कोर्ट ने सरकार को ब्लूव्हेल गेम से बच्चों को बचाने की दिशा में सकारात्मक कदमों की शुरुआत के लिए जन-जागरण अभियान चलाने का निर्देश दिया है।

डॉ. करण कुमार जी, आप तो स्वयं बच्चों के भविष्य बनाने के लिए शैक्षिक संस्थानों को दिशा दे रहे हैं, इस लिहाज से आप इस बात से अवगत होंगे कि ब्लूव्हेल गेम दरअसल, कम्प्यूटर या मोबाइल फोन पर खेला जाने वाला एक खेल ही नहीं, बल्कि यह एक क्रूर चुनौती है जो बच्चों को अपने मोहपाश में फँसाती है और उन्हें धीरे-धीरे आत्महत्या की ओर ले जाती है। भारत ही नहीं, दुनिया के सभी समाज इससे परेशान हैं। रूस से शुरुआत इस खेल को वहीं के एक कुंठित युवा ने की थी जो इस समय वहाँ की जेल में है, लेकिन फिर भी यह खेल अभी जारी है। इसलिए इस खेल को मात देने के लिए हमें अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय होना पड़ेगा और

ब्लूव्हेल गेम के खिलाफ तमाम संगठनों और सभी देशों का एक सक्रिय गठजोड़ तैयार करना होगा।

एन. एस. पोन्नैया नामक याचिकाकर्ता ने अपनी याचिका में ब्लूव्हेल के खतरों का जिक्र करते हुए कहा था कि भारत में इस खतरनाक गेम की लत से शिकार हुए सौ से ज्यादा बच्चों ने आत्महत्याएँ कर ली हैं। करण जी, शायद आपने सुना या पढ़ा होगा कि सोशल मीडिया के जरिए चलने वाले इस गेम में हिस्सा लेने वाले बच्चों को 50 दिन तक रोजाना एक चुनौती सौंपी जाती है। इन चुनौतियों के तहत बच्चे अपने आपको नुकसान पहुँचाने के लिए प्रेरित किए जाते हैं, जैसे शरीर के किसी हिस्से में चीरा लगाना या सूई घुसाना। अंतिम दिन की चुनौती है-अपने आपको खत्म कर लेना। कुछ बच्चों को इस गेम में रोमांच का अनुभव होने लगता है, तो कुछ बहकावे में आकर इसे खेलते हैं। कुछ ऐसे होते हैं, जिन्हें एक बार गेम में आने के बाद बाहर निकलने नहीं दिया जाता और तमाम तरह से डराया-धमकाया जाता है। यह गेम दुनिया भर में सैकड़ों बच्चों की आत्महत्याओं का कारण बन चुका है।

कुछ इसी ख्याल से सुप्रीम कोर्ट ने इस ब्लूव्हेल गेम जैसे खतरनाक ऑनलाइन खेलों पर रोकथाम के लिए अहम कदम उठाए हैं। मेरी समझ से देश में इंटरनेट संचालन के ढाँचे में ही कोई रास्ता निकाला जाए, जो ऐसे गेमों को बच्चों तक पहुँचने से रोक दे या फिर अभिभावकों और बच्चों को इतना जागरूक बना दिया जाए कि वे इंटरनेट के खतरों से अपनी सुरक्षा कर सकें।

(127)प्रश्नः न्यायिक कामकाज में क्षेत्रीय भाषाओं को समुचित स्थान और महत्व नहीं दिए जाने तथा देश में गरीबों को न्याय मिलने में देरी किए जाने पर राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद जी ने जो चिंता जाहिर की है क्या उसे जायज नहीं कहा जाएगा?

उत्तरः कामेश्वर बाबू, हाँ, न्यायिक कामकाज में क्षेत्रीय भाषाओं को समुचित और महत्व नहीं दिए जाने तथा देश में गरीबों को न्याय मिलने में देरी किए जाने पर भारत के राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद जी ने पिछले दिनों केरल उच्च न्यायालय के हीरक जयंती समारोह के समापन कार्यक्रम को संबोधित करते हुए हमारे देश में निर्णय देने में जो विलंब किया जाता है उसपर उनकी चिंता जाहिर करना मेरी समझ से बिल्कुल जायज इसलिए है, क्योंकि कई बार व्यवस्था की वजह से भी न्याय देने में देरी होती है, तो कई बार देरी से मिलने वाली न्यायिक प्रक्रिया इसके लिए जवाबदेह होती है। राष्ट्रपति जी ने

इस बाबत सुझाव दिया कि अदालत की कार्यवाही को लंबा खींचने की रणनीति की बजाय हम उस दृष्टिकोण पर विचार कर सकते हैं, जिसमें एक आपात स्थिति में स्थगन को अपवाद बनाया जाए। यह बात भले ही बहुत छोटी-सी लगे, लेकिन जिनसे जुड़ी है, उनके लिए बड़ी बात है। राष्ट्रपति जी ने इसी वजह से मामलों के तीव्र निस्तारण की भी वकालत की, क्योंकि न्याय में देरी होने से समाज में सबसे गरीब और सबसे वंचित पीड़ित हो रहे हैं।

कामेश्वर बाबू, इसी प्रकार राष्ट्रपति जी ने उच्च न्यायालयों के फैसले संबंधित पक्षों को उनकी अपनी भाषा में उपलब्ध कराने की बात कही, क्योंकि उच्च न्यायालयों और सर्वोच्च न्यायालयों में कागजात और फैसले अँग्रेजी में होते हैं। यदि स्थानीय भाषाओं को भी तरजीह दी जाए, तो बड़ी आबादी के लिए कानूनी प्रक्रिया और फैसलों तथा उनके खास बिंदुओं को समझ पाना आसान हो जाएगा। हमारे देश में अँग्रेजी बोलने और समझने वालों की संख्या बहुत कम है तथा जो इस भाषा को ठीक समझते हैं, वे अमूमन समाज के उच्च एवं उच्च मध्यवर्ग के लोग होते हैं। मुकदमों में उलझे अधिकतर लोगों को कानूनी प्रक्रिया में पूरी तरह से अधिवक्ता और न्यायिक अधिकारियों पर निर्भर रहना पड़ता है। यदि वादी और प्रतिवादी को उनकी भाषा में दस्तावेज मुहैया कराए जाएँ तो उन्हें स्थिति को समझने में सहूलियत होगी।

कामेश्वर बाबू, आप तो स्वयं उच्च न्यायालय के एक अधिवक्ता हैं और राष्ट्रपति जी की इस चिंता से वाकिफ होंगे, क्योंकि आपको तो प्रतिदिन वादी तथा प्रतिवादी को उनकी भाषा में दस्तावेज समझाना पड़ता होगा। इसलिए मैं उम्मीद करता हूँ कि राष्ट्रपति की इन दो सलाहों पर शासन-प्रशासन गंभीरता से गौर करेगा और उसे लागू करने पर विचार करेगा, ताकि सही मायनों में आम लोगों को लोकतांत्रिक आकांक्षाओं की पूर्ति हो सके।

(128)प्रश्नः कानून में क्या कोई ऐसा नियम है कि कोई लड़की किसी अपराधी से प्यार नहीं कर सकती?

उत्तरः भाई सतीश जी, आप तो स्वयं उच्च न्यायालय के एक वकील होने के नाते इस बात से वाकिफ होंगे कि सर्वोच्च न्यायालय एक मुस्लिम युवक शैफिन जहां की अर्जी पर सुनवाई कर रहा है, क्योंकि शैफिन और धर्म बदल कर अखिला अशोकन द्वारा एक मुस्लिम युवक से शादी किए जाने के बाद केरल उच्च न्यायालय ने एनआईए को केरल में लव जिहाद बताते हुए दोनों की शादी को रद्द कर दिया था जिसे शैफिन ने महिला की

आजादी का अपमान बताते हुए यह आदेश खारिज करवाने के लिए एक और अर्जी दायर कर रखी है।

सुप्रीम कोर्ट ने विगत 30 अक्टूबर, 2017 को एनआईए से पूछा कि क्या कोई कानून बालिग लड़की को किसी अपराधी से प्यार या शादी करने से रोकता है। भारत के मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्रा की पीठ ने युवती के पिता को आदेश दिया कि वह अपनी पुत्री को 27 नवम्बर, 2017 को कोर्ट में पेश करे, ताकि पीठ यह देख सके कि वह बिना दबाव के सहमति देने की स्थिति में है या नहीं। पीठ ने यह भी कहा कि किसी व्यक्ति की पसंद कुचली नहीं जा सकती।

प्रधान न्यायाधीश दीपक मिश्रा, न्यायामूर्ति ए. एम. खानविल्कर और न्यायमूर्ति डी. वाई. चंद्रचूड़ की तीन सदस्यीय पीठ ने युवती के पिता की ओर से पेश वकील श्याम दीवान से कहा कि 27 नवम्बर, 2017 को खुली अदालत में इस युवती से बातचीत करके उसकी मन:स्थिति जानने के साथ ही यह पता लगाने का प्रयास भी करेगी कि क्या उसने स्वेच्छा से विवाह की सहमति दी थी। वकील श्याम दीवान ने दावा किया कि युवती का कथित पति शैफीन जहाँ एक कट्टर व्यक्ति है राज्य में पॉपुलर फ्रंट ऑफ इंडिया जैसे अनेक संगठन समाज को कट्टर बनाने में संलिप्त है।

(129)प्रश्न: आधार को मोबाइल फोन सेवा के लिए जरूरी बनाने को लेकर प. बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी द्वारा अदालत का दरवाजा खटखटाने के बाद अदालत ने उनसे पूछा कि क्या कोई राज्य सरकार संसद की ओर से बनाए गए कानून को चुनौती दे सकती है? इस पर आपकी क्या प्रतिक्रिया है?

उत्तर: कामेश्वर बाबू, आपको मैं बताऊँ कि व्यक्ति की पहचान के सत्यापन के लिए बारह अंकों की आधार संख्या हर स्थिति में जरूरी है या नहीं, इस पर बहस अभी जारी है। इसमें नया मोड़ तब आया, जब केंद्र सरकार ने आधार की अनिवार्यता के लिए कानून बना दिया। इस कानून की संवैधानिक कसौटी पर सर्वोच्च न्यायालय में सुनवाई चल रही है। चूंकि मामला न्यायिक प्रक्रिया के अधीन है, सो इससे जुड़े तमाम पक्षों के लिए फिलहाल सब्र करना ही एकमात्र रास्ता है। मगर प. बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी ने यह सब्र न कर सकी और आधार को मोबाइल फोन सेवा के लिए जरूरी बनाने को लेकर उन्होंने अदालत का रास्ता चुना और सरकारी योजनाओं को आधार से जोड़ने के खिलाफ उन्होंने याचिका दायर की जिसमें उन्हें सुप्रीम

कोर्ट में मुँह की खानी पड़ी और ममता बनर्जी को एक तरह से कोर्ट की फटकार लगी, क्योंकि एक तो उक्त याचिका उनकी ही पहल पर शीर्ष अदालत पहुँची और दूसरी बात यह कि वह खुद इस तरह के बयान देने में भी संकोच नहीं कर रही थीं कि भले ही सरकार उनका मोबाइल बंद कर दे, लेकिन वह उसे आधार से नहीं जोड़ेगी। सच तो यह है कि संघीय ढाँचे के भीतर एक सूबे की मुख्यमंत्री के रूप में ममता बनर्जी को किसी आम नागरिक की तरह अपनी याचिका दायर करनी होगी, न कि एक मुख्यमंत्री के रूप में।

दरअसल, संघीय ढाँचे को चुनौती देने वाली ममता बनर्जी के रवैए से यह संदेह होना स्वाभाविक है कि कहीं वह अवैध बांग्लादेशी नागरिकों के हित की चिंता में तो आधार का विरोध नहीं कर रही हैं? जो भी हो, यह किसी से छिपा नहीं है कि वह प. बंगाल में अवैध रूप से आ बसे लोगों के लिए कुछ ज्यादा ही परेशान रहती हैं। यह पहली बार नहीं जब ममता बनर्जी और उनकी सरकार ने संकीर्ण राजनीति के तहत केंद्र सरकार के किसी फैसले का विरोध किया हो। आधार को मोबाइल फोन से जोड़ने अथवा उसके कारण कथित तौर पर निजता का हनन होने पर संविधान पीठ का फैसला जो भी हो, मगर इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि सरकारी योजनाओं को आधार से जोड़ने से करोड़ों रुपए की बचत होने के साथ पात्र लोगों को ही सब्सिडी मिलना सुनिश्चित हुआ है। इस तथ्य के बाद भी अगर कोई सरकारी योजनाओं के लाभार्थियों को आधार से जोड़ने की योजना का विरोध करता है तो इसका एक ही मतलब है कि उसके इरादे नेक नहीं। सच तो यह है कि एक ओर काँग्रेस सहित विपक्षी नेता आधार को शुरू करने का श्रेय लेते हैं, तो दूसरी ओर उसके इस्तेमाल को बढ़ाने की तरह-तरह के बहानों के जरिए विरोध भी करते हैं।

(130)प्रश्नः क्या आपका ऐसा नहीं लगता है कि सुप्रीम कोर्ट ने सरकार को नेताओं पर मुकदमों की सुनवाई के लिए विशेष अदालतें बनाने का आदेश देकर राजनीति का अपराधीकरण रोकने का स्वागत योग्य प्रयास किया है?

उत्तरः सतीश जी, सुप्रीम कोर्ट ने भाजपा नेता और वकील अश्विनी कुमार उपाध्याय की याचिका पर सुनवाई करते हुए सरकार को नेताओं पर मुकदमों की सुनवाई के लिए विशेष अदालतें गठित करने का आदेश देकर राजनीति का अपराधीकरण रोकने का स्वागत योग्य कदम उठाया है। कोर्ट ने विशेष

अदालतें गठित करने पर छह सप्ताह में सरकार से योजना पेश करने को कहा है। चुनाव आयोग ने भी राजनीति की सफाई के लिए सजायाफ्ताओं के चुनाव लड़ने पर आजीवन रोक का कोर्ट में समर्थन किया है। वकील उपाध्याय ने भी अपनी याचिका में सजायाफ्ता जनप्रतिनिधियों के चुनाव लड़ने पर आजीवन रोक लगाने की माँग की है। केंद्र की ओर से पेश एडीशलन सॉलिसिटर जनरल एएनएस नादकर्णी ने भी कहा कि सरकार राजनीति से अपराधीकरण दूर करने का समर्थन करती है।

सतीश जी, मैं तो कहता हूँ कि जितना जरूरी यह है कि ऐसी विशेष अदालतें गठित हो उतना ही यह भी कि वे नेताओं के मामलों का तेजी से निस्तारण करती हुई भी दिखें। यह अपेक्षा इसलिए, क्योंकि कई बार फास्ट ट्रैक अथवा विशेष अदालतों का कामकाज भी सुस्त गति से आगे बढ़ता दिखता है। यदि विशेष अदालतें भी तारीख पर तारीख के सिलसिले से दो-चार होती रहती हैं या फिर संबंधित नेता किसी-न-किसी बहाने अपने मामलों की सुनवाई में अड़ंगा डालने में सफल होते रहते हैं तो फिर उनके गठन का उद्देश्य ही विफल हो जाएगा। ऐसा किसी भी कीमत पर नहीं होने दिया जाना चाहिए।

वैसे भी किसी लोकतंत्र के लिए यह शुभ नहीं है कि गंभीर आरोपों से घिरे जनप्रतिनिधि विधानमंडलों की शोभा बढ़ाएँ। इसके अतिरिक्त इसकी भी अनदेखी नहीं की जा सकती कि जब बड़ी संख्या में जनप्रतिनिधि संगीन आरोपों से घिरे होने के बावजूद सार्वजनिक जीवन में सक्रिय बने रहते हैं तो फिर कानून के शासन के प्रति आम आदमी की आस्था डिगती है। दागी प्रतिनिधियों की संख्या बढ़ते चले जाने से न केवल विधि के शासन का उपहास उड़ता है, बल्कि राजनीति के अपराधीकरण को बल भी मिलता है।

दरअसल, इस देश में रसूखवाले लोग अपने मामलों की सुनवाई को बाधित करने में बड़ी आसानी से सफल रहते हैं। यह किसी से छिपा नहीं है कि कई बार ऐसे मामलों की सही तरह से सुनवाई तब हो पाती है जब उनका स्थानांतरण किसी अन्य जिले या राज्य में करना पड़ता है। इन्हीं सब कारणों को देखते हुए सुप्रीम कोर्ट ने दागी जन-प्रतिनिधियों से जुड़े मामलों की सुनवाई के लिए विशेष अदालतें गठित करने का आदेश दिया जो स्वागत योग्य है।

जनप्रतिनिधियों के खिलाफ चल रहे आपराधिक मामलों के निबटारे के लिए फास्ट ट्रैक अदालतों के गठन और राजनीतिक तंत्र को दागियों से

मुक्त कराने के लिए आजीवन प्रतिबंध जैसे मुद्दों पर जारी बहस को सर्वोच्च न्यायालय ने नई दिशा दी है। दरअसल, एक ओर जहाँ राजनीतिक हठधर्मिता ने राजनीतिक सुधार को चर्चाओं तक सीमित रखा, वहीं दूसरी ओर ज्यादातर दलों ने अभियुक्तों को न केवल अपने राजनीतिक संरक्षण में पाला-पोसा, बल्कि धन-बल और भ्रष्टाचार के इन पैरोकारों को नीति निर्माता बनने का मौका दिया। जिस प्रकार सरकार को तलब कर सर्वोच्च न्यायालय ने एक बार फिर से राजनीतिक शुद्धीकरण की कवायद की है, उससे नयी उम्मीद जगी है।

यह बहुत ही चिंता और अफसोस की बात है कि देश की जनता और देश की शीर्ष अदालत सर्वोच्च न्यायालय दोनों मिलकर राजनीति को शुद्ध बनाने की कोशिश तो कर रहे हैं, मगर राजनीतिक वर्ग ने खुद को भ्रष्टाचार मुक्त करने को लेकर पिछले दो दशक से कोई भी कदम नहीं उठाया है, जो साफ दिख रहा है। सच तो यह है कि बीस सालों में यदि राजनीति को शुद्ध करने के लिए किसी ने कोशिश भी की, तो उसका राजनीतिक दलों ने जमकर विरोध ही किया है और एक दागी नेताओं के मामले में राजनीतिक वर्ग कुछ भी करने को तैयार नहीं है।

(131)प्रश्नः दिल्ली सरकार के अधिकारों के मसले पर सुप्रीम कोर्ट की संविधान पीठ ने जो फैसला देते हुए अपनी टिप्पणी में कहा कि संविधान के अनुच्छेद 239-एए दिल्ली के मामले में अनूठा है और पहली नजर में ऐसा लगता है कि अन्य केंद्र शासित प्रदेशों के मुकाबले यहाँ उपराज्यपाल को अधिक अधिकार दिए गए हैं और यहाँ उप राज्यपाल को संवैधानिक प्रमुख माना गया है इसपर आपकी क्या प्रतिक्रिया है?

उत्तर: पिछले दिनों दिल्ली सरकार के अधिकारों के मसले पर सुप्रीम कोर्ट की पाँच सदस्यीय संविधान पीठ ने सुनवाई के दौरान अपनी राय व्यक्त की है कि अन्य केंद्रशासित राज्यों के मुकाबले यहाँ उपराज्यपाल को अधिकार दिए गए है और दिल्ली के उपराज्यपाल को संवैधानिक प्रमुख माना गया है। दिल्ली सरकार के लिए उनकी सहमति जरूरी है, लेकिन दिल्ली सरकार की फाइलें दबाकर नहीं बैठ सकते। उन्हें तर्कसंगत फैसला समय पर लेना चाहिए और मतभिन्नता होने के कारण सहित फाइल राष्ट्रपति को भेजनी चाहिए, ताकि उस संचिका पर उचित निर्णय राष्ट्रपति ले सकें।

दरअसल, मेरे ख्याल से कायदे से दिल्ली सरकार को इस व्यवस्था

के खिलाफ सुप्रीम कोर्ट के समक्ष जाने की कहीं कोई आवश्यकता ही नहीं थीं, क्योंकि यह व्यवस्था मोदी सरकार ने नहीं बनाई। यह तो पहले से ही चली आ रही है। निःसंदेह ऐसा भी नहीं है कि आम आदमी पार्टी के नेताओं को चुनाव मैदान में उतरने से पहले यह पता न हो कि वे जिस दिल्ली पर शासन करने का स्वप्न देख रहे हैं उसके संचालन के तौर-तरीके क्या हैं? यदि उन्हें ऐसी कोई जानकारी नहीं थी तो इसके लिए वे अपने अलावा अन्य किसी को दोष नहीं दे सकते। अरविंद केजरीवाल और उनके सहयोगियों को पहले ही दिन से इससे अवगत होना चाहिए था कि केंद्र शासित प्रदेश और साथ ही देश की राजधानी होने के नाते दिल्ली के पास वैसे अधिकार नहीं हो सकते जैसे अन्य राज्यों के हैं। यह मानने के अच्छे-भले कारण हैं कि दिल्ली सरकार के अधिकारों का मसला इसलिए सुप्रीम कोर्ट के समक्ष गया, क्योंकि केजरीवाल हर मामले में अपने हिसाब से और यहाँ तक कि अपनी हदों को पार करके भी दिल्ली सरकार चलाना चाह रहे थे। उनके इसी चाहत ने केंद्र सरकार से टकराहट की स्थिति पैदा की और शायद इसी वजह से उन्हें इस प्रतिकूल टिप्पणी का सामना करना पड़ा कि लगता है कि दिल्ली सरकार कानून के हिसाब से काम नहीं करना चाह रही है। उचित यह होगा कि आम आदमी पार्टी के नेता यह स्मरण करें कि शीला दीक्षित ने वर्तमान की तरह से सीमित अधिकारों के साथ ही दिल्ली पर लंबे समय तक शासन किया। उनके शासन का एक कालखंड ऐसा भी था जब केंद्र में भाजपा के नेतृत्ववाली सरकार थी।

मेरी समझ से अगर केजरीवाल दिल्लीवालों के हित की चिंता कर रहे हैं तो फिर उन्हें उपराज्यपाल के साथ मिलकर सरकार चलानी चाहिए। चूँकि ताली दोनों हाथ से बजती है इसलिए उपराज्यपाल को भी दिल्ली सरकार के सहयोगी और मार्गदर्शक के रूप में दिखना चाहिए। सुप्रीम कोर्ट की संविधान पीठ ने तो यह भी कहा है कि दिल्ली सरकार बताए कि आखिर उपराज्यपाल उसके किन अधिकारों को अतिक्रमण कर रहे हैं? जब तक वह नहीं बताएँगी कि एलजी कहाँ क्षेत्राधिकार से बाहर जाकर काम कर रहे हैं, तबतक उनके लिए सुनवाई करना संभव नहीं होगा।

(132)प्रश्नः चुनाव आयोग द्वारा झारखंड के पूर्व मुख्यमंत्री मधु कोड़ा को 2009 के लोकसभा चुनाव में हुए खर्च का ब्योरा नहीं सौंपने पर उन्हें तीन वर्ष तक चुनाव नहीं लड़ने के लिए अयोग्य घोषित किए जाने पर आपकी क्या प्रतिक्रिया है?

उत्तर: मुख्य चुनाव आयुक्त ए.के. ज्योति और चुनाव आयुक्त ओ. पी. रावत की ओर से विगत 27 सितम्बर, 2017 को जारी आदेश में जनप्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 10ए का हवाला देते हुए 2009 के लोकसभा चुनाव में हुए खर्च का ब्योरा नहीं सौंपने के आरोप में झारखंड के पूर्व मुख्यमंत्री मधुकोड़ा को तीन वर्षों तक चुनाव नहीं लड़ने के लिए अयोग्य घोषित करना एक स्वागत योग्य फैसला किया गया है। चुनाव आयोग में मधु कोड़ा के खिलाफ जनप्रतिनिधित्व कानून की धारा 10ए के तहत सुनवाई चल रही थी, किंतु इसी बीच मधु कोड़ा ने चुनाव आयोग के अधिकार क्षेत्र को दिल्ली उच्च न्यायालय में चुनौती दे दी। 2009 में निर्दलीय सांसद चुने गए कोड़ा को चुनाव आयोग ने 2010 में नोटीस जारी कर पूछा था कि उन्हें क्यों न अयोग्य घोषित कर दिया जाए। आयोग ने कहा था कि उन्होंने वास्तविक राशि 18,92353 रुपए से बहुत कम खर्च दर्शाया है। बाद में दिल्ली उच्च न्यायालय ने आयोग को कोड़ा के खिलाफ कार्रवाई की अनुमति दे दी।

निश्चित रूप से चुनाव आयोग द्वारा मधु कोड़ा को तीन वर्षों तक चुनाव नहीं लड़ने के लिए अयोग्य घोषित किए जाने का फैसला चुनाव सुधार की दिशा में एक अहम कदम है जिसका स्वागत किया जाना चाहिए।

(133)प्रश्न: जब हर क्षेत्र में सुधारों की ओर बढ़ा जा रहा है, तब न्यायिक क्षेत्र में सुधारों पर सिर्फ चर्चा होकर रह जा रही है। आखिर क्यों?

उत्तर: नागेश जी, आपकी बात से मैं भी सहमत हूँ कि जब हर क्षेत्र में सुधारों की ओर बढ़ा जा रहा है तब न्यायिक क्षेत्र में सुधारों पर सिर्फ चर्चा होकर रह जा रही है। इससे भी खराब बात यह है कि न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधायिका अपनी-अपनी जिम्मेदारी एक-दूसरे पर डालकर कर्तव्य की इतिश्री कर रही है। जबकि न्यायिक सुधार उनकी साझी जिम्मेदारी है। इसलिए न्यायिक सुधारों को आगे बढ़ाने के लिए तीनों को एक साथ सक्रिय होने की जरूरत है। खासकर तब जब न्यायालयों में मुकदमों की संख्या बढ़ती जा रही है।

यह बात ठीक है कि पिछले तीन सालों में सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों में लंबित मुकदमों की संख्या में कुछ कमी आई है, मगर निचली अदालतों में लंबित मुकदमों की संख्या घटने की बजाय बढ़ गई। विधि मंत्रालय के आँकड़ों के अनुसार उच्चतम और उच्च न्यायालयों में जहाँ चालीस लाख से अधिक, वहीं निचली अदालतों में लंबित मुकदमों की

संख्या 2.74 करोड़ है। यह आदर्श स्थिति नहीं। विडंबना यह है कि लंबित मुकदमों की इस संख्या को लेकर चिंता जताते हुए करीब दो दशक बीत गए और फिर भी हालात करीब-करीब जस के तस हैं। इसका मुख्य कारण है न्यायिक सुधारों की अनदेखी।

यह ठीक नहीं कि इस बारे में कोई चिंता करता नजर नहीं आता। समस्या केवल यह नहीं है कि निचली अदालतों से लेकर सर्वोच्च न्यायालय तक में पर्याप्त संख्या में न्यायाधीश नहीं हैं। समस्या यह भी है कि विभिन्न स्तरों पर अदालतों को जैसे समाधान चाहिए उनका अभाव दूर तक नहीं हो रहा है। एक बड़ी समस्या सामान्य मुकदमों के निस्तारण में भी तारीख पर तारीख के सिलसिले की है। स्पष्ट है कि मुकदमों के निस्तारण की मौजूदा प्रक्रिया को प्राथमिकता के आधार पर दुरुस्त करने की भी जरूरत है। अच्छा होगा कि इस जरूरत की पूर्ति के लिए सभी मिलकर आगे बढ़ें।

(134)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय का सेनानियों के परिवार को राहत देने वाला अहम फैसला सराहणीय तथा देशहित में है। आखिर कैसे?

उत्तरः हाँ, हाल ही में इलाहाबाद उच्च न्यायालय का सेनानियों के परिवार को राहत देने वाला अहम फैसला सराहणीय और देशहित में है, क्योंकि देश की आजादी के प्रति समर्पित स्वतंत्रता सेनानियों की शहादत को भुलाया नहीं जा सकता है। उन्हें सम्मान मिलना ही चाहिए। इनके आश्रितों को सेनानी कोटे के लाभ से वंचित करना न्यायसंगत नहीं है। इसके आश्रित परिजनों को लाभ पाने का पूरा अधिकार है, जो उन्हें मिलना चाहिए।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों को सम्मान देते हुए उनकी आश्रित पुत्री की पुत्री यानी नतिनी भी सेनानी कोटे को पाने की हकदार है। अदालत ने अपने फैसले में कहा है कि नतिनी को भी आश्रित मानते हुए उसी प्रकार का लाभ दिया जाए जैसे सेनानी की बेटी को मिलता है। न्यायालय ने इस संबंध में डायट के प्राधानाचार्य का आठ जून, 2017 के आदेश को रद्द कर दिया। न्यायमूर्ति पीकेएस वघेल ने मोनिका की याचिका पर सुनवाई करते हुए यह आदेश दिया। साथ ही बेसिक शिक्षा अधिकारी को छह सप्ताह में उसकी नियुक्ति पर नियमानुसार उचित आदेश का निर्देश दिया है। इस प्रकार उच्च न्यायालय का यह फैसला स्वागत योग्य है साथ ही अन्य राज्यों के लिए भी अनुकरणीय है।

(135)प्रश्नः नोएडा के बहुचर्चित आरूषि-हेमराज हत्याकांड में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा तलवार दंपती को बरी किए जाने के बाद लोगों के सामने क्या फिर वही सवाल खड़ा नहीं है कि आरूषि और हेमराज की हत्या किसने की और क्यों की? अगर सचमुच नूपुर तलवार ही दोषी थे तो सीबीआई जैसा संगठन इसे सिद्ध क्यों नहीं कर पाया?

उत्तरः हाँ, नोयडा के बहुचर्चित आरूषि-हेमराज हत्याकांड में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा तलवार दंपति को बरी किए जाने के बाद लोगों के सामने नौ साल बाद भी फिर वही सवाल खड़ा है कि आरूषि और हेमराज की हत्या आखिर किसने की और क्यों की?

आपको मैं बताऊँ कि डॉ. नूपुर तलवार की नाबालिग पुत्री आरूषि की हत्या विगत 15-16 मई, 2008 की रात नोयडा के सेक्टर 25 स्थित घर में ही कर दी गई थी और घर की छत पर उनके घरेलू नौकर हेमराज का शव भी पाया गया था। इस मामले में नोयडा पुलिस ने आरूषि के माता-पिता राजेश तलवार और नूपुर तलवार को नामजद किया था और 23 मई, 2008 को दोनों को गिरफ्तार किया गया। मायावती सरकार ने 29 मई 2008 को इस दोहरी हत्या की जाँच सीबीआई से कराने की सिफारिश की थी। जून, 2008 में सीबीआई ने जाँच शुरू कर एफआईआर दर्ज की। 30 महीने तक चली जाँच के बाद सीबीआई ने 2010 में अदालत ने क्लोजर रिपोर्ट सौंप दी थी। इस मामले की रिपोर्ट विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रीति सिंह की अदालत में समीक्षा के लिए भेजी गई। उन्होंने सीबीआई की क्लोजर रिपोर्ट को सिरे से ही खारिज कर दुबारा जाँच के आदेश दिए। फिर सीबीआई ने अपने वरिष्ठ अधिकारी जीएल कौल को हत्याकांड की पुनः जाँच सौंपी। कौल और उनकी पूरी टीम ने इस मामले की जाँच रिपोर्ट गाजियाबाद में विशेष रूप से गठित सीबीआई अदालत में दुबारा दाखिल की। न्यायाधीश श्याम लाल की अदालत में सीबीआई टीम ने 39 लोगों को बतौर गवाह पेश किया जबकि बचाव पक्ष की ओर से केवल सात साक्ष्य ही सामने आए।

उक्त अदालत ने आरूषि के माता-पिता नूपुर तलवार और राजेश तलवार दोनों पर आईपीसी- की धारा 302/34 (समान उद्येश्य से हत्या करने), 201(साक्ष्यों को छिपाने) के तहत मुकदमा चलाया गया। इसके अलावा आरूषि के पिता डॉ. राजेश तलवार पर एक अन्य पर धारा 203 (फर्जी रिपोर्ट दर्ज कराने) के तहत एक और मुकदमा भी साथ-साथ चला। गाजियाबाद की विशेष अदालत ने आरूषि-हेमराज हत्याकांड में माता-पिता

नूपुर एवं राजेश तलवार को दोषी ठहराते हुए दोनों आरोपियों को आजीवन कारावास तथा क्रमशः 17 हजार रुपए एवं 15 हजार रुपए जुर्माने की सजा सुनाई थी। फिर दोनों ने इस फैसले के खिलाफ इलाहाबाद उच्च न्यायालय में अपील दायर की थी।

विगत 12 अक्टूबर, 2017 को इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने नौ साल के बाद मामले की जाँच में खामियाँ बताते हुए राजेश और नूपुर तलवार को बरी कर दिया। सबूतों के अभाव का हवाला देते हुए उच्च न्यायालय ने कहा कि आरूषि को उसके माता-पिता ने नहीं मारा। कोर्ट ने कहा कि ऐसे मामलों में सुप्रीम कोर्ट भी इतनी कठोर सजा नहीं देती है। साथ ही कोर्ट ने तलवार दंपती को तुरंत जेल से रिहा करने का आदेश भी दिया। न्यायाधीश ए.के. मिश्रा ने फैसला पढ़कर सुनाते हुए कहा कि संदेह का लाभ देते हुए तलवार दंपति को रिहा किया जाता है।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा इस फैसले से तलवार दंपती को बरी किए जाने के बाद आरूषि-हेमराज हत्याकांड एक तरह से अनसुलझा ही रह गया या यूँ कहिए कि जहाँ नौ साल पहले खड़े थे आज भी वहीं खड़े हैं। फैसले के बाद यह सवाल उठना लाजिमी है कि तो फिर कातिल कौन?

मेरा कहना है कि सीबीआई इस फैसले को सुप्रीम कोर्ट में चुनौती देगी या नहीं, यह अभी स्पष्ट नहीं है, लेकिन सीबीआई की असफलताओं की सूची में एक और बहुत बड़ा मामला और बहुचर्चित मामला भी जुड़ गया है। यह ऐसा मामला भी नहीं था, जिसमें किसी तरह का राजनीतिक या कोई और दबाव हो। इस पूरे लंबे दौर में सीबीआई ने हत्याकांड को जो नैरेटिव तैयार किया था, वह उच्च न्यायालय में ध्वस्त हो गया है। अगर सचमुच राजेश और नूपुर तलवार ही दोषी थे, तो सीबीआई जैसा संगठन इसे सिद्ध क्यों नहीं कर पाया? मेरा मानना है कि इतना लंबा समय लेने के बाद भी उसके सबूतों का उच्च न्यायालय में न ठहर पाना चिंता का विषय तो है ही, इसे लेकर उच्च न्यायालय ने एक नहीं कई ऐसी टिप्पणियाँ भी की हैं। इस दृष्टि से देखा जाए तो न सिर्फ पुलिस सुधार की जरूरत है, बल्कि राष्ट्रीय स्तर की जाँच एजेंसियों में भी सुधार करके उसे पेशेवर बनाना होगा।

(136)प्रश्नः सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पत्राचार पाठ्यक्रमों के माध्यम से तकनीकी शिक्षा पर रोक लगाए जाने के फैसले को आप किस रूप में आँकते हैं और क्यों?

उत्तर: सर्वोच्च न्यायालय ने विगत 3 नवम्बर, 2017 को पत्राचार पाठ्यक्रमों

के माध्यम से तकनीकी शिक्षा पर रोक लगाने का फैसला किया है जो महत्वपूर्ण है, क्योंकि ऑल इंडिया कॉंसिल ऑफ टेक्निकल एजुकेशन भी पत्राचार से होने वाले कोर्स को मान्यता नहीं देतो है। इसके बावजूद बड़े पैमाने पर ऐसे पाठ्यक्रम चलाए जा रहे हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने इसी ख्याल से शैक्षणिक संस्थानों से डिस्टेंस एजुकेशन मोड में इंजीनियरिंग जैसे विषयोंवाले कोर्स शुरू नहीं करने को कहा है। यह फैसला महत्वपूर्ण है, क्योंकि अक्सर ऐसा देखा जाता है कि पत्राचार से पढ़ने के कारण छात्रों को व्यावहारिक ज्ञान कम या नहीं होता है।

भाई करण जी, आपको याद होगा दो साल पहले पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने फैसला दिया था कि पत्राचार माध्यम से हासिल की गई कम्प्यूटर साइंस की डिग्री उस छात्र के समान नहीं मानी जा सकती है जिसने नियमित रूप से क्लास करके डिग्री पायी हों।

इस मसले पर सर्वोच्च न्यायालय ने अपने फैसले में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के निष्कर्षों की पुष्टि की, जबकि ओडिशा उच्च न्यायालय के फैसले को खारिज कर दिया। सर्वोच्च न्यायालय के इस फैसले से इंजीनियरिंग जैसे पाठ्यक्रम पर असर पड़ेगा।

सच तो यह है कि अगर तकनीकी पाठ्यक्रम की पढ़ाई में सिर्फ थ्योरी पढ़ाई गई और प्रैक्टिकल नहीं हुआ तो कोई भी उस इंडस्ट्री की बारीकी समझ ही नहीं सकता। निश्चित तौर पर सर्वोच्च न्यायालय का यह फैसला ज्ञान और डिग्री की गुणवत्ता को स्थापित करने के लिए दिया गया है और उन छात्रों को वरीयता देने का प्रयास है जो अपना सारा समय और ध्यान लगाकर बीई और बीटेक जैसी डिग्रियाँ हासिल करते हैं। इस फैसले से उन प्रतिष्ठित संस्थाओं की महत्ता बढ़ेगी जो शिक्षा को गुणवत्ता के दायरे में रखना चाहते हैं।

(137)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि न्यायाधीशों की नियुक्ति, पदोन्नति और तबादलों की प्रक्रिया को लेकर न्यायपालिका और कार्यपालिका के बीच गतिरोध शीघ्र दूर होने की उम्मीद है? आखिर कैसे?

उत्तरः हाँ, मुझे ऐसा लगता है कि न्यायाधीशों की नियुक्ति, पदोन्नति और तबादलों की प्रक्रिया को लेकर न्यायपालिका और कार्यपालिका के बीच गतिरोध शीघ्र दूर होने की उम्मीद है, क्योंकि सर्वोच्च न्यायालय की कॉलेजियम ने उच्च न्यायालयों के अतिरिक्त न्यायाधीशों के कामकाज के

आकलन की व्यवस्था समाप्त करने के फैसले पर केंद्र की आपत्ति के मद्देनजर कुछ सुधार के साथ इसे पुनः लागू करने और न्यायाधीशों की नियुक्ति, पदोन्नति और तबादले की प्रक्रिया में पारदर्शिता लाने के इरादे से इस संबंध में की जानेवाली सिफारिशें न्यायालय की बेबसाइट पर अपलोड करने के प्रशासनिक निर्णय लिए हैं। न्यायमूर्ति आदर्श कुमार गोयल और न्यायमूर्ति उदय यू. ललित की दो सदस्यीय पीठ के इस संबंध में न्यायिक आदेश को सारे गतिरोध को समाप्त करने की दिशा में ठोस पहल के रूप में देखा जा रहा है। पीठ ने स्वीकार किया है कि राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग कानून निरस्त करने वाली संविधान पीठ ने अक्टूबर, 2015 के अपने फैसले में हालांकि मेमोरेंडम ऑफ प्रोसीजर को अंतिम रूप देने के लिए समय सीमा निर्धारित नहीं की थी, लेकिन इस मुद्दे को अनंत काल तक लंबित नहीं रखा जा सकता है।

केंद्र सरकार की आपत्ति के मद्देनजर प्रधान न्यायाधीश दीपक मिश्र की अध्यक्षतावाली पाँच सदस्यीय कॉलेजियम ने पिछले सप्ताह यानी अक्टूबर, 2017 के अंत में सर्वसम्मति से तीन मार्च के निर्णय में थोड़ा सुधार कर दिया। नयी व्यवस्था के तहत अतिरिक्त न्यायाधीशों के कामकाज के आकलन की व्यवस्था बहाल की गयी है। अब इन अतिरिक्त न्यायाधीशों के फैसलों का आकलन सर्वोच्च न्यायालय के दो न्यायाधीशों की समिति करेगी।

सर्वोच्च न्यायालय के उपर्युक्त सुधारों को देखते हुए न्यायाधीशों के रिक्त पदों, नियुक्तियों की प्रक्रिया गति पकड़ेगी, ऐसी उम्मीद की जाती है।

(138)प्रश्नः जम्मू-कश्मीर सहित आठ राज्यों में हिंदुओं को अल्पसंख्यक बताते हुए नए सिरे से अल्पसंख्यकों की पहचान कर नई अधिसूचना जारी करने की याचिकाकर्ता की माँग पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इनकार किए जाने और याचिकाकर्ता को राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग जाने के आदेश पर आपकी क्या प्रतिक्रिया है?

उत्तरः सर्वोच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति रंजन गोंगाई और न्यायमूर्ति नवीन सिन्हा की पीठ ने पिछले दिनों याचिकाकर्ता के वकील अरविंद दत्तार की दलीलें सुनने के बाद जम्मू-कश्मीर सहित आठ राज्यों में हिंदुओं को अल्पसंख्यक बताते हुए नए सिरे से अल्पसंख्यकों की पहचान कर नई अधिसूचना जारी करने की मांग पर विचार करने से इनकार करते हुए, याचिकाकर्ता को राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग जाने का आदेश दिया है, क्योंकि ये चीजें अल्पसंख्यक आयोग ही तय कर सकता है।

उल्लेख्य है कि केंद्र सरकार ने 23 अक्टूबर, 1993 को पाँच समुदायों मुस्लिम, ईसाई, सिख, बौद्ध और पारसी को अल्पसंख्यक समुदाय घोषित किया है और फिर 2014 में जैन समुदाय को भी अल्पसंख्यक समुदाय में शामिल किया है। मेरे ख्याल से सर्वोच्च न्यायालय का यह आदेश न्यायसंगत है, क्योंकि यह तय करना राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग का ही काम है।

(139)प्रश्नः चित्तौरगढ़ की महारानी पद्मावती पर बनी संजय लीला भंसाली की फिल्म को लेकर हुए विवाद पर सुप्रीम कोर्ट के फैसले को आप किस रूप में देखते हैं?

उत्तरः भाई सतीश जी, पहले तो आपको मैं यह बता दूँ कि चितौरगढ़ की महारानी पद्मावती पर बनी संजय लीला भंसाली की फिल्म को लेकर राजपूत करणी सेना, राजस्थान तथा क्षत्रिय राजपूत समाज, गुजरात ने आपत्ति जताते हुए उसे मनोरंजन के नाम पर खिलवाड़ कहा है जबकि फिल्म के निर्माता संजय लीला भंसाली फिल्म में कुछ भी आपत्तिजनक नहीं होने का दावा कर रहे हैं, लेकिन फिलहाल यह मुद्दा थमता नजर नहीं आ रहा है।

दरअसल, फिल्म पद्मावती एक मुस्लिम शासक अलाउद्दीन खिलजी और हिंदू महारानी पद्मिनी के इतिहास पर बनी है। इसके कुछ दृश्यों और फिल्मांकन को करणी सेना और राजपूत समाज ने नाराजगी जताई है जिसकी वजह से यह विवाद फिलहाल थमता नजर नहीं आ रहा है। सुप्रीम कोर्ट ने बॉलीवुड फिल्म पद्मावती की रिलीज पर रोक लगाने संबंधी याचिका पर विगत 10 नवम्बर, 2017 को अस्वीकार करते हुए याचिकाकर्ता को सेंसर बोर्ड से संपर्क करने को कहा है, क्योंकि सेंसर बोर्ड ही किसी भी फिल्म के विभिन्न पहलुओं की जाँच कर फिल्म को प्रमाण पत्र देता है और बोर्ड के पास अनुपालन के लिए पर्याप्त दिशा निर्देश हैं। राजस्थान सरकार भी एक कमेटी बनाने पर विचार कर रही है जिसमें कई इतिहासकारों को शामिल किया जाएगा। इस लिहाज से देखा जाए तो शीर्ष अदालत का आदेश और निर्देश बिल्कुल सही दिखता है।

(140)प्रश्नः क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि प्रदूषण और पर्यावरण को लेकर राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण ने अपने फैसले के माध्यम से उन जगहों के पर्यावरण की सुध ली है, जिन्हें आस्था का केंद्र मानकर अक्सर छोड़ दिया जाता है?

उत्तरः हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि हाल में प्रदूषण और पर्यावरण को लेकर

राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण ने अपने फैसले के माध्यम से उन जगहों के पर्यावरण की सुध ली है, जिन्हें आस्था का केंद्र मानकर अक्सर छोड़ दिया जाता है। हमारे बहुत सारे तीर्थ ऐसी जगहों पर हैं, जो पर्यावरण की दृष्टि से काफी संवेदनशील हैं। मेरा ख्याल है कि आस्था का सम्मान होना चाहिए, लेकिन हमें उस पर्यावरण का ख्याल भी रखना होगा, जो इन आस्था के केंद्रो को सदियों से अपने भीतर संजोता आया है। बेतरतीब निर्माण और बड़ी संख्या में लोगों के आने-जाने से क्या त्रासदी आ सकती है, इसे हम केदारनाथ त्रासदी के वक्त देख चुके हैं। सिर्फ आस्था के केंद्रों ही नहीं, पर्यटन केंद्रों के मामले में भी यही तरीका अपनाना बेहतर होगा।

कुछ इन्हीं वजहों से राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण ने पिछले दिनों ऐसा ही एक फैसला वैष्णों देवी तीर्थ को लेकर दिया है जिसमें कहा गया है कि एक दिन में 50,000 से ज्यादा यात्रियों को त्रिकुता पर्वत के शिखर पर बने वैष्णों देवी तीर्थ पर नहीं जाने देना चाहिए। अगर किसी दिन यात्रियों की संख्या ज्यादा हो जाती है, तो बाकी यात्रियों को पर्वत के आधार क्षेत्र कटरा में ही रोक लिया जाए, या फिर उन्हें आधी ऊँचाई पर बने अर्द्धकुमारी से आगे न जाने दिया जाए।

जम्मू-कश्मीर के इस तीर्थ पर जाने वाले यात्रियों की संख्या पिछले कुछ साल में तेजी से बढ़ी है। खासकर नवरात्र वगैरह में यात्रियों की संख्या काफी तेजी से बढ़ जाती है। उस वक्त इसका प्रबंधन देखने वाले श्राईन बोर्ड पर भी इस भीड़ को लेकर काफी दबाव रहता है। इस दृष्टिकोण से हरित प्राधिकरण का फैसला काफी सोच-समझकर दिया गया है। अधिकरण ने पाया कि इस क्षेत्र में प्रशासन की कूड़े के निस्तारण और सीवेज ट्रीटमेंट की व्यवस्था को हुए एक दिन में 50,000 से ज्यादा तीर्थ यात्रियों को वहाँ जाने की अनुमति नहीं दी जा सकती। अधिकरण ने इसके अलावा वहाँ कूड़ा फैलाने वालों पर 2000 रुपए दंड लगाने का प्रावधान करने की बात भी कही है।

इस प्रकार देखा जाए तो राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण ने जिस आधार पर यह फैसला दिया है, वह काफी महत्वपूर्ण है। मुझे उम्मीद है कि इस फैसले से अन्य जगहों के लिए भी सीख ली जा सकेगी।

(141)प्रश्नः भ्रष्टाचार कहाँ से शुरू होता है? जैसा कि उच्चत्तम न्यायालय ने भी भ्रष्टाचार पर कटाक्ष करते हुए किसी भी काम को कराने के लिए एक निश्चित राशि निर्धारित करने की बात कही है। आप इस पर क्या कहना चाहेंगे?

उत्तर: भाई अरुण जी, आप तो स्वयं उच्च न्यायालय पटना में वकालत कर रहे हैं इस नाते आप भ्रष्टाचार पर उच्चतम न्यायालय के कटाक्ष से परीचित होंगे। मेरी अपनी मान्यता है कि भ्रष्टाचार ऊपर से नीचे की ओर जाता है। यदि किसी कार्यालय या विभाग का प्रमुख रिश्वतखोर होगा और रिश्वत लेकर नियुक्ति करेगा या अपने कार्यालय का और कोई काम बिना रिश्वत लिए नहीं करेगा, तो उसके अधिनस्थ अधिकारी व कर्मचारी तो उससे भी अधिक भ्रष्ट होंगे, क्योंकि उन्हें किसी काम को करने के लिए रिश्वत लेने में किसी का भय नहीं रहेगा।

सच तो यह है कि इस देश में भ्रष्टाचार लोगों के रग-रग में समा गया है और 'रिश्वत' का नाम ही 'सेवा-भत्ता' हो गया है। आखिर तभी तो इस देश के उच्चतम न्यायालय ने भी अपने एक अदालती मामले में कटाक्ष करते हुए काम कराने के एवज में एक राशि निर्धारित कर देने की बात कही थी। हमारे देश में आज इतनी बुरी स्थिति हो गई है कि बिना रिश्वत दिए कोई सरकारी काम होता ही नहीं है। फिर भी मेरा विश्वास है कि यदि कार्यालयाध्यक्ष तथा विभागाध्यक्ष ईमानदार हो जाएँ, तो रिश्वतखोरी बंद तो नहीं, पर बहुत हद तक कम अवश्य हो सकती है।

(142)प्रश्नः पद्मावती फिल्म पर उठे विवाद के दौरान सुप्रीम कोर्ट द्वारा दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल पर बनी डाक्यूमेंटरी 'एन इनसिग्नीफिकेंट मैन' पर रोक लगाने से इनकार करते हुए तीन न्यायाधीशों की पीठ का यह फैसला क्या एक नजीर नहीं है उन लोगों के लिए जो मुकदमों का सहारा लेकर अभिव्यक्ति की आजादी रोकने की कोशिश करते हैं? आखिर कैसे?

उत्तर: हाँ, भाई अरुण कुशवाहा जी, प्रश्न में उठाए गए आपके इस विचार से मैं सहमत हूँ कि पद्मावती फिल्म पर उठे विवाद के दौरान सुप्रीम कोर्ट द्वारा दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल पर बनी डाक्यूमेंटरी 'एन इनसिग्नीफिकेंट मैन' पर रोक लगाने से इनकार करते हुए तीन न्यायाधीशों की पीठ का यह फैसला निश्चित रूप से एक नजीर है उनलोगों के लिए जो मुकदमों का सहारा लेकर अभिव्यक्ति की आजादी को रोकने की कोशिश करते हैं, क्योंकि तीन जजों के इस फैसले में लोकतंत्र के सबसे महत्वपूर्ण अधिकार-अभिव्यक्ति की आजादी पर मूल्यवान संदेश दिया गया है। अदालत की पीठ का साफ कहना है कि कानून में दिए गए प्रतिबंधों के अलावा अभिव्यक्ति की आजादी पर किसी भी रूप में रोक नहीं लगाई जानी चाहिए।

दरअसल, खुशबू रांका और विजय शुक्ला के अरविंद केजरीवाल पर बनाए गए वृत्तचित्र 'एन इनसिग्नीफिकेंट मैन' से केजरीवाल के मुँह पर स्याही पोतने वाले नचिकेता वालहेकर को इसलिए आपत्ति थी, क्योंकि वह केजरीवाल को नायक के रूप में प्रस्तुत करती है, जबकि इस बारे में मुकदमा चल रहा है। उन्हें यह भी आपत्ति थी कि इस फिल्म में केजरीवाल को पीड़ित दिखाया गया है और बाद में अदालत में इसे सबूत के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। अदालत ने भारतीय साक्ष्य अधिनियम का हवाला दिया और फिल्म में कल्पना की छूट देते हुए रचनाकार की स्वतंत्रता को कायम रखने का समर्थन किया। इस दृष्टिकोण से तीन जजों की पीठ का यह फैसला एक नजीर है उन लोगों के लिए जो मुकदमों का सहारा लेकर अभिव्यक्ति की आजादी को रोकने की कोशिश करते हैं।

अदालत के इस फैसले का सम्मान होना चाहिए और समाज को इसी सोच के तहत काम भी करना चाहिए। वह सोच देश की संवैधानिक संस्थाओं के निर्णयों को सर माथे पर रखने की है, लेकिन समाज इस सोच से लगातार दूर जा रहा है। संवैधानिक विचारधारा और समाज की सोच में परिवर्तन और जड़ता का नहीं है, बल्कि वह अंतराल कट्टरता और उदारता है। हमारा भारतीय संविधान उदारता की गुंजाइश देता है और वह तभी लागू हो सकता है जब उसके मानने वाले उदार हों। विडंबना यह है कि देश में न सिर्फ सामाजिक और धार्मिक बल्कि राजनीतिक उदारता ने भी दम तोड़ा है। लोग अभिव्यक्ति की आजादी की व्याख्या के सिर्फ संवैधानिक संस्थाओं पर यकीन करने की बजाय उन राज्येतर संगठनों का सहारा भी ले रहे हैं जो रचनाकार को धमकाने के साथ-साथ परोक्ष चेतावनी भी दे रहे हैं।

(143)प्रश्नः क्या कोई भी अदालत पत्नी को साथ रखने के लिए पति को मजबूर कर सकती है? क्यों?

उत्तर: नहीं, कोई भी अदालत पत्नी को रखने के लिए पति को मजबूर नहीं कर सकती है, क्योंकि यह एक मानवीय रिश्ता है। सुप्रीम कोर्ट की एक पीठ ने हाल ही में पति और पत्नी के बीच होने वाले कानूनी विवादों को लेकर एक फैसला सुनाते हुए कहा कि हम किसी भी पति को अपनी पत्नी को साथ रखने के लिए मजबूर नहीं कर सकते। यह एक मानवीय रिश्ता है।

दरअसल, पायलट पति पर दहेज के लिए परेशान करने समेत भारतीय दंड संहिता की कई धाराओं के तहत दर्ज किए गए एक मामले पर मद्रास उच्च न्यायालय की मदुरै पीठ ने 11 अक्टूबर, 2017 को अंतरिम

जमानत अर्जी रद्द कर दी थी। कोर्ट का कहना था कि पति ने शिकायतकर्ता के साथ समझौता किया, लेकिन वादे से मुकर गया। फिर सुप्रीम कोर्ट ने मद्रास हाईकोर्ट के उस जमानत आदेश को बहाल कर दिया, जिसे पति द्वारा सुलह समझौता मानने से इनकार करने से रद्द कर दिया था।

सुप्रीम कोर्ट ने पेशे से पायलट व्यक्ति को अलग रह रही पत्नी और बेटे की परवरिश के लिए 10 लाख रुपए अंतरिम गुजारा भत्ते के तौर पर जमा करने के आदेश दिए हैं। इसके साथ ही सुप्रीम कोर्ट ने मद्रास हाईकोर्ट के उस जमानती आदेश को बहाल कर दिया है, जिसे पति की ओर से समझौता के खिलाफ जाने पर रद्द कर दिया गया था। कोर्ट ने यह भी कहा कि अगर 10 लाख रुपए गुजारा भत्ता देने के लिए पति राजी हैं तो जमानत अर्जी बहाल कर दी जाएगी। कोर्ट ने यह भी कहा कि अगर दोनों पक्ष चाहे तो अदालत के बाहर समझौता भी कर सकते हैं।

शादी-विवाह निजता के अतिरिक्त, सामाजिक और पारिवारिक गठबंधन भी होता है। इसके बावजूद दाम्पत्य-जीवन सामान्य रखने का कोई तय फार्मूला नहीं है। विभिन्न कारणों से पति-पत्नी में संबंध-विच्छेद की स्थिति बन जाती है। तब दबाव के जरिए रिश्तों को पुरानी रौ में लाना मुश्किल हो जाता है। ऐसे में जो रिश्ता पहले से ही टूटन के करीब है, उसे जबरन जोड़े रखने का कोई औचित्य नहीं है। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि पत्नी भी कोई वस्तु नहीं कि जिसे इसलिए साथ रखा जाए, क्योंकि पति का उससे वैवाहिक संबंध रहा है। बुद्धिमानी और समय का तकाजा यही है कि जब बात इतनी बिगड़ चुकी हो कि साथ रहना मुमकिन न हो तो उसे सहूलियत से समेट लेना बेहतर है। ऐसा नहीं होने पर यह भी देखा जा रहा है कि दाम्पत्य की दिक्कतों से उकताकर पति या पत्नी विवेकसम्मत रास्ता चुनने की बजाय आत्महत्या तक कर लेते हैं। ऐसी स्थिति में गरिमापूर्वक तरीके से संबंध से अलग हो जाना ही दंपति, उसके बच्चे या परिवार के हित में होता है। इस लिहाज से देखा जाए तो सुप्रीम कोर्ट का यह फैसला व्यावहारिक और वैधानिक तो है ही, बेहद सधा हुआ भी है। इसी में दोनों की भलाई है। निश्चित मुआवजा चुका कर दोनों पक्ष सुकून भरी जिंदगी जीने को स्वतंत्र हैं।

(144)प्रश्नः क्या आपको ऐसा नहीं लगता है कि नदियों की सफाई के सरकारी प्रयास जब असफल हो रहे हैं, तब सर्वोच्च न्यायालय का फैसला बड़ी उम्मीद जताता है? आखिर कैसे?

उत्तर: हाँ, भाई अरुण जी, मुझे भी ऐसा लगता है कि नदियों की सफाई के सरकारी प्रयास जब असफल हो रहे हैं, तब सर्वोच्च न्यायालय का फैसला बड़ी उम्मीद जताता है, क्योंकि पिछले दिनों देश की शीर्ष अदालत सुप्रीम कोर्ट ने महाराष्ट्र की दो नदियों-अल्हास और वलधूनी में प्रदूषण करने के लिए राज्य सरकार पर 100 करोड़ रुपए का भारी जुर्माना लगाया है। शीर्ष अदालत ने अपने फैसले में कहा कि जुर्माने की इस राशि से इन दोनों प्रदूषित नदियों को फिर से उनके मूल स्वरूप में लौटाया जाएगा। वैसे पहले भी राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण ने 2015 में महाराष्ट्र की इन दोनों नदियों में भारी प्रदूषण करने पर 95 करोड़ रुपए का जुर्माना लगाया था, मगर राज्य सरकार ने राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण के फैसले के खिलाफ मुंबई उच्च न्यायालय में अपील दायर की थी और उच्च न्यायालय ने उस पर रोक लगा दी थी। इसके बाद मानवाधिकार लॉ नेटवर्क (Human Right Law Network) ने उच्च न्यायालय के फैसले के खिलाफ सर्वोच्च न्यायालय में अपील दायर की जिसका फैसला सर्वोच्च न्यायालय ने उस समय दिया जब नदी प्रदूषण से मुक्ति की उम्मीद अब सरकारों से करना बेमानी हो गया है।

यह उस देश में नदियों की बदहाली की तस्वीर है, जहाँ के लोग नदियों से सांस्कृतिक और पारंपरिक दृष्टि से जुड़े हुए हैं और समय-समय पर गंगा आरती का कार्यक्रम करते रहते हैं। वे नदियों को मां मानते है और उनकी पूजा करते हैं। गंगा में डूबकी लगाना तो उनके लिए पुण्य का सबब है, लेकिन आज हमारी ज्यादातर नदियाँ नाले का रूप अख्तियार कर चुकी हैं, कहीं वे कूड़ाघर बन चुकी हैं, कहीं वह सूख गई हैं, कहीं मौसमी नदी बनकर रह गई हैं और कहीं उनका नामो-निशान तक नहीं रह गया है। कुछ नदियों में तो मानक से अधिक बैक्टीरिया होने की वजह से उसका पानी जहरीला हो चुका है। इसके अतिरिक्त गुजरात की अमलाखेड़ी, खारी, हरियाणा की मारकंदा, मध्यप्रदेश की खान, आँध्रप्रदेश की मुंशी, महाराष्ट्र की भीमा भी प्रदूषित नदियों के मामले में शीर्ष पर हैं।

इसी प्रकार गंगा और यमुना नदी की सफाई पर 1986 से काम जारी है और 2014 में राजग सरकार के सत्ता में आने पर प्रारंभ नमामि गंगे परियोजना की सफलता के लिए केंद्र सरकार के सात मंत्रालयों की साख दांव पर लगी है, मगर आज तक प्रदूषण रोकने पर कुछ कारगर काम होता नहीं दिख रहा है। यही हाल यमुना का है जिसे बरसों पूर्व बड़े जोशों-खरोश के साथ टेम्स बनाने का दावा किया गया था, पर आज भी यमुना में नालों का

गिरना बदस्तूर जारी है। सरकारी प्रयास के अतिरिक्त बहुत सारे आंदोलन भी हुए, साधु-संत और स्वयंसेवी संगठनों द्वारा भी यात्राएँ निकाली गईं तथा कुंभ जैसे अवसरों पर नदियों को बचाने के संकल्प लिए गए, लेकिन फिर भी वही ढाक के तीन पात। ताजा फैसले से सर्वोच्च न्यायालय ने जरूर एक उम्मीद जताई है कि इससे नदियों की सफाई का एक बड़ा रास्ता खुलेगा।

(145)प्रश्नः क्या सीबीआई की विशेष अदालत ने 2जी स्पेक्ट्रम घोटाले के सभी आरोपियों को बरी करके भ्रष्टाचार की तमाम बहसों को फिर खुला छोड़ दिया है? आखिर कैसे? क्या अदालत के इस फैसले ने काँग्रेस को कठघरे से बाहर निकालकर लड़ने के लिए खुले मैदान में खड़ा कर दिया है?

उत्तरः हाँ, नागेश जी, सीबीआई की विशेष अदालत ने 2-जी स्पेक्ट्रम घोटाले के सभी आरोपियों को बरी करके भ्रष्टाचार की तमाम बहसों को फिर खुला छोड़ दिया है, क्योंकि इसके पहले सुप्रीम कोर्ट ने भी यह माना था कि स्पेक्ट्रम मामले में गलती तो है। यही नहीं, यहाँ तक कि इस घोटाले की रिपोर्ट तो संवैधानिक संस्था नियंत्रक-महालेखापरीक्षक(सीएजी) ने भी दी थी और उसपर प्राथमिक संज्ञान सुप्रीम कोर्ट ने लेते हुए संप्रंग सरकार को जाँच का आदेश दिया था। अब सवाल उठता है कि संवैधानिक संस्थाओं के अनुमान और तथ्य में किसे महत्व दिया जाए। एक तथ्य तो यह है कि दूसरी पीढ़ी के टेली स्पेक्ट्रम का आवंटन 2001 की दरों पर किया गया और कई अयोग्य कंपनियों को कम दरों पर सुविधा प्रदान की गई और दूसरा यह कि इन्हीं पहलुओं को ध्यान में रखते हुए सुप्रीम कोर्ट ने 122 कंपनियों के लाइसेंस रद्द कर वृहत्तर जाँच के आदेश दिए। तीसरी बात यह कि सीएजी ने अपनी गणना के आधार पर कह दिया था कि अगर नई दरों के आधार पर स्पेक्ट्रम की खुली निलामी हुई होती तो सरकार को 1.76 लाख करोड़ की कमाई होती।

सीबीआई की विशेष अदालत के इस फैसले से खुद सीबीआई और साथ ही प्रवर्तन निदेशालय के रूख-रवैए पर सवाल खड़े हो गए हैं। अगर उसका निष्कर्ष सही है तो इसका मतलब है कि सीबीआई और प्रवर्तन निदेशालय ने जाँच को आँच दिखाने वाला काम किया। अब सवाल केवल यह नहीं है कि इस फैसले को ऊपरी अदालत में चुनौती दी जाए, बल्कि सवाल यह भी है कि उन कारणों की तह तक जाया ज़ाए जिनके चलते एक तरह की खुली लूट के इतने बड़े मामले में सीबीआई के साथ प्रवर्तन

निदेशालय भी नाकाम रहा। कोर्ट में भले ही सात सालों तक उसके जज बैठे रहे इस इंतजार में कि कोई कानूनी रूप से स्वीकार्य सबूत लेकर आए, लेकिन कोई भी नहीं आया और सीबीआई पूर्व संचार मंत्री ए. राजा और कनीमोझी समेत तमाम आरोपियों पर दोष सिद्ध नहीं कर पाई, पर कोर्ट का फैसला सीबीआई के लिए भी एक संकेत है कि उसे अपनी जाँच और कार्यप्रणाली में बदलाव की पहल करनी चाहिए, क्योंकि सीबीआई कोर्ट का यह फैसला सबको अवाक कर रहा है। लोग समझ नहीं पा रहे हैं कि आखिर इसका क्या मतलब है? क्या वह जो भूकंप जैसा आया था वह गलत था? क्या सीएजी का रिपोर्ट गलत था? सीबीआई ने 2जी स्पेक्ट्रम घोटाले में विशेष अदालत की फटकार का सामना किया और विशेष अदालत ने करीब डेढ़ हजार से ज्यादा पृष्ठों में 2जी स्पेक्ट्रम घोटाले में अपना फैसला लिखा है। इस फैसले में अदालत ने जाँच एजेंसी को कठघरे में खड़ा किया है।

सीबीआई की इस विशेष अदालत के फैसले ने सभी आरोपियों को बरी करके न केवल द्रमुक को, बल्कि काँग्रेस को भी कठघरे से बाहर निकालकर लड़ने के लिए खुले मैदान में खड़ा कर दिया है। विपक्षी पार्टियों में खासतौर पर काँग्रेस एवं द्रमुक नेताओं का उत्साहित होना अस्वाभाविक नहीं है, क्योंकि उसे राजनीतिक संजीवनी इस फैसले को प्रदर्शित करके हासिल की जा सके। इसका पता इससे भी चलता है कि काँग्रेस की ओर से कोयला घोटाले में आए फैसले का सम्मान करने की कहीं कोई आवाज सुनाई नहीं दे रही है। इसमें कोई शक नहीं कि विधि के शासन का भाव चोटिल हुआ है इसलिए केंद्र सरकार को इस पर गहराई से चिंतन करना होगा कि आखिर ऐसा फैसला किन कारणों से आया? इस फैसले ने काँग्रेस और उसके सहयोगी दलों को ही दागदार नहीं किया, बल्कि साफ-सुथरी छवि के अर्थशास्त्री डॉ. मनमोहन सिंह को भी संदेह के घेरे में ले लिया। इसलिए अभी भ्रष्टाचार की बहस खत्म नहीं हुई है।

वैसे भी देखा जाए तो यह फैसला आरोपियों की मजबूती नहीं, बल्कि अभियोजन की कमजोरी थी कि वह आरोप साबित नहीं कर पाया। विशेष अदालत की सबसे कठोर टिप्पणी यह थी कि यह पता करना बहुत मुश्किल हो गया कि आखिर अभियोजन क्या साबित करना चाहता है?

2जी स्पेक्ट्रम फैसले से हैरान समूचा राष्ट्र इसे सरल रूप से समझना चाहता है, किंतु कानून और न्याय की उलझी, जटिल भाषा, प्रक्रिया और तरीके आसान नहीं हैं। वास्तव में देखा जाए तो 2जी घोटाला, निश्चित रूप

से घोटाला है। आने वाले समय में ऊँची अदालतों में सबकुछ सामने आएगा। मुझे तो लगता है कि पॉलिसी में जानबूझकर इतना भ्रम पैदा किया गया, ताकि कोई इसे आसानी से लागू न कर सके। अदालत क्यों प्रॉसिक्यूशन की बातें मानेगा? कानून में परिस्थितिजन्य साक्ष्य तभी मानने की विवशता होती है जब सारे साक्ष्य अनुपस्थित हों और अपराध हुआ दिख ही रहा हो। गवाह-सबूत है। वरीय और कनीय पब्लिक प्रोसिक्यूटर अनेक कागजों पर हस्ताक्षर करने से बचते रहे। कहा स्पेशल पब्लिक प्रॉसिक्यूटर करेंगे। उनसे पूछा तो वे कहने लगे-सीबीआई करेगी। इस गैर-जिम्मेदारी के तो चश्मदीद गवाह हैं- वे सब जो अदालत में 7 वर्षों से इन सभी प्रॉसिक्यूशन वालों को देखते रहे हैं। सबूत है- जज सैनी का दो हजारा पृष्ठों का फैसला जिसमें प्रॉसिक्यूशन का दिशाहीन होना लिखा गया है।

मैं तो कहूँगा कि राष्ट्र के साथ यह धोखाधड़ी है जहाँ जाँच एजेंसियाँ, नागरिकों के भरोसे को ऐसे टालते आधी-अधूरी बातें करते, झूठ बोलते हुए निर्लज्जिता से तोड़े-वहाँ कानून तो यूँ ही आखें बंद कर लेगा। राष्ट्र मुट्ठी भर लोगों के हाथों अपनी प्राकृतिक संपदा बेच दे, यह स्वीकार्य नहीं हैं। आप देखेंगे, अंत में सत्य की विजय होगी।

(146)प्रश्नः क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि लोकतंत्र में न्याय पर भरोसा कायम रहना बहुत जरूरी है? ऐसा क्यों? जब न्यायपालिका पर लोगों का भरोसा है तो ये न्याय आने के बाद सवाल क्यों उठाते हैं?

उत्तरः हाँ, मिश्र जी, लोकतंत्र में न्याय पर भरोसा कायम रहना बहुत जरूरी है, क्योंकि समय-समय पर न्यायपालिका ने ही इस देश में उम्मीद की किरण जगाई है। लगभग सभी राजनीतिक प्रशासनिक सुधार न्यायपालिका की वजह से हुए हैं। न्यायिक सक्रियता देश के लोकतंत्र की आखिरी आशा बन गई हैं, क्योंकि जब कहीं कोई कार्रवाई नहीं होती तो लोग उम्मीद करते हैं अदालत को संज्ञान लेना चाहिए। वैसे भारत में न्यायपालिका पर लोगों का अटूट विश्वास है, लेकिन कभी-कभी अदालत के फैसलों को राजनीतिक विवाद में घसीटने से भी खासतौर पर राजनीतिक दल और उसके राजनेता बाज नहीं आते। आपने देखा नहीं विगत 23 दिसम्बर, 2017 को सीबीआई की विशेष अदालत द्वारा चारा घोटाले में बिहार के एक पूर्व मुख्यमंत्री को दोषी ठहराए जाने पर न्यायपालिका पर राजनीतिक प्रभाव की तोहमत लगाई, जबकि दोषी ठहराए जाने के कई दिन पहले से उक्त पूर्व मुख्यमंत्री के परिवारजन, उनकी पार्टी के वरिष्ठ नेता और कार्यकर्ता यहाँ तक कि पूर्व मुख्यमंत्री खुद भी दोषी

ठहराए जाने के दिन तक न्यायपालिका पर पूरा भरोसा जता रहे थे, पर पूर्व मुख्यमंत्री को सजा सुनाए जाते ही पता नहीं यह भरोसा कैसे गुम हो गया?

न्यायपालिका पर राजनीतिक प्रभाव की तोहमत लगाने वाले ऐसे राजनेताओं, कार्यकर्ताओं को यह नहीं भूलना चाहिए कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने 1975 में तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी के खिलाफ फैसला सुनाकर उनका निर्वाचन रद्द करने में संकोच नहीं किया था। देश का न्यायिक इतिहास ऐसे अनगिनत उदाहरणों से भरा पड़ा है जब अदालत ने बड़े-बड़े दिग्गजों को सलाखों के पीछे भेजने में कोई झिझक नहीं दिखाई। इसलिए अदालत के फैसलों को राजनीतिक विवाद में घसीटने की छूट किसी को नहीं मिलनी चाहिए।

लोकतंत्र सिर्फ चुनाव जीतकर सरकार बनाने का काम नहीं है, उसमें न्यायपालिका और मीडिया की भी भूमिका है। लोकतंत्र सिर्फ सरकार निर्माण व संचालन की कवायद न होकर एक व्यवस्था है जिसमें न्यायपालिका ने अपनी भूमिका सकारात्मक रूप से निभाई है। कुछ इसी वजह से न्यायपालिका पर लोगों का भरोसा अपने चुने हुए प्रतिनिधियों से ज्यादा है और ये राजनीतिक दलों के 70 साल के व्यवहार और आचरण के कारण से भी है।

हाँ, न्यायपालिका पर लोगों का इतना भरोसा होने के बावजूद न्याय आने के बाद सवाल उठाने की वजह है, क्योंकि अदालत प्रस्तुत किए गए सबूतों के आधार पर फैसला देती है। प्रश्न उठने का कारण न्यायपालिका नहीं, बल्कि जाँच एजेंसी है। जाँच एजेंसियों की निष्पक्षता पर सवाल उठता रहा है जैसा कि पिछले दिनों 2जी स्पेक्ट्रम घोटाले पर ए. राजा और कनिमोझी के बरी किए जाने के बाद सवाल उठा।

(147)प्रश्नः क्या शराब पीकर वाहन चलाना कानूनी रूप से हत्या का प्रयास समझा जाना चाहिए? आखिर क्यों?

उत्तर: हाँ, भाई सतीश जी, शराब पीकर वाहन चलाना कानूनी रूप से हत्या का प्रयास समझा जाना चाहिए और साथ ही ऐसे चालकों पर उन्हीं धाराओं में आरोप तय होने चाहिए, जिन धाराओं में हत्या के प्रयास का मामला दर्ज होता है। हाल ही में सुप्रीम कोर्ट के पूर्व मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति रमेशचंद्र लाहोटी ने भी ऐसा ही कहा है, लेकिन न्यायमूर्ति लाहोटी ने ये बात यदि किसी मुकदमें की सुनवाई के दौरान अपनी कुर्सी पर बैठे कही होती तो अबतक ये नजीर बनकर कानून के दस्तावेजों में दर्ज हो चुका होता। मगर अफसोस कि उन्होंने ये बात पिछले दिनों इंदौर में आयोजित हड्डी रोड

विशेषज्ञों के एक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में कही।

सचमुच न्यायमूर्ति लाहोटी की ये बातें कई मायने में महत्वपूर्ण और गंभीर इसलिए हैं, क्योंकि देश में शराबी चालक की वजह से जिस तेजी से सड़क दुर्घटनाओं में वृद्धि होती जा रही है वह चिंता का विषय है। एक तो शराब पीकर गाड़ी चलाने वाले चालक खुद दुर्घटनाग्रस्त हो रहे हैं और इससे भी ज्यादा तकलीफदेह स्थिति में वो होते हैं जिनके घर का कोई सदस्य शराब पीकर वाहन चलाने वाले की चपेट में आकर जान गंवाता है।

बात चाहे अभिनेता सलमान खान की हो या फिर किसी भी आम इंसान की शराब पीकर गाड़ी चलाने वाले के मामले साल दर साल बढ़ते जा रहे हैं जिसे लेकर सुप्रीम कोर्ट ने ऐसी घटनाओं पर रोकथाम के लिए उच्च पथ पर शराबबंदी का निर्देश दिया है, लेकिन राज्यों की चिंता इंसानों की जान से ज्यादा शराब से होने वाली आय को लेकर थी। लिहाजा उन्होंने इसकी काट कागजों पर निकाल ली जिसके परिणामस्वरूप स्थिति अभी भी जस की तस है। यदि सच में शराब पीकर गाड़ी चलाने वालों पर नियंत्रण करना है तो सख्त कानून की आवश्यकता पर ध्यान देना ही होगा, क्योंकि यदि जागरूकता की स्थिति में सुधार हो, तो सिगरेट-गुटखा के पैकेट पर कैंसर ग्रसित चेहरे की तस्वीर लगाने और चेतावनी लिखने से तम्बाकू का प्रयोग बंद हो चुका होता।

हालांकि यह भी सत्य है कि तंबाकू या शराबबंदी पर आवश्यक कानून बनाने के बावजूद लोग अपनी आदत को छोड़ नहीं पा रहे हैं। कई राज्यों सहित बिहार में शराबबंदी कानून लागू हुए दो साल होने को है, लेकिन शराब रुकने का नाम अभी तक ले रहा है। ऐन-केन-प्रकारेण शराबी को शराब उपलब्ध हो ही जा रहा है। इसलिए सरकार जबतक उसे सख्ती से लागू नहीं करेगी अर्थात इच्छाशक्ति मजबूत करने के साथ-साथ भ्रष्टाचार पर नियंत्रण किए बिना यह सफल नहीं हो सकेगा।

(148)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि बिहार में हुए चारा घोटाले में 16 लोगों को दोषी करार दिए जाने के बाद सीबीआई की विशेष अदालत, राँची द्वारा सजा दिया जाना न्यायपालिका की सक्रियता का सबूत है? आखिर कैसे?

उत्तरः हाँ, नागेश जी, मुझे भी ऐसा लगता है कि बिहार में हुए चारा घोटाले में 16 लोगों को दोषी करार दिए जाने के बाद सी.बी.आई की विशेष अदालत, राँची द्वारा सजा दिया जाना न्यायपालिका की सक्रियता का सबूत है।

आपको मैं बता दूँ कि पिछले साल 24 दिसम्बर को सीबीआई जज ने 1990--94 के बीच देवघर के सरकारी कोषागार से 80.27 लाख रुपए की अवैध निकासी के मामले में बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री और राष्ट्रीय जनता दल के अध्यक्ष लालू प्रसाद यादव समेत 16 लोगों को दोषी करार दिया था, जिसमें लालू प्रसाद को 3 साल 6 महीने की सजा हुई।

950 करोड़ रुपए के चारा घोटाले से जुड़े एक और मामले में इसके पूर्व भी लालू प्रसाद को पाँच साल की सजा मिल चुकी है पाँच लाख रुपए के जुर्माने के साथ। दोनों सजाएँ साथ-साथ चलेंगी, इसलिए लालू जी को साढ़े तीन साल ही कारावास में काटना होगा, जबकि दोनों सजाओं के जुर्माने की राशि दस लाख रुपए देनी होगी। जुर्माने की राशि नहीं देने पर उन्हें एक साल की अतिरिक्त सजा भुगतनी होगी।

जिन दो मामलों में फैसला आ चुका है उनका ऊँची अदालतों से यथाशीघ्र निष्पादन हो, क्योंकि यह किसी से छिपा नहीं कि जिस पहले मामले में लालू यादव को सजा के बाद जेल जाना पड़ा था उसे उन्होंने राजनीतिक तौर पर जमकर भुनाया। यदि फिर से ऐसी कोई नौबत आती है अर्थात लालू यादव अपने जेल जाने की चुनावी फसल काटने में सफल होते हैं तो यह न्याय का उपहास ही होगा। इस पर आश्चर्य नहीं कि सजा सुनाए जाने के बाद लालू यादव के साथ-साथ उनके समर्थक एवं सहयोगी यही दुष्प्रचार करने में लगे हुए हैं कि सामाजिक न्याय की लड़ाई लड़ने की वजह से उन्हें सजा मिली है। इतना ही नहीं दबे-छिपे स्वरों से यह भी कहने की कोशिश हो रही है कि पिछड़े लोगों की लड़ाई लड़ने के कारण उन्हें गलत तरीके से फँसाया गया।

लालू प्रसाद यादव का प्रकरण इस बात की मुनादी करता है कि सार्वजनिक जीवन ऐश्वर्य नहीं जनसेवा से प्रतिष्ठित होता है। चारा घोटाले ने देश-दुनिया में बिहार की बदनामी तो करवाई ही, राजनीति की एक अच्छी संभावना को भी खत्म कर दिया।

सीबीआई की विशेष अदालत के जज शिवपाल सिंह ने चारा घोटाले में फैसला सुनाकर जो सजा घोटालेबाजों को दी है उससे भारत में न्यायपालिका पर लोगों का अटूट विश्वास है और उसके उचित कारण भी हैं। समय-समय पर न्यायपालिका ने ही इस देश में उम्मीद की किरण जगाई है। लगभग सभी राजनीतिक और प्रशासनिक सुधार न्यायपालिका के कारण हुए हैं। न्यायिक सक्रियता देश के लोकतंत्र की आखिरी आशा बन गई है, क्योंकि जब कहीं

कोई कार्रवाई नहीं होती तो लोग उम्मीद करते हैं अदालत से, क्योंकि न्यायपालिका ने अपनी भूमिका सकारात्मक रूप से निभाई है। कुछ इसी वजह से न्यायपालिका पर लोगों का भरोसा अपने चुने हुए प्रतिनिधियों से ज्यादा है। इसलिए अदालत के फैसले का स्वागत होना चाहिए और उसपर राजनीति नहीं होनी चाहिए।

(149)प्रश्न:1984 में इंदिरा गाँधी की हत्या के बाद दिल्ली और कुछ अन्य शहरों के सिखों के खिलाफ भड़के दंगों से संबंधित 186 मामलों की सुप्रीम कोर्ट द्वारा नए सिरे से जाँच के लिए विशेष जाँच दल गठित करने का जो फैसला दिया गया उस पर आप क्या कहना चाहेंगे?

उत्तर: नागेश जी, आप तो स्वयं सुप्रीम कोर्ट के एक अधिवक्ता हैं इसलिए आप हमारी इस बात से सहमत होंगे कि 1984 में इंदिरा गाँधी की हत्या के बाद दिल्ली और अन्य कुछ शहरों के सिखों के खिलाफ भड़के दंगों से संबंधित 186 मामलों की सुप्रीम कोर्ट द्वारा नए सिरे से जाँच के लिए विशेष जाँच दल गठित करने का जो फैसला दिया गया वह स्वागत योग्य इसलिए है, क्योंकि सिखों के खिलाफ भड़के दंगे एक दाग है और उन्हें धोने के लिए जितना कुछ किया जाए, वह कम है। यह अच्छा नहीं हुआ कि इन दंगों के दौरान हत्या और लूटपाट के लिए जिम्मेदार सभी लोग दंडित नहीं हुए और इतने मामलों को जाँच के वगैर ही बंद कर दिया गया था। अच्छा होगा कि सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले के बाद किसी को इसके लिए भी जवाबदेह बनाया जाए कि आखिर जाँच के नाम पर खानापूरि क्यों की गई? क्या वह विचित्र नहीं कि बिना जाँच के मामलों को बंद करने का काम भी एक विशेष दल ने किया था जिसका गठन 2015 में केंद्र सरकार ने किया था। सुप्रीम कोर्ट का यह फैसला देखा जाए तो एक तरह से केंद्र सरकार के विशेष जाँच दल की नाकामी को ही बयान कर रहा है।

देखना यह है कि जो काम केंद्र सरकार की ओर से गठित विशेष जाँच दल नहीं कर पाया उसे सुप्रीम कोर्ट की ओर से गठित विशेष जाँच दल कर पाएगा या नहीं? दुनिया के कई देशों ने यह दिखाया है कि किस तरह दशकों पुराने मामलों की भी सही तरह से जाँच और दोषियों को दंडित किया करना संभव है। बेहतर हो कि 186 मामलों की जाँच करने वाला विशेष जाँच दल इन देशों के उदाहराण से प्रेरणा ले और सिख विरोधी हिंसा के जिन भी मामलों में संभव हो, दोषियों की पहचान करने और उनके खिलाफ सबूत जुटाने का काम करे।

(150)प्रश्न:आजाद भारत में पहली बार भारतीय न्यायिक प्रणाली में सुप्रीम कोर्ट के चार न्यायाधीशों द्वारा प्रेस काँफ्रेंस बुलाकर अपने ही मुख्य न्यायाधीश की कार्यशैली पर सवाल उठाने को कैसे देखा जा रहा है?

उत्तर: आजाद भारत के इतिहास में पहली बार सुप्रीम कोर्ट के चार न्यायाधीशों-न्यायाधीश चेलमेश्वर, न्यायाधीश मदर लोकुर, न्यायाधीश कुरियन जोसेफ और न्यायाधीश रंजन गोगोई द्वारा प्रेस काँफ्रेंस बुलाकर अपने ही मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्रा की प्रशासनिक कार्यशैली पर उठाए जाने से लोग हतप्रभ भी हैं और चिंतित भी, क्योंकि इसका चाहे जो भी परिणाम निकले, लेकिन यह निश्चित ही एक स्वस्थ परंपरा किसी भी दृष्टि से नहीं है, क्योंकि देश के करोड़ों आम नागरिकों की आस का अंतिम बिंदु न्यायपालिका ही होती है। भ्रष्टाचार, राजनैतिक विद्वेष व कलुषिता, सांप्रदायिक विद्वेष, बेरोजगारी और अन्य समस्याओं के बीच भी अगर आम नागरिक की आस किसी बात से हमेशा लगी रहती है, तो वह है न्यायपालिका। उसे हमेशा भरोसा रहता है कि यहाँ से उसे न्याय मिलेगा। और जब देश की सर्वोच्च अदालत का ही मनमुटाव इस तरह सार्वजनिक रूप से जनता के बीच आ जाए, तो आम नागरिकों के विश्वास का डावाडोल होना लाजिमी है। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि वह न्यायाधीश धर्माधिकारी के रूप में न्याय व्यवस्था सुनिश्चित करते रहे हैं। ऐसे पिछले दिनों 12 जनवरी 2018 को हुई प्रेस काँफ्रेंस न्यायिक व्यवस्था के इस उच्च दर्जे को कहीं न कहीं प्रभावित जरूर करेगी। मुझे तो ऐसा लगता है कि विवादों को सुलझाने वाली यह शीर्ष न्यायिक संस्था खुद ही कठघरे में खड़ी हो गई है, क्योंकि सुप्रीम कोर्ट के इन चार न्यायाधीशों ने यह कहते हुए संवाददाता सम्मेलन आयोजित किया कि मुख्य न्यायाधीश सुप्रीम कोर्ट का काम सही तरीके से नहीं कर रहे हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या बस एक या फिर दो-चार और मामले सुनवाई के लिए इन चार न्यायाधीशों के पास न जाने के आधार पर यह मान लिया जाए कि सुप्रीम कोर्ट का कामकाज सही तरह से संचालित नहीं हो रहा है? यदि कुछ मामलों के आधार पर इस नतीजे पर पहुँच भी जाया जाए कि मुकदमों का आवंटन सही तरह से नहीं हो पा रहा था, तो क्या इस समस्या का समाधान चार वरिष्ठ न्यायाधीशों की ओर से जनता के बीच अपनी बात कहने से निकल आया? आखिर बेचारी जनता क्या कर सकती है? क्या यह बेहतर नहीं होता कि सुप्रीम कोर्ट के अन्दर का मसला उसके स्तर पर ही सुलझाया जाता? क्या किसी संस्था में कोई समस्या आ जाए तो

उसका समाधान यह है कि उसके चार वरिष्ठ सदस्य सड़क पर आकर अपनी बात कहे? क्या ये न्यायाधीश जनता के सामने आने के पहले राष्ट्रपति का दरवाजा नहीं खटखटा सकते थे? क्या वे मुकदमों के आवंटन के मसले को किसी बेंच को सौंपने की माँग नहीं कर सकते थे? क्या वह विचित्र नहीं कि मुख्य न्यायाधीश के प्रति सार्वजनिक रूप से अविश्वास जताने के बाद यह उम्मीद की जा रही कि अब सब कुछ ठीक हो जाएगा? क्या इन चार न्यायाधीशों ने मुख्य न्यायाधीश के साथ-साथ अन्य 20 न्यायाधीशों की निष्पक्षता पर भी सवाल नहीं उठा दिया? क्या यह कहने की कोशिश नहीं की गई कि सुप्रीम कोर्ट के शेष करीब 20 न्यायाधीश उन मामलों की सुनवाई करने के योग्य नहीं जो उन्हें सौंपे गए?

उपर्युक्त सवालों का चाहे जो जवाब हो पहली नजर में यह ऐसा लगता है कि एक विश्वसनीय संस्था व्यक्तिगत अहंकार या वर्चस्व की जंग का शिकार हो गई। अभी तक कभी-कभार कमजोर आवाज में केंद्रीय बार काउंसिल और राज्य बार एसोसियेशन द्वारा न्यायाधीशों के खिलाफ व्यक्तिगत मामलों में आरोप लगते हुए हमने देखा-सुना था, लेकिन पिछले 70 साल में एक बार भी ऐसा देखने में नहीं आया कि सुप्रीम कोर्ट के चार वरिष्ठ न्यायाधीश अपने मुख्य न्यायाधीश के खिलाफ प्रेस कॉंफ्रेंस करें और वह भी मामलों के आवंटन में कथित पक्षपात को लेकर। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि अगर इन चार न्यायाधीशों को मुख्य न्यायाधीश की कार्यप्रणाली से एतराज था, तो वे सभी न्यायाधीशों की सुबह होने वाली बैठक में इस मुद्दे को उठाते और एक अहम सहमति बनाने का प्रयास करते। आधुनिक न्यायशास्त्र का मूल सिद्धांत कहता है कि आप चाहे जितने भी बड़े क्यों न हों कानून आपसे बड़ा होता है। अदालत की अवमानना कानून के अनुसार ऐसा कोई बयान जो अदालत की गरिमा को गिराता है, अदालत की अवमानना है। अगर कोई अदालत की अवमानना संबंधी कानून को गौर से पढ़ें तो यही पाएगा कि इन चार न्यायाधीशों के बयान अवमानना की श्रेणी आते हैं। यह हैरान करता है कि एक दिन पहले कॉलेजियम दो न्यायाधीशों के नाम तय करता है और अगले दिन चार वरिष्ठ न्यायाधीश मुख्य न्यायाधीश के खिलाफ मोर्चा खोल देते हैं।

मुख्य न्यायाधीश की कार्यशैली को सुप्रीम कोर्ट के चार वरिष्ठ न्यायाधीशों ने भले ही लोकतंत्र को खतरे में डालने वाला बताया हो, लेकिन यह सच है कि केवल सुप्रीम कोर्ट ही लोकतंत्र का प्रतिनिधित्व नहीं करता। तथ्य यह भी है कि सुप्रीम कोर्ट और हाईकोर्ट के जज जिस कॉलेजियम

व्यवस्था के तहत नियुक्त होते हैं उसमें सरकार अथवा किसी अन्य संस्था की कोई भूमिका ही नहीं। आखिर ऐसे में यह कैसे कहा जा सकता है कि लोकतंत्र खतरे में है?

किसी भी संस्था के सदस्यों में मतभेद होना कोई नई-अनोखी बात नहीं, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि मतभेद सड़क पर ले आए जाएँ। मुझे तो आश्चर्य इस बात को लेकर भी है कि जो न्यायाधीश अदालती मामलों का मीडिया ट्रायल पसंद नहीं करते उन्होंने अपने अंदरूनी मामले को मीडिया के हवाले कर दिया।

एक बात और कि जब न्यायाधीशों की नियुक्तियों में किसी अन्य की भागीदारी नहीं तो उनके बीच के मतभेद सुलझाने में बाहरी लोग भागीदार कैसे बन सकते हैं? सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश विशिष्ट शख्सियत होते हैं। यह विश्वास किया जाता है कि वे नीर-क्षीर और परिपक्व ढंग से कार्य करेंगे और अपने आचरण से भी एक उदाहरण प्रस्तुत करेंगे। इन चार न्यायाधीशों के लिए यह जवाब देना मुश्किल होगा कि अगर कुछ कथित बड़े मामले उनके पास नहीं आए तो क्या उनकी प्रतिष्ठा कम हो गई? आखिर चारों न्यायाधीश क्यों चाहते हैं कि कुछ खास मामले सुनवाई के लिए उनके पास आएँ? क्या मामलों का आवंटन इन चार न्यायाधीशों की मर्जी से होने लगे तो सुप्रीम कोर्ट का प्रशासन सही हो जाएगा?

सुप्रीम कोर्ट के एक पूर्व न्यायाधीश आर.एस. सोढ़ी ने तो यहाँ तक कह दिया कि इन सभी चारों न्यायाधीशों पर महाभियोग चलाया जाना चाहिए। ये ट्रेड यूनियननिज्म गलत है। लोकतंत्र खतरे में है। ये कोई मसला नहीं है। उनकी शिकायत प्रशासनिक मुद्दों पर है। वे चार जज हैं। वहाँ 24 और भी जज है। ये बचकानापन है।

अटॉर्नी जनरल के.के. वेणुगोपाल ने भी कहा कि सुप्रीम कोर्ट के चार जजों के प्रेस कॉंफ्रेंस करने के अभूतपूर्व कदम से बचा जा सकता था। यही नहीं, सुप्रीम कोर्ट के सम्मानित पूर्व मुख्य न्यायाधीश जे. एस. वर्मा ने तो 2 जून, 2011 में ही कहा था- 'उच्च न्यायपालिका में संदिग्ध निष्ठावाले कुछ व्यक्ति पहुँच गए हैं।' कुल मिलाकर देखा जाए तो सुप्रीम कोर्ट के चार वरिष्ठ न्यायाधीशों का अपने ही मुख्य न्यायाधीश के खिलाफ सार्वजनिक रूप से आरोप लगाने की यह घटना देश की न्यायिक अंतरात्मा को झकझोरने वाली घटना है। अगर देश में न्यायपालिका की साख को बट्टा लगेगा और कानून का राज का क्षय होगा, तो भला जनता किस पर भरोसा करेगी?

(151)प्रश्न: सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के मतभेद सार्वजनिक होने से क्या न्यायपालिका की साख प्रभावित होगी? आखिर कैसे?

उत्तर: हाँ, निश्चित रूप से सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के मतभेद सार्वजनिक होने से न्यायपालिका की साख प्रभावित होगी, क्योंकि चारों वरिष्ठ न्यायाधीशों ने 1999 में न्यायाधीशों के लिए बनाई गई न्यायिक आचार संहिता का उल्लंघन किया है। उन्हें तो मीडिया को साक्षात्कार तक देने की मनाही है। बिना मुख्य न्यायाधीश की अनुमति वे प्रेस से बात नहीं कर सकते।

जिस प्रकार कार्यपालिका का कोई उच्च अधिकारी उसकी सेवा नियमावली में स्पष्ट मनाही की वजह से सीधे मीडिया के समक्ष अपनी शिकायतें नहीं प्रस्तुत कर सकते हैं उसी प्रकार न्यायपालिका के न्यायाधीश भी आचार संहिता का उल्लंघन नहीं कर सकते, किंतु चार वरिष्ठ न्यायाधीशों ने प्रतिष्ठित अपनी सेवा नियमों को तोड़ा है जिसका न्यायपालिका की साख पर अवश्य पड़ा है। केवल और केवल मुख्य न्यायाधीश को ही यह अधिकार है कि वे न्यायालय में लाए जा रहे मामलों को विभिन्न बेंचों आवंटित करें। यह असंदिग्ध स्थिति है। किसी खास मामले का आवंटन अपने लिए पाने का प्रयास अवैध और असंवैधानिक है तथा शक पैदा करता है। इस ख्याल से देखा जाए तो प्रेस काँफ्रेंस में चार वरिष्ठ न्यायाधीशों ने मुख्य न्यायाधीश की कार्यशैली पर विवाद रखकर न्यायपालिका की साख को अपूरणीय क्षति पहुँचाई है। इन्हीं हालातों को देखते हुए तो व्यंग्य के मशहूर कवि ओम प्रकाश तिवारी ने अपनी व्यंग्य कविता की इन पंक्तियों से न्यायाधीशों के आचरण पर व्यंग्य कसा है-

'करना जिनको फैसला वही लड़ रहे आज,
जज साहब को आ रही नहीं तनिक भी लाज।
नहीं तनीक भी लाज जिन्हें आचरण सिखाना,
उनका तेवर आज हुआ दिखता बेगाना।
यदि अब भी मीलॉर्ड नहीं छोड़ेंगे लड़ना,
तो पब्लिक को स्वयं फैसला होगा करना।'

(152)प्रश्न:सुप्रीम कोर्ट द्वारा संजय लीला भंसाली की फिल्म पद्मावत को पूरे देश में प्रदर्शन किए जाने के फैसले पर आपकी क्या प्रतिक्रिया है और क्यों?

उत्तर:भाई रवीन्द्र जी,सुप्रीम कोर्ट द्वारा संजय लीला भंसाली की फिल्म पद्मावत को पूरे देश में प्रदर्शन किए जाने के फैसले का मैं स्वागत करता हूँ, क्योंकि सेंसर बोर्ड ने कुछ संशोधन-परिवर्तन के साथ जब इस फिल्म को प्रदर्शन के

लिए अनुमति प्रदान कर दी है, तो कायदे से सेंसर बोर्ड की अनुमति के बाद राज्य सरकारों को इस फिल्म के प्रदर्शन को रोकने की बजाय इस पर ध्यान देना चाहिए था कि फिल्म का विरोध करने वाले किसी तरह का उपद्रव न करने पाएँ, लेकिन दुर्भाग्य से उन्होंने अपने रवैए से ऐसे तत्वों को बल प्रदान करने का ही काम किया जिसे एक तरह से अराजकता के समक्ष स्वैच्छिक समर्पण ही कहा जाएगा।

दरअसल, मुझे लगता है कि मध्यप्रदेश, हरियाणा, राजस्थान, गुजरात की सरकारों ने अपने-अपने राज्य के लोगों की भावनाओं के प्रति कुछ ज्यादा ही संवेदनशील इसलिए दिखे, क्योंकि उन्हें अपने वोट बैंक खिसकने का भय सताने लगा, राजनीतिक दलों और उसके राजनेताओं के साथ यही दिक्कत है कि वे हर फैसले और अच्छे कार्यों के क्रियान्वयन के पूर्व उसे राजनीति में घसीट लेते हैं, अन्यथा राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, हरियाणा की सरकारों ने पद्मावत फिल्म का प्रदर्शन रोकने की तत्परता क्यों दिखाई? क्या ये सरकारें यह साबित करने की होड़ में थीं कि वे उन लोगों की भावनाओं के प्रति ज्यादा संवेदनशील हैं जो इस फिल्म का विरोध कर रहे हैं। अगर राज्य सरकारें इस तरह किसी न किसी जातीय संगठनों की माँग पर फिल्मों का प्रदर्शन रोकने लगीं तो फिर देश में फिल्मों का निर्माण ही मुश्किल में पड़ जाएगा, क्योंकि इतने बड़े देश में हर दूसरी-तीसरी फिल्म को लेकर कोई न कोई किसी तरह की आपत्ति उठा ही देता है। निराधार आपत्तियों का यह मतलब नहीं कि राज्य सरकारें खुद सेंसर बोर्ड का काम अपने हाथ में ले लें। आखिर सेंसर बोर्ड भी तो एक सरकारी संस्था है। उसके अधिकारों का सम्मान राज्य सरकारें नहीं करेंगी तो और कौन करेगा? सेंसर बोर्ड की इस बात पर भरोसा किया जाना चाहिए कि फिल्म पद्मावत न तो इतिहास से छेड़छाड़ करती है और न ही किसी की भावनाओं की अनदेखी। बेहतर हो कि राज्य सरकारें सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले पर किंतु-परंतु करने की बजाय कानून एवं व्यवस्था बनाए रखने पर ध्यान दें, क्योंकि यदि पद्मावत फिल्म प्रदर्शन किए जाने पर कोई संगठन अराजकता फैलाता हो तो कानून-व्यवस्था बनाए रखने की जिम्मेदारी राज्य-सरकारों की है। इस दृष्टि से देखा जाए तो सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले के बाद पद्मावत के प्रदर्शन के विरोध में कोई हिंसा करने की धमकी देता है और कानून-व्यवस्था को भंग करता है तो सरकार उनसे सख्ती से निपटे। अगर ऐसा नहीं किया जाता तो इससे कानून के शासन का उपहास उड़ने के साथ ही अराजकता के जरिए अपनी बात मनवाने वालों को बल मिलेगा। मुझे आश्चर्य इस बात को लेकर है कि फिल्म पद्मावत का विरोध वे लोग अधिक कर रहे हैं जिन्होंने न तो फिल्म देखी है और न ही उसकी विषय-वस्तु से अवगत हैं।

द्वितीय अध्याय :
आर्थिक प्रश्नोत्तर

(1)प्रश्नः वर्ष 2014-15 में भारतीय अर्थव्यवस्था में 7 प्रतिशत से ऊपर विकास दर रहा और वर्ष 2015-16 में भी 8 प्रतिशत तक जाने की उम्मीद की गई, फिर भी आर्थिक सुधारों का लाभ गरीबों तक तत्काल क्यों नहीं पहुँचता है?

उत्तरः दरअसल, सुधारों की दिशा मुख्यरूप से और आवश्यक रूप से आर्थिक विकास दर को बढ़ाने में होती है। विकास दर बढ़ने से देश को बहुत सारे लाभ तो होते हैं, पर इसका दूरगामी प्रभाव लोगों पर पड़ता है। गरीबों को भी नियोजना प्राप्त होता है, किंतु तत्काल नहीं। दूसरी ओर गरीब रोजमर्रा की जिंदगी में बिजली, पानी, सड़क, स्वास्थ्य, शिक्षा और रोजगार जैसे मुद्दों से जूझता रहता है और वह इन समस्याओं का तत्काल समाधान चाहता है जो उसे बढ़ते आर्थिक सुधारों से तत्काल नहीं मिल पाता है। अतएव जरूरत इस बात की है कि आर्थिक विकास दर में वृद्धि और आम लोगों की जीवनशैली में सुधार को एक साथ जोड़कर देखा जाए।

(2)प्रश्नः आप अर्थशास्त्र के विद्यार्थी रहे हैं। क्या मुझे आप बताएँगे कि वैश्विक मंदी के बीच अर्थव्यवस्था को मजबूत करने का कौन सा रास्ता आपकी नजर में अपनाए जाने की आवश्यकता है?

उत्तरः भारत के विकास की नई संभावनाएँ बताने वाली जो राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय अध्ययन रिपोर्ट अभी प्रकाशित हुई है उनमें एक मत से कहा गया है कि आर्थिक मौकों को मुट्ठी में लेने और विकास दर बढ़ाने हेतु बुनियादी ढाँचे का विकास भारत के लिए एक जरूरी रास्ता है। यदि भारत अटके पड़े आर्थिक सुधारों व बुनियादी ढाँचा परियोजनाओं को गति दे तो विकास दर 10 फीसदी तक पहुँच सकती है।

देश में दिसंबर, 2014 के अंत तक 26.5 लाख करोड़ रुपए की 1550 परियोजनाएँ अटकी हुई थीं। इन परियोजनाओं में सबसे अधिक 45 प्रतिशत बुनियादी ढाँचा क्षेत्र है। इस समय जब चीन के विकास मॉडल के विरोधाभास उजागर हो गए हैं और 25 साल में सबसे कम विकास दर 7.3 फीसद पर दिखाई दे रहा है तथा यूआन के अवमूल्यन के बाद भी चीन के बाजारों में गिरावट है ऐसे में भारत आर्थिक सुधारों और बुनियादी ढाँचे के विकास पर प्राथमिकता से ध्यान देगा, तो फायदा उठा सकने की संभावना रखता है।

विश्व अर्थव्यवस्था में कई देश जहाँ निम्न विकास दर से जूझ रहे हैं, वहाँ भारत की वृद्धि दर चीन से आगे निकल रही है। यदि भारत बुनियादी ढाँचे की बाधाओं को दूर करे, तो 2016 तक भारतीय अर्थव्यवस्था 2009 की तुलना में दोगुनी हो सकती है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि देश के तेज विकास में एक प्रमुख बाधा कमजोर बुनियादी ढाँचा है। बुनियादी ढाँचे में प्रमुखतया सड़क, पुल, रेलवे, बंदरगाह, एयरपोर्ट, उर्जा, संचार, जल-मल निकास व्यवस्था, जलापूर्ति, विनिर्माण एवं कृषि क्षेत्र का ढाँचागत आधार शामिल है। अबतक एक के बाद एक सरकारें बुनियादी ढाँचा विकास को प्राथमिकता देती रही हैं, मगर विभिन्न क्षेत्रों में बुनियादी ढाँचे से जुड़े अनिवार्य तत्वों की सीधी कमी अर्थव्यवस्था के विकास में बाधक साबित हुई है। यही कारण है कि विकसित देश जिसने अपने ढाँचागत आधार को विकसित कर लिया है, मगर उन देशों में उपभोक्ता आधार संकुचित हो गया है जिसके चलते उसके वैश्विक निवेश भारत की तेजी से बढ़ती हुई अर्थव्यवस्था में प्रवेश करना चाहते हैं, लेकिन भारत में अल्प विकसित ढाँचागत आधार के चलते उन्हें विभिन्न प्रकार की चुनौतियों और जोखिमों के मद्देनजर अपने कदमों की गति धीमी करनी पड़ रही है। बुनियादी ढाँचा ही विकास को रफ्तार देने का अहम काम कर सकता है। इसलिए बुनियादी ढाँचा क्षेत्र में निवेश संबंधी कमियों को दूर किया जाना जरूरी है।

(3)प्रश्न: भारत की अर्थव्यवस्था को मजबूत आधार प्रदान करने के ख्याल से कृषि, उद्योग व सूचना प्रौद्योगिकी के साथ-साथ पर्यटन क्षेत्र का आपकी नजर में क्या भविष्य है?

उत्तर: किसी भी राष्ट्र की अर्थव्यवस्था को मजबूत आधार प्रदान करने के ख्याल से कृषि, उद्योग व सूचना प्रौद्योगिकी के साथ-साथ पर्यटन क्षेत्र का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है। भारत की झरनों व नदियों से भरपूर प्राकृतिक खूबसूरती, पारंपरिक मेले, हस्तशिल्प से सजे बाजार, ऐतिहासिक इमारतें, प्राचीन विरासत, कहीं रेगिस्तान तो कहीं समुद्र सैलानियों को अपनी ओर आकर्षित और लुभाते रहे हैं। पर्यटन की दृष्टि से भारत के पास विशाल प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति है। आखिर तभी तो मैक्समूलर ने कहा था, 'यदि हमें सम्पूर्ण विश्व में किसी ऐसे देश की खोज करनी हो, जिसमे प्रकृति की सर्वाधिक संपदा, शक्ति व सौंदर्य निहित हो, तो मैं भारत का नाम लूँगा।'

'अतिथि देवो भव:' का भाव हमें बचपन से ही सिखाया जाता है। 'अतुल्य भारत' का भाव लिए भारत जैसे सांस्कृतिक, भौगोलिक विविधतावाले

देश में पर्यटन की असीम संभावनाएँ हैं। आँकड़ों के अनुसार 2012 में पर्यटन ने सकल घरेलू उत्पाद में 6.6 फीसद योगदान दिया, साथ ही 3 करोड़ 95 लाख रोजगार के अवसर प्रदान किए। 2013 के दौरान पर्यटन उद्योग ने अर्थव्यवस्था में 63160 करोड़ रुपए का योगदान दिया। अपार संभावनाएँ समेटे हुए पर्यटन क्षेत्र के प्रति सरकार को ध्यान देने की आवश्यकता है। जैसे हवाई अड्डों की कमी, सड़कें, महिला सैलानियों के साथ बढ़ते यौन हिंसा के मामले, स्वच्छता संबंधी समस्याएँ, लचर मेहमानबाजी, वीजा प्रक्रिया में देरी, कई ऐतिहासिक स्थल की चिंताजनक खस्ताहालत, निवास व खान-पान संबंधित अव्यवस्था जैसी कमियों को यदि दूर कर लिया जाए, तो निश्चित तौर पर भारत में अर्थव्यवस्था मजबूत आधार प्रदान करने के ख्याल से पर्यटन उद्योग का भविष्य उज्ज्वल है।

भारत विश्व की प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में से एक है और आँकड़े बताते हैं कि 60 देशों में सबसे ज्यादा विदेशी मुद्रा की कमाई पर्यटन से ही होती है। भारत के पास अपार अवसर उपलब्ध हैं। बस जरूरत केवल इस बात की है कि अवसर को कार्य में परिवर्तित करने की और पर्यटन को बढ़ाने की। निश्चित रूप से हमें लंबी दूरी तय करने के लिए तैयार रहना होगा।

वर्तमान में भारत पर्यटन उद्योग की दृष्टि से एक बड़ा हब बन कर उभरा है। देश के सकल घरेलू उत्पाद में 6.23 प्रतिशत और कुल रोजगार में 8.78 प्रतिशत के योगदान के साथ पर्यटन उद्योग सेवा क्षेत्र में अग्रणी भूमिका निभा रहा है। देश के विभिन्न भागों में स्थित पर्यटन केंद्र लंबे अरसे से देशी एवं विदेशी सैलानियों के आकर्षण के केंद्र रहे हैं। बड़ी संख्या में विदेशी सैलानी प्रतिवर्ष गौरवशाली भारत की अनुपम सभ्यता-संस्कृति के अनूठे प्रतीकों का दीदार करने आते हैं, यही कारण है कि वर्तमान समय में भारत में पर्यटन का उद्योग काफी फल-फूल रहा है। इससे सरकार को अरबों की आय भी प्रतिवर्ष प्राप्त होती है। जैव विविधता व सांस्कृतिक धरोहरों के धनी इस देश के अधिकांश राज्यों में पर्यटन के क्षेत्र में अपार संभावनाएँ हैं। लोग दुनिया के किसी भी कोने में घूमकर आ जाएँ, लेकिन जब बात सुकून की होती है, तो भारत ही याद आता है।

(4)प्रश्नः क्यों केंद्र सरकार आर्थिक माहौल का निर्माण करने के मामले में सही दिशा में है? क्या विपक्षी दलों के नेताओं ने आर्थिक विकास मामले में जानबूझकर नकारात्मक रवैए नहीं अपना रहे हैं? क्या इसे राष्ट्रीय हितों की अनदेखी नहीं कहा जाएगा?

उत्तर: इस वर्ष यानी 2015 के प्रथम छह माह में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश आकर्षित करने में भारत सबसे आगे रहा। भारत ने इस अवधि में अमेरिका और चीन को भी पछाड़ कर करीब 31 अरब डॉलर का निवेश हासिल किया। इससे यह साबित हो जाता है कि केंद्र सरकार आर्थिक विकास के माहौल का निर्माण करने में सही दिशा में है। इस माहौल का निर्माण नीतिगत सुधारों की देन है। विदेशी पूँजी निवेश हासिल करने में सबसे आगे रहने के साथ ही भारत के प्रतिस्पर्धी अर्थव्यवस्था वाले देशों के सूचकांक में 15 स्थान ऊपर चढ़ने से यह स्पष्ट होता है कि नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में केंद्र सरकार आर्थिक माहौल का निर्माण करने के मामले में सही दिशा में है।

मगर विपक्षी दलों के नेताओं द्वारा बेतुकी टिप्पणियाँ किया जाना हास्यास्पद लगता है, क्योंकि उनके कटाक्ष के इस रवैए से न केवल नकारात्मक माहौल बनता है, बल्कि आम जनता के बीच भ्रम फैलता है। आर्थिक विकास के मामले में जानबूझकर नकारात्मक रवैया अपनाने और आम जनता को गलत संदेश देने की कोशिश करना एक तरह से राष्ट्रीय हितों की अनदेखी करने वाला कृत्य है।

विगत चार-पाँच वर्षो से आरोप-प्रत्यारोप की घिनौनी राजनीति राष्ट्रीय व क्षेत्रीय दलों पर भारी पड़ती जा रही है। इन दलों में राष्ट्रहित की भावना दूर-दूर तक दिखाई नहीं पड़ती और अवसरवादी राजनीति के वे शिकार हो चुके हैं। दल-बदल तेवर दिखाने वाले भी इसकी गिरफ्त में हैं। इससे लोकतंत्र की शुचिता पर जहाँ प्रश्नचिह्न लगता है, वहीं आरोप-प्रत्यारोप थोथी राजनीति के साथ सस्ती लोकप्रियता का आधार भी बनता जा रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि सत्तापक्ष और विपक्ष अपने तमाम दलगत हितों का संधान करने के साथ ही यह भी देखें कि राष्ट्रीय हित के मामलों पर आम सहमति कैसे कायम हो। यह इसलिए ज्यादा जरूरी है, क्योंकि सत्तापक्ष और विपक्ष के बीच टकराव अब राष्ट्रीय हितों की भी बलि देता हुआ दिख रहा है।

मैं यह नहीं कहता कि सत्ता पर विराजमान हुक्मरान का विरोध न किया जाए। लोकतंत्र में विरोध की आवाज न हो, तो वास्तविक अर्थों में वह व्यवस्था अलोकतांत्रिक हो जाती है। मगर विरोध केवल विरोध जताने के लिए न हो। आज ऐसा ही हो रहा है। अगर किसी दल या राजनीतिज्ञ से असहमति हो, तो उसका प्रदर्शन वोट के माध्यम से करने का कारगर विकल्प भी मौजूद है। राजनीतिक अथवा सामाजिक स्तर पर यह कोशिश

होनी चाहिए कि असंयमित आचरण का प्रदर्शन न हो। समाज और राजनीति को दिशा देने वाला यह कार्यभार राजनीतिक दलों एवं उसके नेताओं को उठाना ही पड़ेगा। क्या राजनीति इसके लिए मानस तैयारी करेगी?

(5)प्रश्नः राष्ट्रपति की मंजूरी के बाद बेनामी सौदे पर प्रतिबंध लगाने वाला कानून अब और सख्त हो गया है, लेकिन क्या इसे सख्ती से लागू किया जाएगा?

उत्तर: केंद्र सरकार द्वारा बेनामी सौदे पर प्रतिबंध लगाने वाला कानून बनाए जाने के बाद राष्ट्रपति से उसे मंजूरी भी मिल गई है। सरकार ने बेनामी सौदे की सजा तीन साल से बढ़ाकर सात साल कर दी है, तो जाहिर है कि उसका उद्येश्य देश में बड़े पैमाने पर फैले कालेधन के कारोबार पर लगाम लगाना है। इसी के साथ सरकार यह स्वीकार भी कर रही है कि रीयल एस्टेट के कारोबार में बड़ी मात्रा में यह काम होता है। तभी तो उसके निशाने पर इस तरह का क्षेत्र है।

काले धन के बारे में देश में दो तरह के सिद्धांत चलते हैं। एक सिद्धांत इस बात का कायल है कि देश का नब्बे प्रतिशत कालाधन देश के भीतर है और विदेशी बैकों में जिस कालेधन के जमा होने का हल्ला मचाया जाता है उसकी मात्रा महज दस प्रतिशत है, इसलिए ज्यादा जोर देशी कालेधन को निकालने पर दिया जाना चाहिए। जबकि दूसरा सिद्धांत विदेशी बैकों में जमा काले धन को लक्ष्य कर कहता है कि देश में सक्रिय काला धन तो कम से कम देश के कारोबार में लग रहा है जबकि बाहर जमा धन किसी काम का नहीं आ रहा है, इसीलिए बारह वाले धन को देश में लाने पर ताकत लगाई जानी चाहिए। इसी को मद्देनजर रखते हुए बेनामी सौदे पर आए मौजूदा कानून काले धन को पकड़ने के ख्याल से लाया गया है, लेकिन अगर बेनामी सौदे में बहुत छोटे लोग शामिल हैं, तो उनके लिए इतने सख्त कानून की जरूरत नहीं थी, लेकिन अगर इसमें बड़े लोग शामिल हैं, तो सजा सख्त करने के बाद तो इस कानून को लागू किए जाने की संभावना और घट गयी है। आर्थिक अपराध के कानूनों में फौजदारी सजाएँ बढ़ाते जाने से ज्यादा कारगर है कि उनके जुर्माने या मुआवजे की राशि बढ़ाई जाए।

(6)प्रश्नः देश के विशेष आर्थिक क्षेत्र यानी स्पेशल इकोनॉमिक जोन (सेज) अपने मकसद में कामयाब क्यों नहीं रहे हैं?

उत्तर: हाल ही में देश के विशेष आर्थिक क्षेत्र यानी स्पेशल इकोनॉमिक जोन (सेज) के कार्यकलापों से संबंधित जो नई रिपोर्ट प्रकाशित हुई है, उनका

मानना है कि सेज अपने मकसद में कामयाब नहीं रहे हैं। भारतीय वाणिज्य एवं उद्योग मंडल (एसोचैम) की एक रिपोर्ट के मुताबिक देश में जितने सेज हैं, उनमें आधे से अधिक बेकार पड़े हैं। इस समय देश में 430 सेज हैं, इनमें से 226 सेज बेकार पड़े हुए हैं। महज 204 सेज में ही औद्योगिक इकाइयाँ काम कर रही हैं।

दरअसल, वर्ष 2000 में प्रारंभ सेज की अवधारणा का मकसद निर्यात आधारित इकाइयों को विशेष प्रोत्साहन देना रहा है। निर्यात को बढ़ाने के साथ-साथ अर्थव्यवस्था को गति देने और रोजगार के अवसर बढ़ाना भी सेज का प्रमुख उद्देश्य है। सेज का मकसद घरेलू और विदेशी निवेशकों को आकर्षित करना रहा है। लेकिन यदि हम सेज के अबतक के प्रस्तुतीकरण का अध्ययन करें, तो पाते हैं कि बड़ी संख्या में सेज की अधिसूचना रद्द किए जाने तथा अधिसूचित सेज के खाली पड़े रहने की वजह से इसके तहत दिए जाने वाले कर लाभ एवं छूट को लेकर नीतियों की अस्थिरता प्रमुख कारण हैं।

मुझे लगता है कि न्यूनतम वैकल्पिक कर लागू किए जाने के बाद सेज में उद्योग लगाने का आकर्षण कम होना तथा सरकार की ओर से उद्योग के हित में कदम नहीं उठाना भी सेज के प्रस्तुतीकरण को चिंताजनक बनाने के लिए जिम्मेदार दिखाई दे रहे हैं। 2016-17 के नए बजट में सेज के लिए अनुकूल प्रावधान नहीं होने से सेज से निर्यात वृद्धि की संभावनाओं पर प्रश्न चिह्न लग गया है। चालू वितीय वर्ष के बजट में सरकार ने विशेष आर्थिक क्षेत्रों के लिए आयकर छूट को खत्म करने का फैसला किया है। सभी इकाइयों के लिए कर लाभ खत्म किए जाने का असर भारतीय आईटी सेवा कंपनियों पर भी पड़ रहा है, जो सेज में काम कर रही हैं।

जिस चीन को अब दुनिया की फैक्टरी कहा जाता है उसने हमसे सीखकर 1980 में पहला एसईजेड शेनझेन में बनाया जबकि भारत ने 1965 में ही एशिया का पहला निर्यात संवर्धन जाने कांडला(गुजरात) में बना लिया था जबकि भारत अभीतक औद्योगिकीकरण की जमीन ही तलाश रहा है। हम यह आशा करें कि भारत सरकार ऐसे रणनीतिक प्रयास करेगी, जिससे देश में आधे से अधिक सेज जो बेकार पड़े हुए हैं, वे उपयोगी बनकर निर्यात बढ़ाने में सार्थक भूमिका निभाएँगे।

(7)प्रश्नः भारतीय रिजर्व बैंक के नए गवर्नर उर्जित पटेल के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती क्या होगी? क्या इन्हें अपने दायित्व के निर्वहण में इनके पूर्व के अनुभव काम आएँगे?

उत्तरः भारतीय रिजर्व बैंक के 24वें गवर्नर के पद पर उर्जित पटेल को नियुक्त किया गया है। रिजर्व बैंक के डिप्टी गवर्नर के पद पर रहे उर्जित पटेल ने रघुराम राजन की जगह 4 सितंबर, 2016 को अपना कार्यभार गवर्नर के रूप में संभाल लिया है। पटेल के सामने सबसे बड़ी चुनौती महंगाई को कम करने और बाजार में पूँजी के प्रवाह को बनाए रखने की होगी। रिजर्व बैंक बैंकों का नियमन, नोटों की छपाई और विदेशी मुद्रा बाजार में अस्थिरता को रोकने में अहम भूमिका निभाता है। उर्जित पटेल के समक्ष राजन के अधूरे एजेंडे को पूरा करने की चुनौती होगी।

वर्ष 2013 से भारतीय रिजर्व बैंक के डिप्टी गवर्नर के पद पर तैनात रहने के दौरान उर्जित पटेल ने मौद्रिक नीति बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। इसी नीति के तहत महंगाई रोकना बैंक की प्राथमिकता में शामिल है। 2014 में पटेल के नेतृत्व में गठित कमिटी ने अगले पाँच साल तक खुदरा महंगाई चार फीसद करने और अधिक से अधिक छह फीसद तक होने की बात कही। विश्वास है उर्जित पटेल का यही अनुभव इन्हें अपने दायित्व के निर्वहण में काम आएगा।

वैसे 53 साल के उर्जित पटेल स्कूल ऑफ इकॉनोमिक्स से स्नातक तथा ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से एमफिल व येल विश्वविद्यालय से पीएच.डी. किए हैं और इन्हें दो दशक का उर्जा बुनियादी ढाँचा व वित्त क्षेत्र का अनुभव भी है। 1990-95 तक आईएमएफ में अमेरिका, भारत, म्यांमार और ब्रह्मास डेस्क पर इन्होंने काम भी किया है तथा बुकिंग इस्टीच्यूशन और बोस्टन कंसलटिंग ग्रुप में भी रहे। इसके अतिरिक्त 1996-97 तक डेपुटेशन पर रिजर्व बैंक में तथा 1998-2001 में वित्त मंत्रालय में सलाहकार भी रहे। पटेल को मौद्रिक नीति का विशेषज्ञ माना जाता है और देश में पहली बार महंगाई दर का लक्ष्य तय करने का फैसला भी पटेल की अगुवाईवाली समिति की सिफारिशों के आधार पर हुआ था। पटेल को महंगाई का माहिर योद्धा के तौर पर माना जाता है।

मजबूत आर्थिक वृद्धि विरासत में मिलने की वजह से अनेक चुनौतियों में औद्योगिक क्षेत्र खासकर लघु स्तर के उद्यमों की वृद्धि दर में तेजी लानी होगी। यह क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था की वृद्धि एवं विकास में

महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारत के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) रोजगार सृजन, निवेश और आयात में इस क्षेत्र का खासा योगदान है।

नए गवर्नर के समक्ष एक और चुनौती व्यापक आधारवाली मौद्रिक नीति समिति में रिजर्व बैंक की तरफ से नामित प्रतिनिधि नियुक्त करने की होगी। इस समिति को चार प्रतिशत, जिसमें दो प्रतिशत की घट-बढ़ की गुंजाइश होगी, पर बनाए रखने के मद्देनजर ब्याज दर तय करनी है। छह सदस्यीय मौद्रिक नीति समिति में आधे सदस्य रिजर्व बैंक से होंगे। समिति में बाकी सदस्य सरकार द्वारा नामित किए जाएँगे। अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र में मजबूती के हालात बनने के साथ ही तमाम क्षेत्रों में ऐसा सामंजस्य बने जिससे कि देश आर्थिक विकास की डगर पर सहजता से अग्रसर हो।

(8)प्रश्नः भारत की संघीय व्यवस्था में वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी)विधेयक पारित हो जाने पर क्या 'एक देश एक टैक्स' का स्वप्न साकार हो पाएगा? क्या आपको ऐसा लगता है कि जीएसटी से महंगाई पर लगाम लगाने में मदद मिलेगी? जीएसटी लागू होने से और क्या-क्या फायदे की उम्मीद की जाती है?

उत्तर: देश में आर्थिक सुधारों की जब 25वीं सालगिरह मनायी जा रही है, तब काफी हिला-हवाला के बाद वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) के लिए 122वाँ संविधान संशोधन विधेयक का पिछले 3 अगस्त, 2016 को सर्वसम्मति से पारित किया जाने को ऐतिहासिक कहा जाएगा। आपको याद होगा अटल बिहारी वाजपेयी सरकार के समय विचार के तौर पर यह विधेयक आया था और जीएसटी की रूपरेखा बनाने का काम तो 2000 में ही शुरू हुआ था और लगातार विचार-विमर्श के बाद 2010 में उसे कानून को रूप देकर लागू करने का लक्ष्य रखा गया था, लेकिन आम सहमति के अभाव में यह लक्ष्य निरंतर खिसकता गया और यह पूरे 13 साल बाद मूर्तरूप लेने जा रहा है। ऐसा तब हुआ जब सभी प्रमुख राजनीतिक दल सैद्धांतिक तौर पर इससे सहमत थे कि देश को किस्म-किस्म के टैक्स के मकड़जाल से बचाने की जरूरत है। यह सही है कि सत्तारूढ़ राजनीतिक दल को भी अपने राजनीतिक हितों की परवाह करनी होती है, लेकिन उसकी सर्वोच्च प्राथमिकता बेहतर नीतियों के माध्यम से सुशासन स्थापित करना ही होना चाहिए।

जीएसटी की मूल भावना है पूरे देश में समान टैक्स व्यवस्था से राज्यों में टैक्स प्रशासन को सरल बनाते हुए देश को एक साझा बाजार में

तब्दील करना, जिससे उत्पादन, कारोबार और सेवा क्षेत्र समेत संपूर्ण अर्थव्यवस्था का विकास हो।

अब सवाल यह उठता है कि भारत की संघीय व्यवस्था में राज्यों की राजनीति पर ज्यादा जोर देने से क्या 'एक देश एक टैक्स' का स्वप्न साकार हो पाएगा? देश में राजनीतिक असहिष्णुता के माहौल में जब संसदीय लोकतांत्रिक प्रणाली असफल होती दिख रही हो, तब जीएसटी के माध्यम से कराधान प्रणाली की एकरूपता कैसे हो पाएगी? यह एक बड़ा सवाल है खासकर तब जब राज्यसभा के बाद संशोधित विधेयक को पुनः लोकसभा से पारित कराया जाएगा और फिर कम से कम 15 राज्यों की विधानसभाओं से इसे पारित कराना होगा। राष्ट्रपति से मंजूरी के बाद इसे अप्रैल, 2017 से लागू करने की तैयारी है।

भारत की संघीय व्यवस्था राजनीतिक दुराग्रहों की शिकार रही है, जिसकी बानगी जलविवादों में उच्चतम न्यायालय के आदेशों की अवहेलना में देखने को मिलता है। जीएसटी के भावी विवादों में घाट या परिषद कितनी सफल होंगी, यह अनुमान लगा पाना मुश्किल नहीं है। ऐसी स्थिति में राजनीति और स्थानीय हितों से प्रेरित राज्य आने वाले समय में देशहित से कितने प्रेरित होंगे, इस पर ही जीएसटी की ऐतिहासिक सफलता का दारोमदार है।

जहाँ तक जीएसटी से महंगाई पर लगाम लगाने में मदद का सवाल है सरकार भी मानती है कि शुरुआती तीन सालों में जीएसटी महंगाई बढ़ाने वाला टैक्स साबित होगा। जीएसटी में राज्यों द्वारा दोहरे कराधान की पूरी गुंजाइश है और कर व्यवस्था में राजनीति के खेल की कीमत अंतत जनता को ही चुकानी पड़ेगी, लेकिन अधिकतम टैक्स की दर 18 प्रतिशत तक रखने पर जब सभी दलों का फैसला हुआ है तो उम्मीद की जाती है कि महंगाई पर लगाम लगाने में मदद मिलेगी। वैसे जीएसटी लागू होने से बिहार फायदे में रहेगा और कारोबारियों के साथ उपभोक्ताओं को भी इसका लाभ मिलेगा जो भी हो अटल काल का विचार मोदी ने किया साकार।

विदित हो कि अभी करीब 20 प्रकार के कर लगते हैं। जब एक अप्रैल, 2017 से जीएसटी कानून लागू हो जाएगा, तब 20 करों की जगह मात्र एक कर लगेगा। दूसरी बात यह कि इस समय कुल मिलाकर 30 से 35 प्रतिशत कर लगता है और जीएसटी लागू होने पर यह 18 प्रतिशत तक आ जाएगा, इससे अनेक चीजें सस्ती होंगी तथा उद्योगों और कारोबारियों को

लाभ होगा और एक साथ व्यापार, उद्योग एवं आम आदमी को प्रभावित करेगा, इससे पारदर्शिता तो आएगी ही, साथ ही चूँकि कर भरना आसान होगा इसलिए उसका असर व्यापार एवं निवेश पर सकारात्मक होगा। यही नहीं जीएसटी लागू होने के बाद विकास दर में दो प्रतिशत की वृद्धि की उम्मीद की जा रही है।

वर्तमान में पूरी दुनिया के 165 देशों में जीएसटी कानून लागू है। भारत में यह लागू होने पर यह 166वाँ देश हो जाएगा। अर्थव्यवस्था ज्यादा कुशलता की ओर जाएगी। जीएसटी के दायरे में करीब 20-25 लाख करदाता आएँगे। वित्त मंत्रालय में मुख्य आर्थिक सलाहकार अरविंद सुब्रह्मण्यम ने जीएसटी पर अपनी रिपोर्ट में साफ किया है कि आधुनिक भूमंडलीय कर इतिहास में भारतीय जीएसटी अभूतपूर्व होगा। भारत को सही मायने में एक होने में मदद मिलेगी। यानी तमाम साज-समान एक राज्य से दूसरे राज्य कर जटिलताओं के बगैर आ-जा पाएगा।

'मेक इन इंडिया बाय वन इंडिया' इस मुहावरे को अरविंद सुब्रह्मण्यम प्रयुक्त करते हुए कहते हैं कि एक राज्य के ट्रक बिना तमाम एंट्री-टैक्स, कर वगैरह की चौकियों पर रुके तेज गति से चलें, तो पूरी अर्थव्यवस्था को उसका फायदा मिलेगा। अमेरिका में एक ट्रक रोज औसत 800 किलोमीटर चलता है, पर भारत में औसतन 280 किलोमीटर, क्योंकि भारत में ट्रक को तमाम कर बिंदुओं पर रुकना होता है।

जीएसटी लागू होने के बाद अफसरशाही भ्रष्टाचार की समस्याओं से निजात मिल सकती है, लाल फीताशाही से राहत मिल सकती है। मुझे आश्चर्य इस बात को लेकर है कि भारत ने जब जीएसटी के बारे में सोचा था, तब इस तरह की व्यवस्था केवल 34 देशों में थी, लेकिन आज करीब 160 देश एकल टैक्स की व्यवस्था को अपना चुके हैं। इससे पता चलता है कि एक महत्वपूर्ण सुधार अपनाने में भारत कितना पीछे रह गया। सच तो यह है कि देशहित की अनदेखी कर संघीय ढाँचे के खतरे की आड़ लेना राजनीतिक संकीर्णता के अलावा और कुछ नहीं। आजादी के उनहत्तर वर्षों में यह साबित हो चुका है कि भारत का संघीय ढाँचा बेहद सशक्त है और बात-बात पर इस ढाँचे के अस्तित्व अथवा राज्यों की स्वायत्तता के समक्ष खतरे की आशंका संकीर्ण राजनीति है। यह राजनीतिक दलों की संकीर्णता ही कही जाएगी कि जीएसटी पर आम सहमति बनाने में उन्हें करीब एक दशक से भी अधिक समय लग गया।

(9)प्रश्नः आर्थिक उदारीकरण के 25 साल पूरे होने के बाद भी गरीबी, बेरोजगारी, जनस्वास्थ्य, श्रमिक और पर्यावरण की चिंताएँ और भी बढ़ी हैं। ऐसा क्यों?

उत्तर: 1947 में ब्रिटिश साम्राज्यवाद से मुक्ति मिलने के बाद मिश्रित व नियंत्रित अर्थव्यवस्था पर यह देश आगे बढ़ा, लेकिन 1991 तक आते-आते पूरी अर्थव्यवस्था चरमरा गई। भ्रष्टाचार और अव्यवहारिक अर्थनीति के चलते 1991 में विदेशी मुद्राकोष घटकर एक अरब डॉलर रह गया। भुगतान संतुलन की स्थिति भयावह हो गई ओर अर्थव्यवस्था में अराजकता आ गई। इसके बाद आर्थिक उदारीकरण की घोषणा 1991 में हुई। आर्थिक उदारीकरण की घोषणा के 25 वर्ष बीत जाने के बाद भी गरीबों-किसानों के जीवन में कोई विशेष परिवर्तन नहीं देखा जा रहा है।

हालांकि यह भी सही है कि आर्थिक उदारीकरण से विकास दर में वृद्धि हुई है और सकल राष्ट्रीय संपदा बढ़ी है, लेकिन उदारीकरण के मूल सिद्धांत के मुताबिक उत्पादकों में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा नहीं है। भारी पूँजीवाली बहुराष्ट्रीय या देशी कंपनियों के सामने कम पूँजीवाले संस्थान प्रतियोगिता से बाहर हैं। देश की 75 प्रतिशत जनता गरीब है। महानगरों की चमक बढ़ी है, लेकिन गाँव उदास और हताश है। उदारीकरण का लाभ ग्रामीणों तक नहीं पहुँचा। खेती घाटे का व्यवसाय है, देहाती शिल्प खत्म हो गए। किसान आत्महत्या को विवश हैं। ग्रामीण क्षेत्रों से भारी पलायन भी जारी है। कृषि क्षेत्र हताश है। विकास दर का लाभ कुछेक घरानों, वर्गों तक ही सीमित हो गया है। उदारीकरण से पैदा होने वाले रोजगार भी नहीं बढ़ पा रहे हैं और सभ्यता-संस्कृति पर भी दृष्प्रभाव पड़ रहा है। इसलिए उदारीकरण की नीतियों को सबके लाभ का उपकरण बनाना होगा।

दरअसल, आर्थिक उदारीकरण का मतलब विदेशी पूँजी निवेश ही नहीं होता। केंद्र में वर्तमान सरकार के आने के बाद अहस्तक्षेपी सिद्धांत के तहत कम से कम शासन जैसे सुंदर शब्द का इस्तेमाल किया गया जिसमें उत्पादकों की संपूर्ण प्रतियोगिता इस सिद्धांत का आधार है। सब स्वस्थ प्रतिस्पर्धा हो, लेकिन सरकार का हस्तक्षेप कम से कम हो। खुली अर्थनीति या आर्थिक उदारीकरण का असली मतलब यही है। इसमें विदेशी पूँजी निवेश (एफडीआई) भी शामिल है। अर्थशास्त्रियों की मान्यता है कि इससे रोजगार के अवसर बढ़ते हैं। उत्पादकों की प्रतिस्पर्धा से उपभोक्ताओं को भी लाभ मिलते हैं, लेकिन मुद्रास्फीती, महंगाई या मंदी से जूझने का काम तो

सरकार ही करती है। भारतीय रिजर्व बैंक ब्याज दरों के घटाने-बढ़ाने सहित तमाम उपायों से अर्थव्यवस्था को गति देने का काम करता है और अन्य संस्थाएँ भी। उदारीकरण की सफलता या असफलता का दारोमदार सरकारी नीतियों में जुड़ा रहता है।

गरीबी हटाना राष्ट्रीय कर्तव्य है। कुछ माह पूर्व संयुक्त राष्ट्र की एक संस्था द्वारा जारी प्रसन्न देशों की सूची में भारत 100 से भी नीचे था।

वर्तमान दौर में सरकारी समाजवाद चीन में भी विकल्प नहीं रहा। सोवियत रूस इसलिए बिखर गया था। जैसे चीन ने समाजवाद के भीतर उदारीकरण की जरूरी जगह बनाई है, वैसे ही भारत को आर्थिक उदारीकरण के बीच लोक कल्याण के लिए सतत काम करना होगा। 'सबका साथ, सबका विकास' का लक्ष्य पूरा करने के लिए प्रशासन को भी जनहित प्रतिबद्ध करना जरूरी है।

नि:संदेह अर्थव्यवस्था के हर क्षेत्र में पहले सरकार की मौजुदगी और हस्तक्षेप से दशकों तक देश में जिस तरह के दमघोंटू हालात बने उसने आज भी भ्रष्टाचार और भाई-भतीजावाद पनपने के लिए मुफीद माहौल बना रखा है। उस मॉडल ने देश में एक ऐसी अर्थव्यवस्था का निर्माण किया था जिसका नियंत्रण कुछ मुट्ठी भर निजी कारोबारियों और सरकार के हाथों में था और जब आर्थिक सुधार की प्रक्रिया प्रारंभ हुई तब से यह साझेदारी ध्वस्त होनी शुरू हुई। आर्थिक उदारीकरण ने भारत के कारोबारी और उद्यमशीलता के परिदृश्य को निश्चित रूप से बदल दिया है, मगर सरकार और सरकारी संस्थाओं में इस काल में बहुत कम या कोई सुधार नहीं देखा गया है।

दरअसल, नियम आधारित गवर्नेंस सरकार के कामकाज में पारदर्शिता लाता है और नागरिकों या निवेशकों और सरकार के बीच भरोसे को बढ़ाता है, मगर नियमों के अभाव में गवर्नेंस राजनीतिक और नौकरशाही के विवेक पर हो जाता है। नियमों की बजाय विवेक पर आधारित सरकारी निर्णय भ्रष्टाचार एवं घोटाले का कारण बनते हैं। लेन-देन आधारित मॉडल राजनीति और कारोबारी जगत के बीच साठगांठ की वजह बनता है जिससे हमारे लोकतंत्र में विकृति आती है। राजनीतिक प्रक्रिया धनबल से संचालित होने लगती है और राजनीति भी क्रोनी पूँजीपतियों को संरक्षण देती है। इसके बाद पूँजी और राजनीतिक सफलता का एक दुष्चक्र आरंभ हो जाता है। उदारीकरण के 25 साल पूरे होने पर जरूरी है कि देश को नियम आधारित

गवर्नेंस के पथ पर अग्रसर किया जाए। इससे पारदर्शिता, प्रतियोगिता, दक्षता, रचनात्मकता और प्रतिभा के फलने-फूलने का मौका मिलेगा और तभी सच्चे मायने में बदलाव का सपना साकार होगा।

(10)प्रश्न: आप अर्थशास्त्र के विद्यार्थी रहे हैं। इस नाते क्या आप मुझे बताएँगे कि भारत के आर्थिक विकास और रोजगार सृजन के मसले को सुलझाने के आधारभूत कारक क्या हैं?

उत्तर: देश के आर्थिक विकास और रोजगार सृजन का मसला केंद्र एवं राज्य सरकारों सहित यहाँ के हर गरीब-अमीर, स्त्री-पुरुष, बच्चे-बुजुर्ग तथा नौजवान के लिए बेहद अहम है। जहाँ तक भारत के आर्थिक विकास और रोजगार सृजन के मसले को सुलझाने का सवाल है, जमीन, श्रम, पूँजी और उद्यमशीलता-ये चार आधारभूत कारक हैं जिनमें से तीन कारक हमारे पास भरपूर हैं। भारत के पास दुनिया में सातवां सबसे अधिक जमीन है। अमेरिका के बाद दुनिया में कृषि भूमि हमारे पास हैं। चीन हमसे पीछे है। जहाँ तक श्रम का सवाल है इस देश में 65 प्रतिशत आबादी की उम्र 35 साल से कम है। साल 2020 तक 29 साल की औसत उम्र के साथ हम दुनिया के सबसे युवा देश होंगे। उद्यमशीलता में हम भारतवासियों को कोई जवाब नहीं, क्योंकि यहाँ के पढ़े-लिखे लोग ही नौकरियों के लिए चक्कर लगाया करते हैं। एक ओर संगठित क्षेत्रों में नौकरी करने वालों की संख्या मात्र 6 प्रतिशत है, वहीं दूसरी ओर बाकी 94 प्रतिशत लोग असंगठित क्षेत्र में काम-धंधा करते हैं।

जहाँ तक चौथे कारक पूँजी का सवाल है, केंद्र एवं राज्य सरकारें विदेशों से पूँजी निवेश लाने के लिए अथक प्रयास कर रही हैं। सच तो यह है कि भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी विगत दो वर्षो में जितने भी देशों की यात्रा उन्होंने की है उनकी विदेश यात्राओं का उद्येश्य प्राय: पूँजी निवेश को आकर्षित करना रहा है। आखिर तभी तो उन्होंने अपनी हर यात्रा के दौरान संबंधित देशों के उद्यमियों तथा बड़ी-बड़ी कंपनियों के मालिकों एवं प्रमुख कार्यपालक अधिकारियों को संबोधित कर उनसे पूँजी निवेश के लिए अनुरोध किया है। इसके लिए पिछले दिनों सरकार ने अर्थव्यवस्था के नौ क्षेत्रों को प्रत्यक्ष विदेशी निवेश या एफडीआई के लिए पूरा खोल दिया। इसमें प्रतिरक्षा से लेकर नागरिक उड्डयन, दवा, सिंगल ब्रांड रिटेल और पशुपालन उद्योग तक शामिल है। इसके बाद अब भारत विदेशी पूँजी के मामले में दुनिया का संभवत: सबसे खुला देश बन गया है। विदेशी पूँजी इस तरह

रोजगार के अवसर पैदा करने का जरिया बन गयी है।

इसी तरह हर राज्य सरकार अपने-अपने स्तर पर विदेशी निवेशकों को आकर्षित करने में लगा है, उसके मंत्री-मुख्यमंत्रियों के विदेशी दौरे होते रहे हैं।

(11)प्रश्न: इस देश के गरीबों को आर्थिक गतिविधियों के केंद्र में लाने के लिए कौन-कौन से उपाय किए जाने की जरूरत है, अर्थशास्त्र के विद्यार्थी होने के नाते आप हमें बताएँ।

उत्तर: दरअसल, आजादी के बाद से ही इस देश में गरीबी हटाने और गरीबों के कल्याण की बातें प्राय: सभी राजनीतिक दलों के द्वारा की जाती रही हैं। तमाम सरकारें आईं और गईं जिसने गरीबी मिटाने के हर किस्म के नारे बुलंद किए। कभी गरीबी हटाओ, तो कभी अन्त्योदय की बात हुई, मगर आजादी के सात दशक बीत जाने के बावजूद गरीबी तो नहीं ही हटी, बल्कि न तो गरीबों के हालात सुधरे और न उनका कल्याण हुआ।

सच कहा जाए तो कायदे से गरीबी को समाप्त कर सकने या उसे कम करने के प्रयास ही नहीं हुए। आज भी गरीबी के मानक तय करने की माथा पच्ची ही हो रही है और गोटियाँ नीति आयोग से राज्यों की ओर और फिर राज्यों की ओर से पुन: नीतिआयोग की ओर ही फेंकी जा रही हैं और अंतत: नीति आयोग ने प्रधानमंत्री कार्यालय से ही गरीबी के मानक तय करने की गरज से एक पैनल गठित करने का अनुरोध करके अपना पल्ला झाड़ लिया है।

अर्थशास्त्र के विद्यार्थी होने के नाते मेरी समझ है कि गरीबों को आर्थिक गतिविधियों के केंद्र में लाना आवश्यक जान पड़ता है, ताकि गरीब स्वावलंबी बनें, किसी पर आश्रित न रहें और ना ही किसी पर अवलम्बित हो सकें।

(12)प्रश्न: क्या भारतीय अर्थव्यवस्था सुधार की पटरी पर तेजी से बढ़ती जा रही है? इसकी मुख्य वजहें क्या हैं?

उत्तर: हाँ, भारतीय अर्थव्यवस्था सुधार की पटरी पर तेजी से बढ़ती जा रही है, क्योंकि पिछले छह महीनों में अर्थव्यवस्था के बैरोमीटर कहे जाने वाले भारतीय संवेदी सूचकांक निफ्टी व सेंसेक्स ने 30 प्रतिशत तक की वृद्धि दर्ज कर निवेशकों को मालामाल कर दिया है। यह स्थिति रही तो बाजार नए उच्चतम स्तर पार कर नए दौर में प्रवेश कर सकता है। नई कर नीतियाँ, सरकार के काम के प्रति आक्रामक रवैया, भारतीय मुद्रा में स्थिरता, घटती

विदेशी घाटा, सकारात्मक विदेशी बाजार, विदेशी निवेशकों व रेटिंग एजेंसियों का सकारात्मक दृष्टिकोण, रिजर्व बैंक की ब्याज दरों की कटौती की संभावनाएँ, विदेशी संस्थागत निवेशकों का भारी निवेश, बेहतर मौनसून इस तेजी की मुख्य वजहें हैं।

भारतीय वोलेटीलिटी सूचकांक अपने सत्रह महीनों के निचले स्तर पर है व साफ संकेत दे रहा है कि यह तेजी का दौर चालू रह सकता है। खासतौर पर बैंकिंग सेक्टर ने काफी हद तक लीड कर बाजार की कमान संभाली है। नेशनल स्टॉक एक्सचेंज का बैंकिंग सूचकांक लगातार उम्दा प्रदर्शन कर रहा है। ऑटो कंपनियाँ भी तेज रफ्तार से आगे बढ़ रही हैं। कुल मिलाकर देखा जाए, तो भारत विकास की सीढ़ी पर दसवीं पायदान से विश्व की अग्रणी तीन अर्थव्यवस्था बनने की ओर बढ़ रहा है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि जी-20 शिखर सम्मेलन में भी विभिन्न देशों के राजनेताओं ने देश के आर्थिक विकास के लिए भूरि-भूरि प्रशंसा की। यहाँ तक कि चीन के राष्ट्रपति शी जिनपिंग ने भी प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की प्रशंसा यह कहकर की कि उन्होंने भारत में आर्थिक विकास का नया दौर शुरू कर दिया है। सारे नेताओं ने माना कि भारत ही संसार में ऐसा देश है जहाँ सात प्रतिशत की दर से लगातार आर्थिक विकास हो रहा है।

(13)प्रश्नः आप अर्थशास्त्र के विद्यार्थी रहे हैं इस नाते क्या आप मुझे यह बताएँगे कि भारतीय रिजर्व बैंक के नए गवर्नर डॉ. उर्जित पटेल द्वारा अपनी पहली मौद्रिक समीक्षा के तहत नीतिगत (रेपो रेट) में 0.25प्रतिशत की अप्रत्याशित कटौती का किया गया फैसला अर्थव्यवस्था के मद्देनजर एक अच्छा फैसला है? यदि है तो क्यों?

उत्तरः भारतीय रिजर्व बैंक के नए गवर्नर डॉ. उर्जित पटेल ने अपनी पहली मौद्रिक समीक्षा तहत नीतिगत दर(रेपो रेट) में 0.25 प्रतिशत की अप्रत्याशित कटौती कर अर्थव्यवस्था के मद्देनजर एक अच्छा फैसला किया है, क्योंकि अब रेपो दर 6.50 प्रतिशत की बजाय 6.25 प्रतिशत होने से यकीनन बैंकों को कर्ज सस्ता करने में मदद मिलेगी जिसके परिणामस्वरूप आम लोगों को आवास और वाहन के लिए अपेक्षाकृत सस्ता कर्ज मिल सकेगा। कॉरपोरेट को भी कर्जा सस्ता पाने में सहूलियत होगी। ऐसा करने से निवेश और खपत बढ़ाने में मदद मिलेगी। माना जा रहा है कि इस उपाय से जीडीपी में आठ प्रतिशत की वृद्धि हासिल करने में मदद मिलेगी। विश्व बैंक ने भी भारत की अर्थव्यवस्था को बेहतर माना है। लेकिन यह शंका जताई जा रही है कि

बैंक सस्ते में कर्ज पाने के उपरांत उस लाभ को उपभोक्ता तक स्थानांतरित करने में क्या रुचि लेंगे? पर मुझे लगता है कि यह आशंका फिजूल है, क्योंकि मार्जिनल कॉस्ट आधारित ब्याज दर व्यवस्था लागू होने की वजह से ब्याज दर घटने का लाभ नए ग्राहकों को मिलना तय है।

आपने देखा नहीं भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा रेपो दर में 0.25 प्रतिशत की कटौती करने के निर्णय के तुरंत बाद सार्वजनिक क्षेत्र के केनरा बैंक, इंडियन बैंक और निजी क्षेत्र के कोटक महिन्द्रा बैंक ने कर्ज की ब्याज दर में 0.1 फीसद तक कटौती करने का फैसला किया। केनरा बैंक ने बेस रेट 0.05 फीसद घटाकर 9.60 फीसद किया है। नई ब्याज दर 11 अक्टूबर, 2016 से प्रभावी होगी। इंडियन बैंक ने मार्जिनल कॉस्ट बेस्टलेडिंग रेट (एमसीएलआर) 0.1 फीसद घटाया है। एक साल के लिए एमसीएलआर 9.45 फीसद से घटाकर 9.35 फीसद किया गया है।

(14)प्रश्नः क्या आप मानते हैं कि कालेधन के खिलाफ केंद्र सरकार के प्रयास संतोषजनक हैं? कैसे? क्या भारत के नियंत्रक-महालेखा परीक्षक कालाधन घोषणा योजना की लेखा परीक्षा कर सकता है?

उत्तरः हाँ, मैं मानता हूँ कि कालेधन के खिलाफ मोदी सरकार के प्रयास संतोषजनक हैं, क्योंकि कालेधन को वापस लाने के लिए केंद्र सरकार द्वारा लाई गई काला धन घोषणा योजना की अपार सफलता की कहानी यूँ ही नहीं लिखी गई। इसने मौके की नजाकत के हिसाब से बदली रणनीति और सरकार में शीर्ष स्तर से रखी जा रही प्रतिपल की निगरानी की अहम भूमिका निभाई है। इस योजना को सिर्फ लोगों के रूख के भरोसे न छोड़कर छिपाकर रखे गए धन को बाहर लाने के लिए उन्हें प्रोत्साहित करने के हर संभव कदम उठाए गए। नतीजा सबके सामने है कि पैंसठ हजार करोड़ रुपए से अधिक का कालाधन अब सिस्टम का हिस्सा बन गया है। 30,000 करोड़ रुपए से अधिक के कर राजस्व ने सरकार के राजकोषीय संतुलन को भी बड़ी राहत दी है।

देश की अर्थव्यवस्था के विकास के लिए कालेधन को बाहर लाने के महत्व को सरकार प्रारंभ से ही समझ रही थी। यही वजह थी कि प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी समेत पूरी सरकार विदेश में छिपे कालेधन के साथ घरेलू स्तर पर कालेधन को बाहर लाने के प्रयास कर रही थी जिसे संतोषजनक कहना यथोचित होगा।

जहाँ तक भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक द्वारा कालाधन घोषणा

योजना की लेखा परीक्षा (ऑडिट) करने का सवाल है, 30 सितंबर, 2016 को कालाधन घोषणा योजना बंद हुई है और इस बंद योजना की लेखा परीक्षा भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक (सीएजी) द्वारा की जा सकती है, लेकिन वह योजना के तहत की गई घोषणाओं का ऑडिट नहीं करेगा। संभवत: सीएजी इसके लिए अपनाई गई प्रक्रिया और प्रदर्शन का ऑडिट करेगा।

उल्लेख्य है कि इस कालाधन खुलासा योजना के एक बारगी चार महीने की अनुपालन खिड़की के तहत 64275 घोषणाओं के जरिए 65250 करोड़ रुपए की बेहिसाबी संपत्ति की घोषणा की गई है। आईडीएस यानी आय घोषणा योजना के तहत दी गई सूचना गोपनीय है। इसके किसी विधि प्रवर्तन एजेंसी से साझा नहीं किया जाएगा और न ही आयकर विभाग कोई जाँच शुरू करेगा। हाँ, सरकारी लेखा परीक्षक (ऑडिटर) इस योजना का प्रदर्शन लेखा परीक्षा कर सकता है। भारत के नियंत्रक-महालेखा परीक्षक इस योजना के प्रदर्शन की लेखा परीक्षा तो कर सकता है, लेकिन वह योजना के तहत की गई घोषणाओं को न तो देख सकेगा और न ही उसे ये दी जाएगी। सीएजी ने इससे पहले इसी उद्येश्य से सेवाकर स्वैच्छिक अनुपालन प्रोत्साहन योजना की लेखा परीक्षा की थी और इसी प्रकार उसने 1997 की कर माफी योजना स्वैच्छिक व आय घोषणा योजना की भी लेखा परीक्षा की थी।

(15)प्रश्न: क्या कारण है कि भारतीय अर्थव्यवस्था दुनिया में सभी देशों को पीछे छोड़ते हुए भी इस देश में रोजगार शून्य विकास हो रहा है?

उत्तर: इसमें कोई शक नहीं कि भारतीय अर्थव्यवस्था दुनिया में सभी देशों को पीछे छोड़ दिया है। और तो और चीन भी मौजूदा दौर में इस देश से पीछे है, मगर बेरोजगारी तेजी से बढ़ रही है। श्रम ब्यूरो द्वारा रोजगार की स्थिति के संबंध में किए गए वार्षिक सर्वेक्षण का यही निष्कर्ष है। सर्वेक्षण के मुताबिक वर्ष 2015-16 में बरोजगारी दर में पाँच प्रतिशत की वृद्धि हुई है जो गत पाँच वर्षो में सबसे अधिक है। यह गंभीर चिंता का विषय है, क्योंकि इससे युवक-युवतियों में कुंठा बढ़ रही है और वे खुदकुशी की ओर अग्रसर हैं।

वर्ष 2015-16 की प्रथम तिमाही में देश की अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर 7.1 प्रतिशत रही है। जहाँ तक स्त्रियों को रोजगार का संबंध है, उसमें भारी गिरावट आई है। जहाँ तक सरकारी सेवाओं में रोजगार के अवसरों का संबंध है, वे आधुनिक प्रोद्यौगिकी के इस्तेमाल से संकुचित हो रहे हैं।

औद्योगिक क्षेत्रों में नौकरियाँ सीमित हो गई है। कृषि क्षेत्र की हालत भी खस्ता है। खेतीहर मजदूरों के हालात बद से बदतर हो रही हैं। स्नातक और स्नातकोत्तर डिग्रीवाले शिक्षित बेरोजगारों की स्थिति और भी दयनीय हो गई है, जिनके पास न तो विशेषज्ञता है और न अनुभव। इसके लिए विशेष योजनाओं के माध्यम से रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने होंगे।

(16)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि देश के अंदर छिपे काले धन को बाहर निकालने के लिए भारत सरकार की आय घोषणा योजना को कामयाबी मिली है? इस कामयाबी के पीछे कौन सा कारण रहा है?

उत्तर: हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि देश के भीतर छिपे काले धन को बाहर निकालने के लिए भारत सरकार की आय घोषणा योजना के तहत 65 हजार करोड़ रुपए से अधिक के काले धन का खुलासा होने से आय घोषणा योजना को कामयाबी मिली है। खासतौर पर इसलिए क्योंकि अतीत में कालेधन की घोषणा के संदर्भ में जो स्वैच्छिक योजनाएँ आई वे निराशाजनक ही रहीं।

मुझे लगता है कि इस आय घोषणा योजना की कामयाबी के पीछे दंडात्मक प्रावधान का समावेश प्रमुख कारण रहा है, लेकिन इस योजना की कामयाबी के बावजूद संतुष्ट इसलिए नहीं हुआ जा सकता, क्योंकि एक तो कालेधन की मात्रा कहीं अधिक है और अभी भी उन तौर-तरीकों पर पूरी तरह लगाम लगाया जाना शेष है जिनके चलते काला धन पैदा होता है। सरकार को काले धन के कारोबार पर तो सख्ती करनी ही होगी, साथ ही कालेधन के लिए कुख्यात देशों पर अंतरराष्ट्रीय दबाव भी बनाना जारी रखना होगा। कालेधन के खातों पर गोपनीयता की कुंडली मारे बैठे देश कुल मिलाकर आर्थिक नियमों के खिलाफ भी काम कर रहे हैं और साथ ही मानवीयता के खिलाफ भी। अब जब अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत की आवाज को गौर से सुना जाने लगा है तब फिर यह जरूरी है कि विश्व के प्रमुख देशों को इसके लिए प्रेरित किया जाए कि वे कालेधन के अड्डे बन गए देशों पर प्रभावी दबाव बनाएँ।

(17)प्रश्नः महात्मा गाँधी की आर्थिक नीति क्या है?

उत्तर: विकेंद्रित अर्थव्यवस्था ही गाँधी जी की अर्थनीति है, क्योंकि जिस ग्राम स्वराज की बात वह करते थे उसकी रीढ़ में है कृषि और ग्रामोद्योग जिसका नाम उन्होंने दिया विकेंद्रित अर्थव्यस्था। यही कारण है कि आजादी

के बाद उन्होंने काँग्रेस के विसर्जन की बात की थी और सुझाव दिया था कि काँग्रेसजन गाँवों की तरफ रूख करें और ग्राम स्वराज के लिए अपनी निष्ठा धैर्यपूर्ण पुरुषार्थ दिखाएँ।

गाँधी जी के अनन्य भक्त और प्रसिद्ध अर्थशास्त्री जे सी कुमारप्पा ने अपनी पुस्तक 'द इकोनामी ऑफ परमानेंस' में स्पष्ट किया है कि विकेंद्रित स्तर पर 'संभव स्वाबलंबन' को मूर्त ढाँचे में तब्दील किए बिना देश की आर्थिक सशक्तता की मंजिल हासिल नहीं की जा सकती है। भारतीय ग्रामीण परंपरा और संस्कृति में सहअस्तित्व और स्वावलंबन का साझा स्वाभाविक तौर पर मौजूद है। दुर्भाग्य से विकास को शहरीकरण की रोशनी में पढ़ने वाले नीतिकारों को यह साझा या तो दिखता नहीं या फिर इसके महत्व को वे समझ नहीं पाते।

गाँधी जी 'हिंद स्वराज' में बड़ी लागत, ज्यादा उत्पादन, मशीनीकरण इन सबका विरोध एक स्वर में करते हैं। जीवन, संस्कृति और पुरुषार्थ का साझा बनाए रखना इसलिए जरूरी है, क्योंकि इससे विकास और स्वाबलंबन के अस्थायी या गैर-टिकाऊ होने का संकट नियंत्रित होता है। सच तो यह है कि गाँधी जी के समय में भी उनके आर्थिक दर्शन से उनके अधिकतर सहयोगी पूरे तौर पर सहमत नहीं थे। इसलिए बाद में भी आजाद भारत की आर्थिक नीतियों और गाँधीवादी आर्थिक नीतियों के बीच कोई सामंजस्य नहीं बन पाया। नेहरू जी ने तो बड़े-बड़े और भारी उद्योगों को बढ़ावा देकर गाँधी के सपनों को चकनाचूर कर दिया, क्योंकि उनके समय के सारे भारी और बड़े-बड़े कल-कारखाने आज बंद पड़े हैं।

दक्षिण अफ्रीका से लौटकर जब गाँधी जी भारत आए, तो उन्होंने अर्थशास्त्रियों को गाँवों के स्वाबलंबन के लिए कृषि और ग्रामोद्योग की दरकार समझाई। वे स्वराज से लेकर व्यक्ति और समाज तक हर जगह मानवीय अस्मिता की बात करते थे। उनके सामने एक ही बात थी-अहिंसा और अंतिम जन। इसलिए गाँधी के अहिंसा दर्शन से उनकी अर्थनीति को अलगाकर नहीं देखा जा सकता।

(18)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि वस्तु एवं सेवा कर प्रणाली यानी जीएसटी का अमलीजामा पहनाने की दिशा में कई चुनौतियों के साथ अभी लंबी यात्रा तय करनी है? आखिर क्यों?

उत्तरः हाँ, मुझे ऐसा लगता है कि वस्तु एवं सेवा कर प्रणाली या जीएसटी को अमलीजामा पहनाने की दिशा में कई चुनौतियों के साथ अभी लंबी यात्रा

तय करनी है, क्योंकि काफी जद्दोजहद और इंतजार के बाद तो भारतीय कर प्रणाली में हुए बड़े सुधार के तहत वस्तु और सेवा कर पैनल ने तीन की बजाय चार किस्म की दरें तय की हैं जिससे मूल्य सूचकांक में सिर्फ 0.06 प्रतिशत की वृद्धि होगी जो बहुत कम है।

उल्लेख्य है कि जहाँ भी कर दरें ज्यादा होंगी, वहाँ विरोध और कर चोरी की संभावना ज्यादा होगी और कर सुधार सफल नहीं हो पाएगा। बहुप्रतीक्षित जीएसटी अगले वर्ष यानी 2017 के एक अप्रैल से लागू करने का केंद्र सरकार ने मन बना लिया है और इसकी संरचना से जुड़ी तमाम असहमतियों को दूर करने के लिए 22 नवंबर, 2017 की सीमा तय की गई है। करों की दर पर सहमति बनने के बाद ही केंद्रीय जीएसटी और एकीकृत जीएसटी के लिए विधेयक संसद के शीतकालीन सत्र में पेश किए जा सकेंगे। जीएसटी के लागू होने पर एशिया की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था इतिहास में पहली बार एकरूप बाजार के रूप में परिणत हो जाएगी। इससे न सिर्फ राजस्व की वसूली बढ़ेगी, बल्कि व्यापारिक और वाणिज्यिक गतिविधियों के लिए मुश्किलें भी कम होंगी, जिन्हें फिलहाल कई तरह के संघीय और राज्यस्तरीय कर और शुल्क अदा करने पड़ते हैं।

(19)प्रश्नः यह बात ठीक है कि भाजपा के नेतृत्व में केंद्र में बनी सरकार के दो साल बीतने के बाद शीर्ष स्तर पर भ्रष्टाचार खत्म हो गया दिखता है, पर विदेश से कालाधन लाने की बात पर तो मोदी सरकार की हँसी उड़ाई जा रही है । अर्थशास्त्र के विद्यार्थी होने के नाते आप क्या इसकी हकीकत से कृपया हमें अवगत कराएँगे? वित्तीय जवाबदेही के मोर्चे पर सरकारी तंत्र ने क्या दोहरा रूख नहीं अपना रखा है?

उत्तरः अर्थशास्त्र के विद्यार्थी होने के नाते मैं कह सकता हूँ कि वर्ष 2014 में भाजपा के नेतृत्व में केंद्र में बनी गठबंधन की सरकार के दो साल बीत जाने के बाद खासतौर पर शीर्ष स्तर पर भ्रष्टाचार में आशातीत कमी दिखती है। ऐसा मैं ही नहीं, बल्कि भारत की अर्थव्यवस्था पर नजर रखने वालें नामी-गिरामी देश विदेश के लोग भी कहते-सुने जा रहे हैं, मगर जहाँ तक विदेशों से काले धन वापस लाने का प्रश्न है मोदी सरकार की हँसी उड़ाई जा रही है। जहाँ तक मैं समझता हूँ वर्तमान दौर में अर्थव्यवस्था की जो चाल धीमी रह रही है, उसकी एक बड़ी वजह कालेधन पर अंकुश लगना भी है, कारण कि हमारी घरेलू अर्थव्यवस्था में जो कालाधन भारी मात्रा में इस्तेमाल

हो रहा था, कालेधन पर अंकुश की वजह से अर्थव्यवस्था के पहिए में जाम लग रहे हैं। कालेधन की जरा-सी भी बड़ी रकम देश के अंदर इधर-उधर भेजने में लोगों को डर लगने लगा है, क्योंकि तुरत आयकर विभाग का शिकंजा कस जाता है।

इसी संदर्भ में मै यह भी कहना चाहूँगा कि काँग्रेस के दस साल के शासन में हुए सारे भ्रष्टाचार पर मोदी सरकार द्वारा अबतक कानूनी कार्रवाई को तार्किक अंजाम तक नहीं पहुँचाना तथा भाजपा की सरकार से 'दामाद जी' को अब भी कानून की पहुँच से दूर रखना तथा कुछ मामलों में उन्हें क्लिन-चिट देना आश्चर्यजनक जरूर लगता है। इसी प्रकार 2जी स्पेक्ट्रम घोटाले और कॉमनवेल्थ गेम्स घोटाले की संचिकाओं का अबतक अटके रहना भ्रष्टाचार-मुक्त सरकार पर जरूर प्रश्न चिह्न लगता है और लोगों के सामने हकीकत नहीं आने से कहीं-न-कहीं कुछ गड़बड़ की गुजांइश दिखती है।

जहाँ तक वित्तीय जवाबदेही के मोर्चे पर सरकारी तंत्र के रूख का सवाल है निश्चित रूप से सरकारी तंत्र ने दोहरा रूख अपना रखा है। लोकतंत्र के भीतर आर्थिक न्याय का तकाजा है कि कर्ज की वसूली में सरकार अमीर और गरीब के बीच भेद न करे, क्योंकि सरकार राजकोष से हजारों करोड़ रुपए की जो कर्ज के रूप में सहायता देती है वह जनता-जनार्दन के खून-पसीने की गाढ़ी कमाई का एक हिस्सा होता है। जाहिर है, जनता को सरकार से यह पूछने और जवाब पाने का हक बनता है कि वह धन जिम्मेदारी के साथ खर्च हो रहा है या नहीं लेकिन यह समाचार आया कि सरकारी बैंकों ने अप्रैल, 2012 से मार्च, 2015 के बीच 1.14 लाख करोड़ रुपए के कर्जे को बट्टे के खाते में डाल दिए हैं। इनमें से 55.5 हजार करोड़ रुपए तो अकेले मार्च, 2015 में खत्म हुए वित्त वर्ष में राइट ऑफ किए गए। एक तरफ बड़े कारोबारी कर्ज न चुकाकर भी मौज करें और दूसरी तरफ छोटे किसान कर्ज अदायगी के नाम पर सब कुछ गंवा कर आत्महत्या करने पर मजबूर हों, सरकारी तंत्र का यह दोहरा रूख नहीं तो और क्या है? इंसाफ के इस दोहरे मानदंड को जारी रखने की जगह, सरकार को चाहिए कि वह इससे जुड़ी शंकाओं का समाधान करे।

वैसे उच्चतम न्यायालय ने भी सरकारी बैकों से कर्ज लेकर नहीं चुकाने वाले बड़े बकाएदारों की सूची माँगकर सचमुच देश की अर्थव्यवस्था से जुड़े इस मामले की गंभीरता को व्यक्त किया है। यदि सरकारी बैंकों के डूबे कर्ज की वसूली हो जाए, तो सरकार के आयोजना व्यय का इंतजाम हो

जाएगा। डिफॉल्टरों के पास सरकारी बैंकों का कर्ज सरकार के सालाना आयोजना व्यय के बराबर डूबा है। यदि चालू वित्त वर्ष 2015-16 में फँसी 4.04 लाख करोड़ रुपए की राशि की वसूली हो जाती है, तो सरकार कई कल्याणकारी और औद्योगिक विकास की योजनाओं को अमलीजामा पहना सकती है।

(20)प्रश्नः विजय माल्या जैसे लोग क्यों पलते-बढ़ते हैं? क्या राष्ट्र-राज्य के संसाधन की लूट सबसे बड़ा अपराध नहीं है?

उत्तरः भोग-विलास को जीवन का अहम हिस्सा बन चुके और हर तरह के भौतिक सुख भोगने में ही जीवन की सार्थकता मानने वाले शराब व्यापारी विजय माल्या इसलिए पलते-बढ़ते हैं, क्योंकि देश में पूंजीपतियों-कारोबारियों एवं बैंकों के बीच मिलीभगत से जनता की गाढ़ी कमाई डूबने-डुबाने का खेल खेला जाता है। सार्वजनिक बैंकों की हालत इनकी मिलीभगत से ही खराब हो चुकी है। विजय माल्या की किंगफिशर एअरलाइन्स पर केवल 17 बैकों का ही 7800 करोड़ रुपए का कर्ज है। उन्हें कुल 9000 करोड़ रुपए का बकायादार माना जा रहा है। पिछले कई सालों से बैंकों की किश्त तो छोड़िए ब्याज तक उन्होंने नहीं दिया है फिर भी उनके खिलाफ कार्रवाई नहीं की गई। आज बैंक छाती पीट रहे हैं, लेकिन वह अपने दोष से पल्ला नहीं झाड़ सकते। बैंकों के कर्ज वसूली के अनेक रास्ते हैं, किंतु विजय माल्या के प्रभाव में वह कदम नहीं उठाते। इसकी वजह राजनीतिक हस्तक्षेप भी हो सकती है। इस लूट में बैंक के अधिकारी और राजनेता की मिलीभगत से इनकार नहीं किया जा सकता।

विजय माल्या का जीवन और कारोबारी सफर इस बात का गवाह है कि कैसे कुछ रसूखवाले लोग देश की जनता के पैसे हड़प कर अरबपति बनते हैं और ऐश करते हैं। दुनिया का हर ऐशो आराम अपने कदमे तले रखने वाले विजय माल्या 2 मार्च 2016 को ही भारत छोड़कर लंदन चले गए और 9000 करोड़ रुपए का यह कर्जदार दिग्गज शराब कारोबारी विजय माल्या लंदन के अपने 30 एकड़ में फैले बंगले में आराम फरमा रहा है। माल्या पर जो रकम बकाया है क्या उसकी वसूली अब हो पाएगी? कर्ज रिकवरी न्यायाधिकरण ने जिस राशि को रोका है, वह ऊँट के मुँह में जीरे की तरह है। पिछले 6 मार्च, 2016 को माल्या ने जो खुला खत लिखा उससे तो ऐसा लगता है कि देश का बैंकिंग प्रणाली सड़ गई है।

दरअसल, राज्यसभा सांसद विजय माल्या का मामला असल

समस्या नहीं है, बल्कि यह समस्या का लक्षण है। सवाल उठता है कि सामान्य नागरिक को ऋण देने में तमाम तरह की कानूनबाजी दिखाने वाले बैंक उद्योगपतियों के मामले में उदार कैसे हो जाते हैं? कर्ज देते समय वापसी के सुरक्षित दरवाजे खोलकर क्यों नहीं रखते? मुझे तो ऐसा लगता है कि राष्ट्र-राज्य के संसाधन की लूट करने वाले ये लोग ही सबसे बड़े अपराधी हैं। अतएव जरूरत इस बात की है कि कर्ज वसूली से जुड़ी न्यायिक व्यवस्था को बेहतर बनाया जाए। साथ ही बड़ी औद्योगिक जरूरतों और लंबी अवधि की पूँजी के लिए बैंकों पर निर्भरता कम करने की जरूरत है।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों का नन-परफार्मिंग एसेट्स 1.74 लाख करोड़ रुपए तक पहुँच गया है यानी जो बैंकों द्वारा कर्ज के रूप में दी गई थी, लेकिन अब उनकी वापसी की उम्मीद बहुत कम हो चुकी है जिसे बैड लोन भी कहा जाता है।

(21)प्रश्नः अर्थशास्त्र विद्यार्थी रहने के नाते क्या आप मुझे यह बताएँगे कि पनामा खुलासों से दुनिया भर में भूचाल ला देने वाला पनामा पेपर्स की सरकारी समीक्षा से कालेधन पर अंकुश लग पाएगा और अंकुश की राह सुझा पाएगा?

उत्तरः पिछले दिनों पनामा की एक कानून फर्म के कागजात के खुलासे से फिलहाल भारत के 500 लोगों की सूची आई है जिन्होंने अपना पैसा ऐसे देशों और कंपनियों में सुरक्षित रखने के लिए उस फर्म से संपर्क कर रखे हैं जहाँ टैक्स देने से बचा जा सकता है। यह अर्थव्यवस्था मोटे तौर पर दुनिया भर के अमीरों और गैर-कानूनी ढंग से अर्जित धन को सुरक्षित करने वालों के पैसे से चलती है। पनामा इस माने में काफी बदनाम रहा है। मौजूदा सरकार ने इस पर एक जाँच दल का गठन भी कर रखा है जिसमें कई एजेंसियों के साथ भारतीय रिजर्व बैंक के लोग भी शिरकत करेंगे।

भारत देश में आज अँग्रेजी हुकूमत नहीं, बल्कि भारतीय जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों का राज है। अपनों के इस राज में देश के धन का विदेश के टैक्स हैवेन में जाने से कालेधन के हर खुलासे के बाद आम भारतीयों के मन में यह प्रश्न किसी-न-किसी रूप में गूँजता जरूर है और इस प्रश्न के गूँजने के वाजिब कारण भी मौजूद हैं। अब इस देश में कोई अँग्रजी राज नहीं जो हठात् राजस्व वसूले और बलात् भारत देश का धन सात समुंदर पार भेज दे। तकरीबन 40 लाख की आबादीवाला देश पनामा पेपर्स

के खुलासे से एक बार फिर यही साबित हो गया है कि देश में येन-केन-प्रकारेण कमाया या हासिल किया गया पैसा विदेशों में जमा किया जा रहा है और कानूनी तरह से विदेशों में धन जमा करने वाले गैर-कानूनी तरीके से सरकार को टैक्स नहीं देते हैं। यानी कि यह कालाधन को सफेद करने की भी एक कवायद है। कहा तो यहाँ तक जा रहा है कि आतंकियों के पास जो पैसा जा रहा है, वह यहीं से जा रहा है। इस लिहाज से देखा जाए, तो यह महज टैक्स चोरी की बात नहीं, बल्कि देश के साथ गद्दारी और विश्व समुदाय के लिए भी खतरे की आहट है।

केंद्र सरकार ने पनामा पेपर्स के खुलासे के बाद इस मुद्दे पर त्वरित कार्रवाई की है। उम्मीद की जानी चाहिए कि अपने खुलासों से दुनिया भर में भूचाल ला देने वाले पनामा पेपर्स की सरकारी समीक्षा भारत में काले धन पर अंकुश लगाने के साथ-साथ अंकुश की राह भी सुझाएगी। केंद्र की नयी सरकार की जिम्मेवारी इसलिए भी दोहरी हो जाती है, क्योंकि चुनाव के वक्त नरेन्द्र मोदी ने विदेश में जमा कालाधन वापस लाने का वायदा किया था, इसलिए सरकार से उम्मीद की जाती है कि पनामा खुलासे के जरिए शक के घेरे में आए लोगों की सच्चाई जनता के सामने लाने के लिए जाँच-परख कर एक पुख्ता ढांचा खड़ा करे। भारतीय मीडिया संस्थाएँ और पत्रकार आपसी प्रतिस्पर्धा से ऊपर उठकर इस तरह की संयुक्त पहल क्यों नहीं करते, ताकि तमाम घोटालों और अपराधों का सच सामने आ सके।

कर चोरी करने वालों के लिए स्वर्ग देश पनामा में कंपनी स्थापित करना और बैंक खाता खोलने से संबंधित पनामा पेपर्स घोटाले की जाँच कराने का सरकार ने फैसला तो किया है, पर इसकी तह में जाना फिलहाल टेढ़ी खीर है, क्योंकि जाँच एजेंसियाँ स्वयं मान रही हैं कि सामने आ रही सूचनाओं को भारतीय अदालत में सबूत समेत साबित करना काफी चुनौतीपूर्ण होगा। पहले तो जाँच में रिजर्व बैंक, सीबीटीडी और एफआईयू के अधिकारियों को पनामा की, मोसेक फोंसेका नामक कंपनी के साथ जुड़े भारतीयों के नाम हासिल करने होंगे। उधर पनामा सरकार की तरफ से यह कह दिया गया है कि वह अपनी तरफ से तकरीबन 500 भारतीयों या कंपनियाँ खोली हैं और धन ठिकाने लगाया है उस कंपनी के ग्राहकों के नाम का खुलासा नहीं करेंगे। ऐसी स्थिति में यह काम इतना आसान नहीं होगा। भारतीय एजेंसियों को वैध तरीके से सूचना हासिल करनी होगी, भारतीय कानून में चोरी छिपे या गैरकानूनी तरीके से हासिल की गई सूचना के आधार

पर मामला नहीं चलाया जा सकता। भारत सरकार को इस मामले से निपटने के लिए काफी पापड़ बेलने होंगे और मेरे ख्याल से इसके लिए एक मात्र रास्ता है कूटनीतिक। उल्लेखनीय है कि इंटरनेशनल कंसोर्सियम ऑफ इंभेस्टिगेटिव जर्नलिस्ट्स (आईसीआईजे) ने विगत चार अप्रैल, 2016 को पनामा पेपर्स के नाम से इन लीक टैक्स दस्तावेज को जारी किया है। पनामा पेपर्स का खुलासा कर पत्रकारों ने वैश्विक लोकतांत्रिक व्यवस्था में पत्रकारिता की महती भूमिका को पुनर्स्थापित किया है, यह साहसिक एवं प्रेरणाप्रद है।

हमारे देश के कारोबारी अमीर लोग या पूँजीपति हमारी ही रकम दूसरे देश में जाकर निवेश कर रहे हैं, आर्थिक उदारीकरण की नीति की यही सबसे बड़ी विडंबना है। ऐसे वक्त मुझे याद आ रही है आज से तकरीबन डेढ़ सौ साल पहले भारतेंदु हरिश्चंद्र की लिखी वे बातें जिसमें उन्होंने कहा था–

'अँगरेज–राज सुख साज सजै सब भारी
पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी।'

क्या 'पनामा लीक्स' में 500 भारतीयों के नाम उछलने के बाद किसी को भारतेंदु की उपर्युक्त पंक्तियाँ याद आई? डेढ़ सौ साल पहले कही गईं भारतेंदु जी की वे बातें आज कितनी सच और जायज साबित हो रही हैं, यह तो समझने की बात है। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने यह तब कही थी जब इस देश में अँग्रेजों का शासन था और अँग्रेज हमारे देश का धन अपने देश में ले जाता था, मगर आज तो हम आजाद हैं फिर भी हमारे अपने शासन में भी हमारे देश का धन विदेशों में जा रहा है। आखिर यह कैसी आजादी है और कैसे हैं हमारे जनप्रतिनिधि एवं सत्ता पर आसीन हमारे राजनेता।

वैसे पनामा खुलासे से न केवल हमारे देश के 500 लोगों की चैन छिन गई है, बल्कि दुनिया भर की 140 राजनीतिक हस्तियों की नींद हराम कर रखी है, जिनमें आइसलैंड के प्रधानमंत्री सिंगमुडर डेविड, रूसी राष्ट्रपति ब्लादिमीर पुतिन, ब्रिटेन के प्रधानमंत्री डेविड कैमरन, चीन के राष्ट्रपति शी जिनपिंग, सीरिया के राष्ट्रपति बशाल अल असद, पाक प्रधानमंत्री नवाज शरीफ जैसे पूर्व एवं वर्तमान शासनाध्यक्ष हैं। पनामा विश्वविद्यालय और लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स से पढ़ चुके नामी–गिरामी उपन्यासकार रमन फाँसेका मोरा दुनिया भर में कालाधन खपाने की पटकथा पिछले चालीस साल से लिख रहे थे।

(22) प्रश्नः क्या आप मानते हैं कि नोटबंदी का विरोधकर विपक्षी दल कालेधन के खिलाफ लड़ाई को कमजोर कर रहे हैं?

उत्तरः हाँ, मैं मानता हूँ कि नोटबंदी का विरोध कर विपक्षी दल कालेधन के खिलाफ लड़ाई को कमजोर कर रहे हैं, क्योंकि देश के जितने भी नेता नोटबंदी का विरोध कर रहे हैं, यदि उनकी बातों को ध्यान से सुनें, तो स्पष्ट हो जाएगा कि वे मात्र विरोध के लिए विरोध की राजनीति कर रहे हैं। उनके पास इसके खिलाफ कोई ठोस तर्क नहीं हैं। सरकार का यह कदम देश में बहुत सारे सकारात्मक परिणाम उत्पन्न करने वाला है। बहुत सामान्य-सी बात है कि विपक्षी दल मोदी सरकार के इस साहसिक फैसले को पचा नहीं पा रहे हैं, क्योंकि उन्हें भय है कि यदि यह कार्यक्रम सफल हो गया, तो नरेन्द्र मोदी युग पुरुष हो जाएँगे। हालांकि भारतीय लोकतंत्र में विरोधी दलों का भी समान महत्व होता है। विरोध करने का उनका हक है, पर देशहित के लिए किए गए कार्यों में विपक्षी दलों को इतने अर्थहीन विरोध प्रदर्शन से बचना चाहिए।

उल्लेख्य है कि देश की 22 फीसद से अधिक गरीब जनता और 60 फीसद से अधिक मध्यवर्ग सरकार के इस साहसिक फैसले से खुश है। बाकी 15 से 20 फीसद जो कालेधन के बल पर काले कार्य करते हैं और अर्थव्यवस्था को दीमक की तरह चाटते हैं, उनके लिए यह निर्णय वज्रपात जैसा है, क्योंकि जिस असली कालेधन की बात की जा रही है, उसमें हवाला कारोबारी और आतंकवादी संगठन शामिल हैं। अब इन्होंने जो नकदी जमाकर रखी होगी उसकी कीमत रद्दी से ज्यादा नहीं होगी।

विपक्षी दलों में से 'आप' के संयोजक और दिल्ली सरकार के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल और तृणमूल काँग्रेस की प्रमुख तथा प. बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी भी हैं जिन्होंने कभी कालेधन और भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ाई लड़ने की बातें की थीं, मगर केंद्र सरकार द्वारा पाँच सौ और एक हजार रुपए के नोटों के चलन पर रोक लगाए जाने के बाद यह कहकर एक तरह से सरकार को धमका रहे हैं कि अगर तीन दिनों के अंदर नोटबंदी का फैसला वापस नहीं लिया, तो बगावत होगी। मुझे तो ऐसा लगता है कि नोटबंदी विरोधी नेताओं की बौखलाहट देखकर जनता अगर ऐसा कुछ सोचने को विवश हो जाए, तो हैरत नहीं कि कहीं उनकी राजनीतिक जमीन के साथ आर्थिक जमीन भी तो नहीं खिसक रही है? कम से कम बसपा सुप्रीमो मायावती और सपा सुप्रीमो मुलायम सिंह यादव के विरोध के पीछे तो यही

बात स्पष्ट करती है। क्या इससे बड़ी विडंबना और कोई हो सकती है कि अपना काम-धँधा छोड़कर बैंक, डाकघर और एटीएम के सामने खड़ी आम जनता तो परेशानी सहकर भी बड़े नोट बंद करने के फैसले को सही मान रही है, लेकिन संसद में गैर-भाजपा राजनीतिक दलों के प्राय: सभी विपक्षी नेता कोई सार्थक बहस करने की बजाय प्रधानमंत्री द्वारा इसपर जवाब देने अथवा फैसले को वापस लेने की माँग करते हुए ऐसा शोर मचा रहे हैं मानों उनके खुद के खजाने में सेंध लग गई हो?

क्या यह अजीब नहीं लगता कि जनता तो यह मान रही है कि नोटबंदी के फैसले से आई परेशानी बस कुछ ही दिनों की बात है, लेकिन विपक्षी नेता आपे से बाहर हुए जा रहे हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि उनकी अपनी बिरादरी का कोई भी शख्स किसी बैंक या डाकघर के सामने लगी कतार में क्यों नहीं दिखता? नोटबंदी के विरोध में कुतर्क पेश करने वाले विपक्षी नेता यह सवाल क्यों नहीं करते?

(23)प्रश्न: क्या केंद्र सरकार नोटबंदी का फैसला लेकर पाक की ओर से आती जाली मुद्रा द्वारा आतंकवाद की फंडिंग को बंद करना चाहती है?

उत्तर: हाँ, केंद्र सरकार कालेधन की समस्या से निपटने के अलावा उसने नोटबंदी का कदम इसलिए भी उठाया, क्योंकि पाकिस्तान की ओर से जो जाली मुद्रा देश में आती है और आतंकवाद की फंडिंग होती है, वे उसे बंद करना चाहते हैं। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि जाली मुद्रा का सफाया हुआ है और इससे आतंकवाद को गंभीर नुकसान पहुँचा है। ऐसी खबरें भी हैं कि नोटबंदी के इस फैसले के बाद से हिंसाग्रस्त कश्मीर घाटी में पत्थरबाजों के हौसले पस्त हुए हैं और अब वहाँ शांति है। यहाँ तक कि माओवादी और नक्सलवादी हिंसा से जूझने वाले इलाकों में भी हालात शांतिपूर्ण हैं, क्योंकि इन चरमपंथियों के धन के गुप्त भंडार अब बेकार हो चुके हैं।

यह सच है कि देश में नकली नोटों का जाल बिछा हुआ था जिससे कई बार आम लोग भी शिकार हो रहे थे। आखिर तभी तो इंडियन स्टैटिस्कल इंस्टीच्यूट सहित कई सुरक्षा एजेंसियों की तरफ से हुई टॉप सीक्रेट स्टडी के बाद प्रधानमंत्री ने यह कदम उठाया जो काफी सराहनीय है। कहा जाता है कि देश में कुल 400 करोड़ रुपए के जाली नोट चल रहे थे। ऐसे में नकली नोटों को बंद करना बेहद जरूरी हो गया था, इसलिए इस फैसले

को सम्मान के नजरिए से देखा जाना चाहिए। मगर यह दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि इस देश के कुछ नेताओं को नोटबंदी में घोटाले नजर आ रहे है। विरोध को इस सीमा तक न खींचा जाए।

(24)प्रश्नः केंद्र सरकार ने बेनामी संपत्ति पर भी गाज गिराना शुरू कर दिया है। क्या आपको ऐसा लगता है कि ऐसा करने से कालेधन पर रोक लग सकेगा?

उत्तरः हाँ, केंद्र सरकार बेनामी संपत्ति पर भी कार्रवाई शुरू कर दी है और आयकर विभागों ने दो सौ दल उच्च पथ के किनारे जाँच-पड़ताल के लिए लगा दिए हैं, क्योंकि ऐसी खबरें भी आ रही थीं कि उच्च पथ के किनारे की जमीनें परियोजना तैयार होने के साथ ही नेता, नौकरशाह, रिश्वतखोर और ठेकेदार के हाथों सस्ती दरों पर बिक जाती हैं और परियोजना पूरी होने पर वे महंगी दरों पर उनका सौदा करते हैं। निश्चित तौर पर इसमें अधिकारों का दुरुपयोग और कालेधन का सदुपयोग शामिल है। बेनामी संपत्ति का दूसरा हिस्सा गाँव और शहर की उस बेहिसाब पुश्तैनी संपत्ति में शामिल है, जिसे हथबंदी कानून से बचाने के लिए ग्रामीण जमींदार और शहरी अमीर नजदीकी अमीर रिश्तेदारों के नाम कर देते हैं जिसे रोकने के लिए एक कानून 1988 में और दूसरा कानून 28 साल बाद यानी 2016 में बना है। एक नवंबर, 2016 से लागू हुआ यह कानून पहलेवाले कानून की तुलना में तकरीबन ढाई गुना सख्त है, क्योंकि पहले के तीन साल की सजा के मुकाबले अब सात साल की सजा का प्रावधान है।

मुझे ऐसा लगता है कि बेनामी संपत्ति पर कार्रवाई से बेवजह बढ़ी हुई संपत्ति के दाम तो गिरेंगे ही, लेकिन निर्माण का काम थोड़ा धीमा होगा। पर इतना जरूर है कि इससे कालेधन पर रोक अवश्य लगेगा। अब देखना यह है कि जब्त किए गए मकान, दुकान और भूखंड किसी आम आदमी के पास जाएँगे या फिर नवधनाढ्य ही खरीदेंगे?

(25)प्रश्नः क्या आप इस बात से सहमत है कि कालाधन देश की अर्थव्यवस्था के साथ-साथ राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए भी खतरनाक है? देश में कालाधन किन स्रोतों से पनपता है?

उत्तरः हाँ, मैं आपकी इस बात से सहमत हूँ कि कालाधन देश की अर्थव्यवस्था के साथ-साथ राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए भी खतरनाक है। इसलिए इस पर अंकुश लगाना निहायत जरूरी है। दरअसल, कालाधन किसी भी अर्थव्यवस्था में संचय और संचालन दोनों रूपों में मौजूद रहता है। एक

अनुमान के अनुसार हमारी कुल अर्थव्यवस्था का 20 प्रतिशत से अधिक हिस्सा कालेधन के रूप में है जो तकरीबन 30 लाख करोड़ रुपए की होगी। यदि इसका 50 प्रतिशत हिस्सा भी 500 और 1000 रुपए के रूप में है, तो वह सीधे 15 लाख करोड़ रुपए होते हैं। राजनीतिक पार्टियाँ चाहे जो कहें, जनसाधारण जनता ने मोदी द्वारा कालेधन के खात्मे के लिए 500 और 1000 रुपए के नोटों को चलन से बंद करने के फैसले का स्वागत और समर्थन किया है। नोटबंदी की वजह से मुद्रास्फीति में कमी आएगी। रियल एस्टेट क्षेत्र में अभी भी 25 से 40 प्रतिशत कारोबार नकद होता है, लेकिन सरकार के इस फैसले से बड़ी मात्रा में नकदी अब अर्थव्यवस्था से बाहर होने जा रहा है। 20 जुलाई को लोकसभा द्वारा बेनामी ट्रांजेक्शन बिल 2015 पारित हो जाने के बाद अब सरकार बेनामी संपत्ति को जब्त कर सकेगी।

देश में कालाधन दो स्रोतों से पनपता है। प्रथम, कालाधन कर की चोरी के जरिए अर्जित होता है, तो दूसरा अवैध तौर-तरीकों से सोना एवं मादक-द्रव्यों की तस्करी, गंभीर किस्मों के आपराधिक कार्यों में संलिप्तता और आतंकी तत्वों के साथ सांठ-गांठ जैसे कृत्यों से उपार्जित की गई धन संपत्ति कालाधन कहलाता है।

(26)प्रश्नः नोटबंदी से सतह पर इसका असर आम आदमी पर तो ज्यादा नजर आ रहा है, लेकिन सतह के नीचे राजनेताओं एवं राजनीतिक दलों में आखिर जबरदस्त बेचैनी क्यों देखी जा रही है?

उत्तरः भाई मनोज जी, महालेखाकार कार्यालय में वरिष्ठ लेखा परीक्षा अधिकारी होने के नाते आपने सही कहा कि नोटबंदी से सतह पर इसका असर आम आदमी पर तो ज्यादा नजर आ रहा है, लेकिन सतह के नीचे राजनेताओं और राजनीतिक दलों में इससे बेचैनी जबरदस्त देखी जा रही है, क्योंकि राजनीतिक दल और उसके राजनेता चाहे सत्ता पक्ष के हों या विपक्ष के, बोरों में कसी हजार-पाँच सौ के नोटों की गड्डियों के बल पर चुनाव लड़ने की तैयारी में जुटे थे। वैसे भी मेरा मानना है कि पक्ष और विपक्ष के शायद ही कुछ नेता के पास बहुत कम पुराने नोट हों, अधिकांश विधायकों एवं सांसदों के घर में दस-बीस लाख से अधिक के नोट अवश्य रहे होंगे। बिहार के दो नेताओं के घर से कुछ ही महीनों पहले करोड़ों रुपए के नोट पकड़े गए थे जिनमें से एक तो बड़बोला केंद्र सरकार में मंत्री भी हैं और दूसरे आपराधिक प्रवृत्ति के नेता के घर से लाखों रुपए जब्त किए गए तथा चोर भी उड़ा ले गए। ऐसे सभी विधायकों एवं सांसदों का तो नोटबंदी से

बेचैनी होना स्वाभाविक है। बहुतों ने तो बैंकों एवं डाकघरों में अपने नौकरों-चाकरों तथा चाटूकारों को प्रतिदिन लाइन लगाकर कुछ कालेधन को सफेद में किया भी, लेकिन जब से उनकी उँगलियों पर स्याही लगना शुरू हुआ, तब से ऐसे लोगों का कतार लगना बंद हो गया।

दरअसल, ठेकेदार, कोटेदार, भू-माफिया, खनन माफिया, भवन निर्माता एवं शिक्षा माफिया से नेता बने लोग ही अब राजनीति की धुरी हैं। सबको पता है कि इनमें से कई ने मतदाताओं को शराब एवं पैसा बाँटने के लिए अथवा बेनामी संपत्ति अर्जित करने के लिए करोड़ों रुपए रख लिए थे। आखिर तभी तो सरकार ने नोटबंदी का जब फैसला लिया, तब राजनीतिक दल और उसके नेता इस बात को लेकर बदहवास हुए। समाजवादी पार्टी के प्रमुख मुलायम सिंह यादव ने जहाँ यह कहा कि नोटबंदी से उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव का बधिया बैठ गया है, वहीं बसपा सुप्रीमो मायावती ने नोटबंदी को आर्थिक आपातकाल बताया। तृणमूल काँग्रेस की ममता बनर्जी ने नोटबंदी को राष्ट्रपति भवन मार्च कर वापस करने की माँग की। इसी प्रकार दिल्ली के मुख्यमंत्री तथा 'आप' के संयोजक अरविंद केजरीवाल तथा जद(यू) के राज्यसभा में नेता शरद यादव ने आम आदमी की परेशानी के मद्देनजर सड़क से संसद तक आंदोलन करने की धमकी तक दे डाली जबकि जद(यू) के राष्ट्रीय अध्यक्ष तथा बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के नोटबंदी के इस फैसले का तहेदिल से स्वागत और समर्थन किया चाहे हवा का रूख को देखते हुए ही क्यों न किए हों। बसपा, काँग्रेस, सपा, राजद और माकपा ने पिछले दिनों राज्यसभा में एक स्वर से नोटबंदी का विरोध ही नहीं किया, बल्कि किसी ने जेपीसी से तो किसी ने सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश की निगरानी में जाँच कराने की माँग करते हुए इसे घोटाले तक का आरोप लगाया।

इस नोटबंदी ने आम आदमी को कितना प्रभावित किया, यह तो आगे आने वाला समय बताएगा, मगर 2017 के फरवरी मार्च में पाँच राज्यों में होने वाले विधानसभा के चुनाव में तो उन लोगों को दिन में तारे देखने ही पड़ेंगे, जो कालेधन के बल पर चुनाव लड़ने की तैयारी में थे। नोट के बदले वोट का खेल खत्म हो सकता है। आगामी चुनावों में यदि कालेधन के प्रयोग पर रोक लगती है, तो इससे बड़ी उपलब्धि कोई दूसरी नहीं हो सकती। आशा की जाती है कि राजनीति में एक बार फिर सेवा करने वाले वापस लौट सकते हैं। प्रचार का ठेका लेने वाली कंपनियाँ बाहर हो सकती

हैं। फिर भी यह इतना आसान नहीं है। इसके लिए धनपशुओं और बाहुबलियों की बजाय समाज सेवा करने वाले लोगों पर भरोसा करना होगा, क्योंकि खासतौर पर चुनावों में इन धनकुबेरों एवं बाहुबलियों ने कालेधन के बल पर दलों के नेतृत्व को प्रभावित कर लिया है। राजनीति तभी पवित्र हो सकती है जब राजनीतिक दल आम आदमी से सीधे जुड़े जमीनी नेताओं को सम्मान दें और बाहुबलियों एवं धनपशुओं को अपने टिकट न बेचें। संभव है नोटबंदी इस चुनाव को कालेधन से मुक्त कर दे, लेकिन इसके बाद के चुनावों में फिर से कालाधन अपना प्रभाव नहीं दिखाएगा, इस बारे में कुछ कहना संभव नहीं।

कहना नहीं होगा कि सारे बड़े भ्रष्टाचार की जड़ और तमाम माफिया के बनने की शुरुआत भारतीय लोकतंत्र में चुनाव से ही होती है। इसलिए उसके शुद्धिकरण के लिए चुनावी फंडिंग को पूरी तरह से सिर्फ सफेद धन से लेने या सरकारी फंडिंग की बाध्यता लाकर एक कड़क चोट इस पर की जा सकती है। लोकसभा और विधानसभा के चुनाव एक साथ होने अत्यंत आवश्यक हैं। एक ही समय सभी चुनाव होने से पूरी व्यवस्था बदल सकेगी और देश का असली चुनौतियों पर ध्यान केंद्रित हो सकेगा। साथ ही अच्छे लोग सच्चे अर्थों में चुनाव से जुड़ सकेंगे।

(27)प्रश्नः क्या आप इस बात से सहमत हैं कि भारत में नोटबंदी के बाद सरकार की मुटिठयों में जो नया धन आया है उसका जहाँ उत्पादक उपयोग हो, वहीं कालेधन के सृजन को खत्म करने की डगर पर भी बढ़ा जाए?

उत्तरः हाँ, मैं इस बात से पूर्णतः सहमत हूँ कि विगत आठ नवंबर, 2016 की आधी रात से पाँच सौ और एक हजार रुपए के नोटों पर लगी पाबंदी के बाद सरकार की मुट्ठियों में जो नया धन आया है उसका एक ओर जहाँ उत्पादक उपयोग हो, वहीं दूसरी ओर कालेधन के सृजन को खत्म करने की डगर पर भी बढ़ा जाए।

'ब्रोकरेज फर्म एडलवाइस सिक्योरिटीज' के अनुमान के अनुसार पाँच सौ और एक हजार रूपए के पुराने नोटों के प्रचलन से बाहर करने पर कालेधन पर जो तगड़ी चोट की गई है उसके मद्देनजर करीब तीन लाख करोड़ रुपए सरकार के पास आएँगे। ये रुपए टैक्स से बचने के लिए छुपाकर रखे गए थे। बाजार में कालेधन के रूप में प्रचलित करीब तीन लाख करोड़ रुपए की जो नकदी खत्म हो जाएगी, वह जीडीपी के 2 प्रतिशत के बराबर

है। इससे निवेश बढ़ेगा और अर्थव्यवस्था की आपूर्ति क्षमता बढ़ेगी। साथ ही मुद्रा स्फीति की दर घटेगी। अब जरूरत इस बात की है कि बड़े नोटों को निरस्त करने से हुई राजस्व वृद्धि का प्रयोग सुनियोजित रूप से सही दिशा में किया जाना चाहिए। इस रकम का उपयोग उच्च पथ के निर्माण करने, मनरेगा के आवंटन में वृद्धि करने, सेना के लिए देश में आधुनिक हथियार के निर्माण करने, रेलवे फ्रंट कोरिडोर या एक्सप्रेस वे जैसी बुनियादी परियोजनाओं में इस रकम का उपयोग किया जाना देशवासियों के हित में होगा।

इसके अतिरिक्त सरकार का यह प्रयास होना चाहिए कि काले धन के सृजन को भी खत्म किया जाए। नेशनल इंस्टीच्यूट ऑफ फाइनेंशियल मैनेजमेंट का कहना है कि भारत में करीब 30 लाख करोड़ रुपए का कालाधन है। ऐसे में कोशिश यह हो कि उन तमाम रास्तों को बंद करने की रणनीति बनाई जाए, जिससे कालेधन को सफेद बनाना आसान हो जाता है। साथ ही सरकार का अगला कदम नकद लेन-देन पर अंकुश लगाए जाने का उपाय किया जाए जिसकी शुरुआत 5 लाख से ज्यादा के नकदी लेन-देन पर रोक लगाने से हो। यानी कोई भी व्यक्ति नकद से 5 लाख रुपए तक का ही लेन-देन कर सके। इससे ज्यादा का लेन-देन वह नकद से नहीं कर पाए। इसके बाद 5 लाख से ज्यादा का लेन-देन बैंक चेक, ट्रैवल्स चेक, डिमांड ड्रॉफ्ट या अन्य तरीकों से किया जाए।

इसके साथ ही जो लोग अच्छी कमाई के बावजूद आयकर नहीं दे पा रहे हैं वे आयकर के दायरे में लाए ज़ाएँ। देश में अभी कोई पाँच करोड़ लोग यानी कुल आबादी का तकरीबन एक प्रतिशत लोग ही आयकर अदा करते हैं। बड़े नोटों की बंदी के बाद पचास लाख से एक करोड़ नए आयकरदाता बढ़ाए जा सकते हैं।

कालेधन के सृजन को खत्म करने के मद्देजनर चुनाव में भी कालेधन के प्रयोग को कठोरतापूर्वक रोकना होगा जिसके लिए उम्मीदवार और राजनीतिक दलों के खर्च पर और अधिक ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है।

(28)प्रश्न: क्या आप मानते हैं कि भारत की परिस्थितियों में नकद विहीन लेन-देन का लक्ष्य हासिल हो सकता है?

उत्तर: पाँच सौ और एक हजार रुपए के नोटों का प्रचलन बंद कर भारत सरकार ने बेशक ऐतिहासिक एवं साहसिक फैसला लिया है, मगर नोटबंदी के फैसले के बाद सरकार यह भी कह रही है कि वह नकदविहीन समाज

बनाना चाहती है। यह काम रातोंरात नहीं हो सकता, क्योंकि भारत एक ऐसा देश है जहाँ बड़े पैमाने पर नकद लेन-देन होता है और जहाँ के लोगों का विश्वास है कि वे नकद को बैंक या डाकघरों में न रखकर घर में ही बचत करने के लिए पैसे रखें। जब यह तथ्य है तो क्रेडिट-डेबिट कार्ड का इस्तेमाल और मोबाइल ट्रांजैक्शन तो अभी प्रारंभिक अवस्था में ही है।

यह बात दिगर है कि सरकार की ओर से यह कहा गया है कि संदिग्ध नकद लेन-देन पर अंकुश लगाने के लिए कुछ और फैसले किए जाएँगे, लेकिन यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि अभी तक इस दिशा में जो एकाध कदम उठाए जा चुके हैं वे कारगर साबित होने शेष हैं। अब जब आम जनता कालेधन के खिलाफ सरकार की सख्ती का कष्ट सहकर भी सहयोग कर रही है, तब उसकी यह जिम्मेदारी बनती है कि वह कालेधन के खिलाफ अपनी भूमिका को अंजाम तक पहुँचाए और नकदविहीन लेन-देन का समाज निर्माण करने में अपने स्तर पर आवश्यक फैसले करने में और विलंब न करे। केंद्र सरकार को यह उम्मीद है कि नोटबंदी के फैसले से ऐसा माहौल बनेगा कि लोग नकदी का प्रयोग कम कर देंगे जिसकी संभावना से मैं भी इनकार नहीं करता, मगर अच्छा होता कि इसके लिए पहले ही कुछ जरूरी कदम उठा लिए जाते। मेरा मानना है कि इसके लिए एक कदम तो बैंकिंग सेवाओं को सुदृढ़ करने का होना चाहिए था, क्योंकि देश का एक बड़ा इलाका बैंकिंग सेवाओं के मामले में पिछड़ा हुआ है। इसके अतिरिक्त हर स्तर पर उद्यमियों-व्यापारियों की ओर से नकद लेन-देन के चलन को हतोत्साहित करने की भी जरूरत है और हर किसी को बैंक खाता हो, तभी यह लक्ष्य हासिल हो पाएगा।

(29)प्रश्नः क्या काला धन की सफाई के इस अभियान के दायरे में राजनीतिक दलों को सीधे तौर पर लाने का साहस सरकार दिखा पाएगी?

उत्तरः आजादी के बाद से लेकर अबतक बड़ी कमाई करने वाले हर शख्स को अपनी दौलत का हिसाब देने की बात की जा रही है, तब इसके अगले चरण में सरकार को ऐसा कदम भी उठाना चाहिए जिससे राजनीतिक दलों को चंदे और आमदनी के अपने स्रोतों का पारदर्शी तरीके से खुलासा करने को बाध्य किया जा सके, क्योंकि सबसे ज्यादा कालेधन का इस्तेमाल चुनावों में होता है जिसका जरिया कोई और नहीं राजनीतिक दल और चुनाव लड़ने वाले नेता ही बनते हैं। एक अध्ययन के अनुसार 2014 की तमाम चुनावी

प्रक्रिया में 30 हजार करोड़ रुपए किए गए, जो देश इतिहास का सबसे महंगा चुनाव साबित हुआ। अध्ययन यह भी बताता है कि चुनाव में हुआ 75 प्रतिशत खर्च कालेधन से पूरा किया गया। इस दौरान करीब 300 करोड़ रुपए की अवैध राशि जब्त की गई। जाहिर है, राजनीतिक दलों को मिलने वाले रुपए की एक-एक पाई का हिसाब लेने की व्यवस्था जबतक नहीं होगी, तबतक कालेधन की सफाई का यह यज्ञ अधूरा ही रहेगा। राजनीतिक दलों की आय को सूचना के अधिकार के दायरे में लाने की माँग लंबे समय से उठती रही है, मगर तमाम राजनीतिक दल इसके विरोध में खड़े दिखते हैं। अगर हर आदमी की कमाई के हिसाब देने की बारी आ गई है, तो राजनीतिक दलों को भी अपनी आय का हिसाब देना होगा जिसके लिए सरकार को ही अपनी तरफ से पहल करनी होगी, तभी कालेधन का यह अभियान पूरा हो सकेगा।

(30)प्रश्नः देशभर में चीनी सामानों के बहिष्कार के कारण क्या भारतीय अर्थव्यवस्था पर अच्छे प्रभाव पड़े है?

उत्तरः हाँ, देश भर में चीनी सामानों के बहिष्कार के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था पर अच्छे प्रभाव पड़े हैं, क्योंकि बहिष्कार की वजह से चीन के सामान की बिक्री 20 से 25 प्रतिशत कम हुई है और यदि जनता की भावनाएँ इसी प्रकार उद्वेलित रहीं, तो संभव है कि बहिष्कार का असर कलपूर्जों और मशीनरी के आयात पर भी पड़े। इससे देश की अर्थव्यवस्था पर अच्छे प्रभाव पड़ेंगे। यदि चीन से आने वाले सामान की आयात 20 प्रतिशत भी कम होता है तो इससे हमारे चीन के साथ व्यापार घाटे पर कम से कम दस अरब डॉलर का असर होगा, जिससे हमारी विदेशी मुद्रा बचेगी।

चीन से आयात घटने का दूसरा सबसे अधिक महत्वपूर्ण असर यह होगा कि इससे देश में उत्पादन बढ़ने लगेगा, जिनकी आपूर्ति चीनी सामानों से होती है। इस बहिष्कार का तीसरा असर यह होगा कि डॉलर की माँग घटने से रुपए पर दबाव कम होगा और रुपया मजबूती की ओर आगे बढ़ेगा और वर्तमान में रुपया जो 66 से 67 रुपए प्रति डॉलर पर है वह सुधरता हुआ 62 रुपए प्रति डॉलर तक आ सकता है। चीनी सामानों के बहिष्कार का जो उत्साह भारत की जनता के बीच देखने को मिल रहा है वह अभूतपूर्व है। दूसरी बात यह है कि दुनिया के दूसरे देशों को भी इस बहिष्कार से सबक मिल सकता है, जो भारत को केवल बाजार के रूप में देखते हैं और भारत के विरोध में काम करने से बाज नहीं आते।

(31)प्रश्नः केंद्र सरकार ने काला धन पर अंकुश लगाने और कर चोरी के खिलाफ सख्ती का रवैया अपनाते हुए कौन सा कदम उठाया है? क्या नए कानून से अच्छे परिणामों की उम्मीद की जा सकती है?

उत्तरः केंद्र सरकार ने कालाधन पर अंकुश लगाने और कर चोरी के खिलाफ सख्ती का रवैया अपनाते हुए बेमानी संपत्ति की खरीद-बिक्री करने के लिए नया संशोधित कानून बनाया है। पहली नवम्बर, 2016 से लागू इस नए संशोधित कानून के तहत बेनामी संपत्ति की खरीद-बिक्री करने वालों को अर्थदंड के साथ सात साल तक जेल की सजा भी होगी। नए कानून में बेनामी लेन-देन को परिभाषित भी किया गया है। इस पर रोक लगाने तथा इसके उल्लंघन पर सजा और जुर्माने का प्रावधान है।

दरअसल, संपत्तियों में जमीन, मकान, फ्लैट आदि की खरीद-बिक्री में बेनामी का प्रचलन बढ़ गया है। बेनामी संपत्ति में कालेधन का काफी उपयोग होता है। ऐसी संपत्तियों के कारोबार से कालेधन की कमाई भी की जाती है। कालेधन को खपाने और उसके माध्यम से धन अर्जित करने के लिए रियल स्टेट प्रमुख माध्यम बन गया है। सरकार ने इस कारोबार को नियंत्रित करने के लिए जो कदम उठाया है वह अत्यंत ही प्रशंसनीय है। इससे सरकारी राजस्व की होने वाली क्षति पर भी अंकुश लगेगा। इससे रियल स्टेट की बढ़ती कीमतों में गिरावट आएगी। जो लोग कालेधन सें बेनामी संपत्ति अर्जित करने के बाद में उसे उँचे दामों पर बेच देते हैं उस पर भी अंकुश लगाया जा सकेगा।

नए कानून से अच्छे परिणामों की उम्मीद की जा सकती है, जो कालेधन की प्रवाह और कर छिपाने की प्रवृत्ति को रोकने में सहायक होगा।

(32)प्रश्नः कर्ज चुकाने में दिलचस्पी नहीं रखने वालों को सरकारी बैंकों द्वारा उसे ही पुनः कर्जा देना क्या देश की बैकिंग प्रणाली और अर्थव्यवस्था के लिए आत्मघाती नहीं माना जाएगा?

उत्तरः निश्चित रूप से जिन लोगों को कर्जा चुकाने में दिलचस्पी नहीं हो उन्हें फिर भी सरकारी बैंकों द्वारा कर्जा देना देश की बैंकिंग प्रणाली और अर्थव्यवस्था के लिए आत्मघाती माना जाएगा। आखिर तभी तो सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश टी. एस. ठाकुर की अध्यक्षतावाली तीन सदस्यीय पीठं ने उन लोगों के नाम जाहिर करने को कह रही है, जिनके नाम हजारों करोड़ रुपए बकाया है। उल्लेख्य है कि ब्योरे के मुताबिक 87 लोगों के पास 85000 करोड़ रुपए बकाया है जिसे नजरअुंदाज नहीं किया जा

सकता है, क्योंकि गैर-निष्पादित संपत्ति (एनपीए) का मामला इतना बड़ा हो गया है कि इसका अर्थव्यवस्था पर काफी गहरा असर हो रहा है। इसके अलावा यह सरकारी पैसे का भारी दुरुपयोग भी है। सरकारी बैंक से इस डूबते कर्ज यानी न अदा किए जाने वाले लाखों करोड़ रुपए के निकल जाने से बैंक तबाह होने के कगार पर पहुँच गए हैं। सरकार की दिक्कत शायद यह है कि बड़े कर्जदारों के नाम उजागर कर देने से अर्थव्यवस्था में कहीं और गिरावट न दिखने लगे।

मगर प्रधान न्यायाधीश का तर्क है कि इससे उन्हें डरना चाहिए, जो सार्वजनिक पैसे नहीं चुका रहे हैं। दरअसल, सरकारी बैंक कर्ज न चुकाने वाले पूँजीपतियों पर मेहरबान हैं और रिजर्व बैंक तथा केंद्र सरकार को ऐसे डिफाल्टरों के नाम तक जाहिर करने में परेशानी हो रही है जबकि सर्वोच्च न्यायालय ने भी नाम छिपाने की नीयत पर सवालिया निशान लगाया है। अदालत का कहना है कि बड़े कर्जदारों के नाम सार्वजनिक करना लोकहित में है। दरअसल, सूचना के अधिकार कानून के एक विशेष प्रावधान के तहत अपवाद-स्वरूप राष्ट्रीय एकता, अखंडता और आर्थिक सुरक्षा तथा किन्हीं दो पक्षों के बीच विश्वास के आधार पर हुए आपसी लेन-देन जैसे संदर्भो में सार्वजनिक प्राधिकरणों को कुछ सूचनाएँ जाहिर न करने की छूट दी गयी है। सरकार और रिजर्व बैंक इसी प्रावधान की ओट में कर्जदार पूँजीपतियों के नाम छुपाने पर आमादा है। कर्जदारों के नाम के साथ कर्जमाफी का मसला भी जुड़ा हुआ है।

पिछले कुछ समय से बैंकों ने कर्जे की बड़ी रकम भी माफ की है। संबंधित विवरणों के जगजाहिर होने से ही पता चलेगा कि किसे कर्ज माफी का फायदा हुआ है और कहीं ऐसा करने के पीछे नीहित स्वार्थ या भ्रष्टाचार तो काम नहीं कर रहा है। बहरहाल, उम्मीद है कि सर्वोच्च न्यायालय के कड़े रूख से सरकार और रिजर्व बैंक के रवैए में समुचित सुधार होगा, अन्यथा देश की बैंकिंग प्रणाली और अर्थव्यवस्था के लिए कर्ज अदाएगी नहीं करने वालों को पुनः कर्ज देना आत्मघाती माना जाएगा।

(33)प्रश्नः पाँच सौ और एक हजार रुपए के नोट बंद करने के फैसले को ऐतिहासिक और साहसिक क्यों कहा गया? क्या आप मानते हैं कि यह फैसला कालेधन के कारोबार की क़मर तोड़ देगा?

उत्तरः देखिए, किसी भी देश का भविष्य उसके आर्थिक विकास पर निर्भर करता है और आर्थिक विकास उसके मुद्रा पर, लेकिन जब देश के मुद्रा का

दुरुपयोग होने लगे, तो यह वाकई एक गंभीर चिंता का विषय बन जाता है। हमारे देश में बहुत बड़ी संख्या में भारतीय कैरेंसी भ्रष्टाचार, हवाला और आतंकी फंडिंग के जरिए इकट्ठा हो रही थी, जो देश की आर्थिक व्यवस्था व देश की सुरक्षा के लिए बहुत बड़ा खतरा साबित हो रहा था, जिस पर नियंत्रण के लिए एक ठोस रणनीति की आवश्यकता थी और इस रणनीति को अमल में लाने के लिए ठोस निर्णय की आवश्यकता थी जिसे पिछले तकरीबन तीन दशकों की सरकारें नहीं कर पा रही थीं। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की सरकार ने पाँच सौ और एक हजार रुपए के नोट को अचानक बंद कर वास्तव में एक ऐतिहासिक और साहसिक कदम उठाया है जिससे एक सख्त संदेश उन लोगों को दे दिया कि अब न तो भारत आतंक को बरदाश्त करेगा और ना ही भ्रष्टाचार को।

जहाँ तक इस फैसले से कालेधन के कारोबार की कमर तोड़ने का सवाल है, निश्चित रूप से सरकार के इस फैसले से कालाधन रखने वाले अब कंगाल हो जाएँगे और कालाधन पर अब अंकुश लगेगा। आपने देखा नहीं खूंखार कारोबारी दाउद इब्राहिम को इस फैसले से एक दिन में ही पचास लाख करोड़ रुपए का झटका लग गया, क्योंकि अब कालाधन कोयला से भी बदतर हो गया। दरअसल, 500 और 1000 रुपए के नोट अचानक बंद कर इस तरह से अमल में लाई गई जिसकी कल्पना तक राजनीतिक दलों, बैंकों और आम जनता ने नहीं की थी और किसी को इसकी भनक तक नहीं लग पाई तथा कालाधन रखने वालों को इसे खपाने का बहुत ज्यादा मौका भी नहीं मिला।

सबसे बड़ा फायदा तो यह है कि आतंकी कामों में लगाए जाने वाले पैसे पर नकेल कसेगी। पाकिस्तान में छपने वाले फर्जी नोट के सहारे भारत में वर्षों से जारी नकली नोट का धंधा और हवाला कारोबार बंद होगा जिससे सीमा पर होने वाली आतंकी घुसपैठ और कश्मीर घाटी में बेरोजगार युवाओं को रुपए देकर सुरक्षा बलों पर कराई जाने वाली पत्थरबाजी में कमी आएगी और कालेधन पर लगाम कसने से अब संपत्ति के मूल्य दर में कमी आएगी। एक अनुमानित आकड़े के अनुसार हर साल आतंकी गुट 70 करोड़ रुपए अर्थव्यवस्था में डालते हैं और इसमें से 20-25 करोड़ रुपए ही पकड़े जाते हैं। इनमें से आधे से अधिक 1000 रुपए के नोट होते हैं जिसका उपयोग वे अपने गुर्गों के माध्यम से खरीदी में करते है। पुराने नोटों को खत्म किए जाने से अब गुप्त जगह छिपाए और छपाए नोटों की कीमत नहीं रही, क्योंकि

वे नोट चलन से बाहर कर दिए गए हैं। 2000 रुपए के नोट से नया कालाधन निर्मित हो सकता है जिसपर निगरानी रखनी होगी। फिर से कालेधन कारोबार अपनी जड़ें न जमा सके, इसके लिए सरकार को अभी से प्रयास करने होंगे। इस फैसले से जहाँ राजनीति का शुद्धिकरण होगा, वहीं चुनाव प्रक्रिया को पारदर्शी और साफ-सुथरा बनाने में मददगार साबित होगा।

(34)प्रश्नः पाँच सौ और एक हजार रुपए के नोटों को वापस लेने के सरकार के फैसले से राजनीतिक दलों के नेताओं खासतौर बसपा प्रमुख मायावती और मुलायम सिंह यादव को ऐसा क्यों धक्का लगा कि मायावती को इसे आर्थिक आपातकाल और मुलायम जी को इसके लिए समय देने की माँग करनी पड़ी?

उत्तरः पाँच सौ और एक हजार रुपए के नोटों को वापस लेने के सरकार के फैसले से बसपा प्रमुख मायावती को इसे आर्थिक आपातकाल की संज्ञा देने के लिए इसलिए मजबूर होना पड़ा, क्योंकि वह अपने नोटों की माला छुपा नहीं पा रही हैं। उल्लेख्य है कि मायावती ने अपने जन्मदिन पर लाखों रुपए की नोटों की माला पहनकर फूहड़ प्रदर्शन किया था। निश्चित तौर पर मायावती की टिप्पणी उनकी राजनीतिक शैली पर हुई चोट से निकली है, जहाँ चुनाव के वक्त टिकट देने के लिए नोटों की थैली आवश्यक बताई जाती है।

इसी प्रकार मुलायम सिंह यादव को भी सपा की एक सभा में 500 तथा 1000 रुपए के नोटों को बदलने के लिए और अधिक समय देने की माँग इसलिए करनी पड़ी, ताकि भ्रष्टाचारी और रिश्वतखोर अपनी काली कमाई से अर्जित कालेधन को सफेद में परिवर्तित कर सकें। इसमें कोई दो राय नहीं कि पाँच राज्यों में होने वाले विधानसभा के चुनाव से ठीक पहले केंद्र सरकार ने यह फैसला लेकर विरोधी दलों को राजनीतिक और आर्थिक रूप से भी पंगु करना चाहा है। इसमें कोई शक नहीं कि इस फैसले से कुछ दिनों तक के लिए आम आदमी को भी परेशानी हुई। अगर यह परेशानी बिल्कुल आम आदमी की न होती, तो दलितों की नेता मायावती और पिछड़ों और यादवों के नेता मुलायम सिंह यादव को बयान देने के लिए मजबूर न होना पड़ता। प. बंगाल की मुख्यमंत्री ममता जी को भी इस फैसले के खिलाफ बयान देने के लिए इसी वजह से मजबूर होना पड़ा।

1978 में प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई की जनता पार्टी की सरकार द्वारा पाँच सौ और हजार रुपए के नोट को प्रचलन से बाहर करने का फैसला इस मायने

में मोदी सरकार के फैसले से इस मायने में अलग था कि तब एक हजार के नोट बिरले लोगों के पास होते थे, लेकिन आज वह नोट किसान, मजदूर, रेहड़ी पटरीवाले छोटे व्यापारी और दलित, सवर्ण सभी के पास हैं। भारतीय समाज आज भी बैंकों के मुकाबले अपने घर में नकदी रखकर बचत करने में ज्यादा विश्वास करता है। वह कारोबार करे और कमाई करने जाए या बैंक में जाकर पंक्ति में खड़ा होकर नोट बदलवाए? आखिर तभी तो केंद्र सरकार ने प्रधानमंत्री जनधन योजना लागू की थी जिसमें देश के 25 करोड़ लोगों ने बैंक में खाता खोलवाया। इस काम को तों गरीब आदमी कर ही सकते थे या आज भी कर सकते हैं। इसके लिए तो 31 दिसंबर, 2016 और उसके बाद भी 31 मार्च, 2017 तक का समय दिया गया है जो कम नहीं है।

काँग्रेस हमेशा की तरह इस मसले पर भी नकारात्मक सोच से ग्रस्त है। पता नहीं उसकी यह इनकार की मुद्रा कब समाप्त होगी, क्योंकि उसके शीर्ष नेता अपनी नकारात्मकता से उबर नहीं पर रहे हैं। हमारा मानना है कि जब हम अपनी सुविधा के लिए हर नियम-कायदे को धत्ता बताएँगे, तो हालात कैसे बदलेंगे?

इस संदर्भ में मैं आपको यह जानकारी दूँ कि आज से 32 साल पहले ब्रिटेन में 12 नवंबर, 1984 को एक पाउंड के नोट को खत्म करने का फैसला किया गया था और उसकी जगह एक रुपए का सिक्का चालू किया गया। हालांकि नोट की तुलना में सिक्के ज्यादा महंगे हैं, मगर सिक्के नोट से 50 गुना ज्यादा दिनों तक चलेंगे। फिर 1986 में ब्रिटेन सरकार ने दो पाउंड का सिक्का चालू किया।

(35)प्रश्नः 8 अगस्त, 2016 की आधी रात से 500 और 1000 रुपए के नोटों को बंद किए जाने का सरकार के फैसले को क्या आप आजादी के बाद काले धन के खिलाफ सबसे बड़ा कदम मानते हैं?

उत्तरः हाँ, 8 अगस्त, 2016 की आधी रात से 500 और 1000 रुपए के नोटों के प्रचलन बंद किए जाने के सरकार के फैसले को हम आजादी के बाद कालेधन के खिलाफ सबसे बड़ा कदम मानते हैं, क्योंकि इससे कालेधन के कारोबारियों, इस तरह के नकली नोटों के जरिए राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की क्षति पहुँचाने और बड़े पैमाने पर आर्थिक भ्रष्टाचार में लिप्त लोगों के खिलाफ एक तरह की गाज गिरी है। यह एक ऐसा कदम है जो भ्रष्ट तत्वों की कमर तोड़ने में सहायक सिद्ध हो सकता है। निःसंदेह

कालेधन की अर्थव्यवस्था राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए भी खतरा बन गई है और कालेधन की समस्या देश के लिए नासूर बन चुकी है।

देश के किसी प्रधानमंत्री द्वारा इस तरह अचानक 8 नवंबर, 2016 की रात 12 बजे से 500 और 1000 रुपए के नोट बंद करने का साहसिक फैसला करना जिसकी भनक इसकी घोषणा किए जाने तक किसी को भी नहीं मिली, संभवत: यह पहला मामला है। हालांकि आपको याद होगा 8 अगस्त, 2016 से ठीक 15 दिन पहले बड़ोदरा के एक समारोह में नरेन्द्र मोदी ने कहा था, 'क्या हो अगर कालेधन के खिलाफ भी एक सर्जिकल स्ट्रॉइक हो जाए।' तब किसी को उनकी मंशा का अंदाजा नहीं था। इसलिए सरकार के इस फैसले को आजादी के देश में भ्रष्टाचार व कालेधन के खात्मे के लिए उठाया गया सबसे अहम कदम माना जाएगा। वैसे भी कालेधन, भ्रष्टाचार और आतंकवाद को प्रमुख चुनावी मुद्दा बनाकर ही मोदी सरकार सत्ता में आई थी।

हालांकि यह भी सच है कि इससे पहले गुजरात में जन्मे प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने भी 1978 में 1000 रुपए के नोट बंद किए थे। उस दौरान रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया के गवर्नर आई जी पटेल थे, जबकि इस बार उस पद पर उर्जित पटेल हैं। कहा जाता है कि आज से 38 साल पहले 1978 के दौरान लोगों ने हजार के नोटों को रद्दी में फेंक दिया था। कई लोगों ने चिलम के लिए नोटों का इस्तेमाल किया था।

एक तरह से देखा जाए, तो प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने पाँच सौ और एक हजार रुपए के नोटों को गैर-कानूनी करार करके एक जंग की घोषणा कर दी है, जिस जंग के दौरान समाज विरोधी तत्वों के ये कैरेंसी नोट महज कागज के टुकड़े रह जाएँगे। यह जंग निश्चित रूप से देश में गहरी जड़ें जमा चुके भ्रष्टाचार, अर्थव्यवस्था को खोखला कर रहे कालाधन तथा जाली नोटों के बल पर फल-फूल रहे आतंकवाद के खिलाफ है। भारत के राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी ने प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के फैसले का स्वागत करते हुए कहा कि यह कदम कालेधन और जाली नोट को खोज निकालने में मदद करेगा।

कहा जाता है कि आतंकवाद को पैसा जुटाने के लिए सीमा पार के हमारे शत्रु जाली नोटों को फैलाते हैं, जो देश की अर्थव्यवस्था को खोखला बनाता है। जाली नोट का जाल देश के सामने एक चुनौती है, क्योंकि बेनामी हवाला कारोबार को भी जाली नोट से बढ़ावा मिलता है जिससे देश तबाह करने का प्रयास किया जाता है। पाँच सौ और एक हजार रुपए के नोटों कों

प्रचलन से बाहर करने के इस फैसले के साथ देश की 86 प्रतिशत करेंसी बाजार से बाहर हो जाएगी। इसलिए भ्रष्ट तत्वों को अवाक करने का इससे बेहतर कोई और फैसला नहीं हो सकता। इस फैसले से यह सिद्ध हो गया कि प्रधानमंत्री लीक से हटकर ऐसे अप्रत्याशित फैसला करने का साहस रखते हैं जिससे कालाधन जुटाने वाले तत्वों के होश उड़ जाए।

(36)प्रश्नः क्या आप ऐसा महसूस करते हैं कि तेजी से बढ़ते साइबर अपराध और सुरक्षा के लिए खतरा के मद्देनजर साइबर सुरक्षा तंत्र को मजबूत बनाने की आवश्यकता है?

उत्तर: देशव्यापी खाते में वायरस की लगी सेंध के बाद बैंक उपभोक्ताओं की चिंता का बढ़ना इसलिए स्वाभाविक है, क्योंकि जिस तरह बैंक खाते की जानकारी लीक कर साइबर अपराधी आम लोगों की मेहनत की कमाई चुरा रहे हैं इससे खातों की गोपनीयता बरकरार रखना बड़ी चुनौती बन गई है। अब तो एटीएम माध्यमों से भी छेड़छाड़ कर बैंक ग्राहकों को चपत लगा रहे हैं।

साइबर अपराधियों के अलग-अलग राज्यों में काम कर रहे गैंग इतने एक्सपर्ट हैं कि एटीएम में घुसने के बाद उससे सेंसर से छेड़-छाड़ कर दे रहे हैं। इस सेंधमारी से सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के बैंकों के बत्तीस लाख से अधिक डेविट कार्ड प्रभावित होने की आशंका है। इसलिए इलेक्ट्रॉनिक और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय की साइबर .सुरक्षा से संबद्ध मुख्य एजेंसी ने यह चेतावनी दी है और सभी बैंकों को आगाह किया है कि पाकिस्तान के साइबर अपराधी उनकी सूचना आधारभूत संरचना को निशाना बना सकते हैं और भारत की अर्थव्यवस्था को अस्थिर करने के लिए वित्तीय क्षेत्र में सेंध लगा सकते हैं, यह आशंका निर्मूल नहीं है। इसलिए साइबर अपराध में तेजी से बढ़ोतरी सुरक्षा के लिए भी खतरे की आशंका है जिसकी रोकथाम के लिए साइबर सुरक्षा तंत्र को मजबूत बनाने की जरूरत है।

वर्तमान दौर में एटीएम मशीनों को इस तरह उपयोगी बना दिया गया है कि उससे हम अनेक काम करते हैं। हमारी आदतें भी बिगड़ गई हैं। आज की प्रणाली जितनी सुविधाजनक हुई है, उतनी ही यह असुरक्षित भी हो रही है। सुविधाओं के बढ़ने के साथ आज छोटे से बड़े धोखाधड़ी की आशंकाएँ भी उतनी ही बढ़ गई हैं. आखिर तभी तो निजी खातों से चोरी के मामले पूरी दुनिया भर में सामने आ रहे हैं। इतनी भारी संख्या में डाटा चोरी हो जाए तो मानना पड़ेगा कि इस प्रणाली में ही ऐसे दोष हैं, जिनको दूर किए जाने की जरूरत है।

(37)प्रश्नः क्या आप ऐसा मानते हैं कि भारत अब वैश्विक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का एक हिस्सा बन गया है?

उत्तरः हाँ, मैं मानता हूँ कि भारत अब वैश्विक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का एक हिस्सा बन गया है। आजादी के बाद इस देश ने मिश्रित अर्थव्यवस्था अपनाई थी। यानी पूँजीवादी और समाजवादी व्यवस्था का एक ऐसा संयोजन जो धीरे-धीरे समाजवाद ले आएगा जिसमें देश की समूची जनता को आर्थिक विकास का समान अवसर मिलेगा और साथ ही समाज से गैर-बराबरी अथवा विषमता खत्म होगी।

दरअसल, कोई भी देश अपनी चुनी हुई अर्थव्यवस्था के ढाँचे में ही निश्चित नहीं रह सकता, इसलिए 43 साल के बाद 1990 में अपनी यात्रा का रूख बदल कर भारत तेजी से पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में रूपांतरित हुआ और अब तो यह पूरी तरह वैश्विक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का एक हिस्सा बन गया है जिसका अभिन्न अंग कालाधन है। बगैर कालेधन के कोई भी पूँजीवादी अर्थव्यवस्था हो ही नहीं सकती। यही कारण है कि पश्चिम के विकसित पूँजीवादी देश कालेधन के सबसे बड़े गढ़ हैं। भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की संपूर्ण और अखंड प्रतिबद्धता पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के साथ है, किंतु वे भारत को कालेधन से मुक्त करना भी चाहते हैं। देखना यह है कि केंद्रीय सत्ता पूँजीवादी विकास की गति को तीव्रता करने की मुहिम और कालेधन से मुक्ति इन दोनों विरोधी लक्ष्यों को किस मोड़ तक ले जा सकते है।

(38)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि भारत जैसी उभरती अर्थव्यवस्था के लिए इलेक्ट्रॉनिक लेन देन की व्यवस्था अनिवार्य है?

उत्तरः 8 नवंबर, 2016 की आधी रात से नोटबंदी के बाद केंद्र सरकार ने नकदी की किल्लत से जूझ रहे लोगों से जरूरी खर्चों के लिए डिजिटल लेनदेन का विकल्प अपनाने का सुझाव दिया है। इसे अपनाकर निश्चित रूप से वे न सिर्फ अपनी दैनिक और कारोबारी जरूरतें पूरी कर सकते हैं, बल्कि व्यवस्था को और पारदर्शी बनाने में भागीदार बन सकते हैं। वैसे नोटबंदी के 50 दिनों के बाद यह देखने को मिल रहा है कि लोग जरूरी वस्तुओं और लेनदेन के लिए बड़े पैमाने पर इलेक्ट्रॉनिक माध्यम को अपना रहे हैं। मेरे जैसे लोग तो चेक के जरिए काम चला रहे हैं। देश के विकास और भ्रष्टाचार पर अंकुश की दिशा में एक बड़ा क्रांतिकारी कदम है।

मेरा भी मानना है कि नकदी लेनदेन व्यवस्था आर्थिक विकास, पारदर्शिता, वित्तीय समावेशन को बढ़ावा देने के साथ कालेधन की अर्थव्यवस्था

को खत्म कर भारत को सशक्त राष्ट्रों की श्रेणी में खड़ा कर देगी। यदि भारत डिजिटल मुद्रा को अपनाता है, तो उसे स्वयं को वैश्विक अगुआ के तौर पर स्थापित करने और वैश्विक मंच पर एक नए प्रतिमान गढ़ने में मदद मिलेगी। भारत वैश्विक सूचना तकनीक से इसकी बहुत बड़ी आबादी अभी भी इसके लाभों से वंचित है। डिजिटल अर्थव्यवस्था को अपनाकर उन्हें इसका लाभ दिया जा सकता है।

(39)प्रश्नः भारतीय स्टेट बैंक में पाँच अन्य सहायक बैंकों के विलय से देश की अर्थव्यवस्था पर क्या असर पड़ेगा? कैसे?

उत्तरः भारत सरकार ने बैंकिंग एकीकरण को हरी झंडी दिखाते हुए भारतीय स्टेट बैंक में पाँच अन्य बड़े सहायक बैंकों के विलय प्रस्ताव को मंजूरी दे दी है। ये बड़े सहायक बैंक हैं- स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एंड जयपुर, स्टेट बैंक ऑफ मैसूर, स्टेट बैंक ऑफ त्रावणकोर, स्टेट बैंक ऑफ पटियाला और स्टेट बैंक ऑफ हैदराबाद। इन पाँचों सहायक बैंकों के विलय से भारतीय स्टेट बैंक को अब देश में एक वैश्विक बैंक बनने का रास्ता साफ हो गया है। ऐसा होने पर भारतीय स्टेट बैंक 37 लाख करोड़ रुपए की परिसंपत्ति के साथ दुनिया का 44वें क्रम का बड़ा वैश्विक बैंक बन जाएगा। भारत में भारतीय स्टेट बैंक जैसे बड़े बैंक में सहायक बैंकों के विलय से जहाँ उद्योग कारोबार व विभिन्न वर्गों की कर्ज की बड़ी जरूरत पूरी होगी, वहीं सरकार के वित्तीय समायोजन के लक्ष्य को साधने में मदद मिलेगी। साथ ही मजबूत बैंकिंग सिस्टम से देश की अर्थव्यवस्था को भी भारी संबल मिलेगा। यही नहीं फँसे बैंक कर्ज(एनपीए) से अर्थव्यवस्था को बचाया जा सकता है जो बहुत जरूरी है जिसके लिए बढ़ते एनपीए से अर्थव्यवस्था को बचाने के लिए रणनीतिक कदम आगे बढ़ाने होंगे, क्योंकि देश को बैंकों के समक्ष बढ़ता एनपीए एक बड़ी चुनौती है।

(40)प्रश्नः क्या यह विडंबना नहीं है कि रिश्वत लेने के आरोपी एक साधारण कर्मचारी पर तो कार्रवाई की जा सकती है, पर अगर आरोपी उच्च पदस्थ पदाधिकारी है, तो जाँच के लिए सरकारी मंजूरी जरूरी है?

उत्तरः हाँ, यह विडंबना ही है कि रिश्वत लेने के आरोपी एक साधारण कर्मचारी पर तो कार्रवाई की जा सकती है, पर अगर आरोपी उच्च पदस्थ पदाधिकारी है, तो जाँच के लिए सरकारी अनुमति की जरूरत है। देश चलाने और अहम फैसले लेने की जिम्मेवारी जिन लोगों पर है, अगर वहीं भ्रष्टाचार

के वृहत संजाल को संचालित कर रहे हैं तो फिर सुधार की गुँजाइश नहीं बचती है।

नोटबंदी से उत्पन्न नकदी संकट की वजह से जहाँ एक ओर आम आदमी और उद्यमी बुरी तरह परेशान है, वहीं दूसरी ओर नेताओं, अधिकारियों, बैंकरों और कारोबारियों से अबतक यानि 22 दिसंबर 2016 तक 3185 करोड़ से अधिक नकदी पकड़ी जा चुकी है। इस सिलसिले में शीर्ष स्तर पर व्याप्त भारी भ्रष्टाचार उजागर हुआ है। तमिलनाडु के मुख्य सचिव पी. राममोहन राव के घर और कार्यालय की तलाशी के बाद आयकर विभाग ने नए नोटों में 48 लाख रुपए तथा सात किलो सोना बरामद करने का दावा किया गया है। राव और उनके बेटे सहित कई करीबियों के 15 ठिकानों पर हुई कार्रवाई में करीब पाँच करोड़ की अघोषित संपत्ति का पता चलने की बात भी की गई है। यह भी माना जा रहा है कि गिरफ्तार कारोबारी जे. शेखर रेड्डी और उनके एक सहयोगी के साथ राव के संबंध हो सकते हैं। रेड्डी के पास से दिसंबर, 2016 की शुरुआत में नए नोटों में 34 करोड़ के साथ 170 करोड़ नकद और 127 किलो सोना बरामद किया गया था। इसी प्रकार प्रवर्तन निदेशालय ने कोलकाता के कारोबारी पारसमल लोढ़ा को 25 करोड़ रुपए के पुराने नोट के साथ गिरफ्तार किया।

भ्रष्टाचार का घुन हमारे राष्ट्रीय जीवन को खोखला कर रहा है। ऐसे भ्रष्ट वातावरण में देश का सर्वांगीण विकास हमेशा दूर की कौड़ी बना रहेगा। असमानता और अस्थिरता की बड़ी वजह भी यही है। इससे लोकतंत्र की गति भी बाधित होती है। अनेक नियमों और कानूनों के बावजूद बड़े पैमाने पर हो रही लूट को रोका नहीं जा पा रहा है। केंद्रीय जाँच ब्यूरो ने बीते दस सालों में सात हजार मामलों की जाँच की है, जिसमें 70 प्रतिशत मामलों में दोषी भ्रष्ट अधिकारियों को सजा दी गयी है, लेकिन सीमित क्षमता और राजनीतिक दखल के कारण उसकी धार भी कमजोर हो सकती है। अभी भी उसके पास साढ़े छः हजार से अधिक मामले पड़े हैं।

दरअसल, नौकरशाहों पर कार्रवाई में एक बड़ी बाधा मौजूदा कानून है। यह तो कहिए कि पिछले महीने यानी नवंबर, 2016 में केंद्र सरकार ने भ्रष्टाचार निरोधक कानून में बदलाव करने के संसदीय समिति के उस सुझाव को मान लिया गया है, जिसमें सरकारी अधिकारियों के विरूद्ध कार्रवाई करने से पहले जाँच एजेंसियों को सरकार से अनुमति लेने को अनिवार्य बनाने की बात कही है। इसके पीछे तो उद्देश्य था कि ईमानदार

अधिकारियों को बिना किसी भय या पक्षपात के काम करने का माहौल मुहैया कराना है। इस पर प्रावधान के दुरुपयोग की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है। मौजूदा व्यवस्था में भी जाँच से संबंधित नियम नौकरशाहों के लिए सुरक्षा कवच का काम करते हैं, क्योंकि बिना सरकारी अनुमति के उनपर मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है। इसे विद्रूपता नहीं तो और क्या कहेंगे? घपले और लूट का सिलसिला यदि ऐसे ही चलता रहा तो जनता भ्रष्टाचार मिटाने के खोखले नारों और वादों की भुल-भुलैया में भटकती रहेगी और उनकी आँखें धुँआती रहेगी।

(41)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि नोटबंदी के बाद देश का एक बड़ा तबका देश को आर्थिक मंदी की ओर धकेलने की साजिश रच रहा है?

उत्तरः हाँ, विगत दिसंबर, 2016 के मध्य में प्रवर्तन निदेशालय की ओर से देश भर में मारे गए छापों से यह साबित हो गया है कि व्यापारियों का एक बड़ा तबका वस्तुओं के कारोबार की बजाय नोटों का धंधा कर रहा है। पणजी, चंडीगढ़, दिल्ली, बैंगलूरू आदि शहरों में छापेमारी के दौरान बरामद करोड़ों रुपए के नए नोट इस बात की संपुष्टि करते हैं कि देश में नोटों की किल्लत की असल वजह नोटों की जमाखोरी है, क्योंकि नोटों की जमाखोरी इस देश को कई तरह से चोट पहुँचाने का काम कर रही है। इससे हुआ यह कि बाजार में नोटों को लेन-देन या विनिमय एकदम कम हो गया जिसके चलते ठीक-ठाक चल रहा हमारा बाजार एकदम से मंदी के कगार पर पहुँच गया।

आप इस बात से अवगत हैं कि अगर बाजार में मुद्रा विनिमय न हो, तो देश के सामने वित्तीय संकंट खड़ा हो जाएगा। इसलिए हमें इस बात का ख्याल रखना होगा कि बाजार में नोटों का विनिमय करने या बैंकों में जमा करने की बजाय यदि लोग नोटों को अपनी तिजोरियों में ही जमा करने लगें तो देश में खरीद-बिक्री ठप हो जाएगी। बाजार के चलने के लिए जरूरी है कि नोट छोटे हों या बड़े बाजार में दिखें। नोटों की जमाखोरी के चलते आज देश के तमाम राष्ट्रीयकृत और निजी बैंक वित्तीय संकट से जूझ रहे हैं। प्रर्वतन निदेशालय की कार्रवाई से यह साबित हो गया है कि देश का एक बड़ा तबका देश को आर्थिक मंदी की ओर धकेलने की साजिश रच रहा है।

(42)प्रश्नः क्या आप ऐसा महसूस करते हैं कि नोटबंदी से विकास का एक नया द्वार खुला है? आखिर कैसे?

उत्तर: हाँ, मैं भी यह महसूस करता हूँ कि नोटबंदी से विकास का नया द्वार खुला है, क्योंकि अर्थव्यवस्था समाज के विकास तथा कालेधन और भ्रष्टाचार को मिटाने के लिए उठाया गया जो एक जोखिम भरा कदम है। भले ही आज लोगों को परेशानियाँ उठानी पड़ रही हैं, मगर मेरा भी मानना है कि करीब दो लाख करोड़ रुपए के नोट बैंकों में वापस नहीं आएँगे और अब जितनी धनराशि के नोट बैंकों में वापस नहीं आते हैं, उतनी रकम रिजर्व बैंक की बैलेंस शीट से अपने आप समाप्त हो जाएगी जिसका परिणाम यह होगा कि ये रकम सरकार को या तो विशेष डिविडेंट के रूप में वापस मिलेगी या फिर सरकारी बांडों की वापसी के रूप में। यह राशि नेशनल इंफ्रास्ट्रक्चर डेवलपमेंट एंड इनवेस्टमेंट फंड में जमा हो जाएगी। इन प्राप्तियों का 90 प्रतिशत भाग बुनियादी ढांचे के निर्माण में खर्च किया जाना चाहिए, खासकर सड़कों और बंदरगाहों के निर्माण में। शेष दस प्रतिशत रकम नेशनल इनफॉर्मेशन हाइव पर खर्च की जानी चाहिए, क्योंकि सड़कों और बंदरगाहों के निर्माण से डेढ़ सौ तरीके के व्यवसायों को नई ऊर्जा मिलती है और इससे बड़े पैमाने पर रोजगार उत्पन्न होते हैं। इसके असर से अर्थव्यवस्था के करीब 50 प्रतिशत क्षेत्रों को नया जीवन मिल जाएगा। इसके अतिरिक्त ब्याज दरों में कमी के रिजर्व बैंक के फैसले का भी काफी सकारात्मक असर पड़ेगा और इससे निवेश में वृद्धि, पूँजी निर्माण और मंहगाई में कमी का रास्ता तैयार होगा।

(43)प्रश्न: कालेधन को जमा कराने पर 50 प्रतिशत की कर पर छूट सरकार ने क्यों दी और साथ-साथ 25 प्रतिशत रकम को चार साल के लिए ब्याज रहित जमा कराने की व्यवस्था सरकार द्वारा क्यों की गयी?

उत्तर: दरअसल, काले तरीकों से बड़ी मात्रा में कालाधन को सफेद किया जा रहा था, इसलिए सरकार ने छूट दी कि कालेधन को जमा कराने पर 50 प्रतिशत ही टैक्स देना होगा और साथ-साथ 25 प्रतिशत रकम चार साल के लिए ब्याज रहित जमा कराना होगा, जो लगभग 12 रुपए होता है। अत: कालाधन पर वास्तविक टैक्स 62 प्रतिशत बैठता है।

सरकार को सूचना मिली थी कि लोगों द्वारा 500 एवं 1000 रुपए के नोटों की गैर कानूनी ढंग से नए नोटों में बदला जा रहा है। इसलिए रिजर्व बैंक ने सहकारी बैंकों द्वारा पुराने नोट जमा कराने पर रोक लगायी है। सरकार ने प्रलोभन दिया कि एजेंट को 10 से 40 प्रतिशत देने के स्थान पर आप

सरकार को 62 प्रतिशत दे दें और अपनी रकम को आयकर से भी मुक्त करा लें।

उत्तर प्रदेश के एक पूर्व मुख्यमंत्री द्वारा गोदाम में नोट के गठ्ठर रखे जाते थे, परंतु सत्ता छोड़ने के पहले उन्होंने अधिकतर रकम को विदेश भेज दिया। इसी प्रकार एक उद्यमी टैक्स की चोरी बड़ी मात्रा में करते थे। बैंक से ऋण लेने के स्थान पर वे इस काली रकम का नई फैक्ट्री लगाने में निवेश कर देते थे। तीसरे व्यक्ति कालेधन को विदेश भेज देते थे। इसलिए बड़े खिलाड़ी कालेधन को नकद में कम ही रखते हैं।

नोटबंदी के माध्यम से कालेधन के नियंत्रण के लिए टैक्स की दरों में कटौती करने, सरकारी कर्मियों के भ्रष्टाचार पर नकेल कसने के साथ ही देश की वित्तीय सरहद पर घेरेबंदी भी करनी होगी। सच तो यह है कि कालाधन मुख्यत: टैक्स की बचत या सरकारी धन की लूट से बनता है। इसे देखते हुए नोटबंदी से इस प्रक्रिया पर ज्यादा प्रभाव नहीं पड़ेगा। टैक्स की दरें पूर्ववत् ऊँची रहने की वजह से लोग पुन: कालाधन बनाएँगे और नए नोटों में या विदेशों में इसे रखेंगे।

राजनीति में कालेधन का फैलाव भी कम नहीं हुआ है। हाल में भाजपा के दो कार्यकर्ताओं को कालेधन के साथ हिरासत में लिया गया है। इसलिए जरूरत कालेधन के स्रोतों पर प्रहार करने की है। जंगली घोड़े को कटघरे के अंदर चाबुक मारकर सीधा किया जाता है, खुले मैदान में नहीं। इसी तरह भारतीय अर्थव्यवस्था को चारों तरफ से घेर कर नोटबंदी की जाती, तो उसका ज्यादा प्रभाव रहता। खुली वित्तीय सरहदों के साथ सख्ती करने से काली रकम देश के बाहर जाएगी। नोटबंदी के जरिए कालेधन के नियंत्रण के लिए टैक्स की दरों में कटौती करने पर सरकारी कर्मियों के भ्रष्टाचार पर नकेल कसने के साथ ही देश की वित्तीय सरहद पर घेरेबंदी भी करनी होगी। सरकार को यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि नोटबंदी के बाद बैंक कालेधनवालों से मिलीभगत न करने पाएँ। एक बड़ी जरूरत यह भी है कि राजनीति में कालेधन का प्रवेश रोकने की व्यवस्था की जाए। राजनीतिक दलों को क्यों नहीं विवश किया जा रहा है कि वे नकद चंदा लेना छोड़ें? आखिर राजनीतिक दल नकदविहीन चंदे के दायरे में क्यों नहीं आ सकते? जबकि हर किसी को नकदविहीन होने के लिए एक तरह से विवश किया जा रहा है।

(44)प्रश्न: नकदविहीन लेन-देन से क्या-क्या लाभ हैं?

उत्तर: नकदविहीन लेन-देन या व्यवस्था से समाज की वास्तविक तस्वीर

सामने आएगी। कोई भी किसी की मजबूरी का फायदा नहीं उठा सकेगा। आज अनेक कानून बनाने के बाद भी समाज की रचना इस तरह कर दी गयी है जहाँ हर मजबूत आदमी अपने से कमजोरों का शोषण कर रहा है। नगदविहीन लेन-देन में कौन किसको कितना पैसा दे रहा है, इस बात की जानकारी सरकार को भी रहेगी जिसकी वजह से कालेधन पर रोक लगेगी। फुटकर बिक्रेता की लूट बंद हो जाएगी। सरकार को नजर रखनी होगी कि सारी वस्तुओं को फुटकर बिक्रेता सही दाम पर बेच रहे हैं या नहीं।

इसी प्रकार मुनाफाखोरी पर लगाम लग सकेगा। भ्रष्टाचार से पैसे का केंद्रीकरण कुछ हाथों में होता है। इससे गरीबी और अमीरी के बीच खाई बढ़ती जा रही है। पैसे का महत्व सबसे ज्यादा हो चुका है। न्याय, शिक्षा जैसी तमाम तरह की चीजें भी खरीदी जा सकती हैं। पैसे से सारे पाप धुल जाते हैं, परंतु जब पैसा नहीं होगा, तो वह समाज स्वयं ईमानदार हो जाएगा। किसी व्यक्ति के लिए ईमानदार होना जरूरी है। पैसे के खेल में सबसे ज्यादा घिनौना रूप समाज में आया है, वह है अपहरण। धनिक को डर इस बात का रहता है कि कब उसका अपहरण न कर लिया जाए। धन जहाँ है वह भी परेशान और जहाँ धन नहीं है वह भी परेशान। यानी पैसे की वजह से पूरा समाज परेशान है। नगदहीन लेन-देन की व्यवस्था का सबसे बड़ा लाभ होगा कि देश भ्रष्टाचारमुक्त होगा।

(45)प्रश्नः क्या भ्रष्ट बैंक कर्मी कालेधनवालों का काम आसान करने में लगे हुए पाए गए?

उत्तरः हाँ, एक अनुमान के अनुसार दिसंबर, 2016 के मध्य तक करीब एक अरब रुपए के नए नोटों की बरामदगी हो चुकी है। इससे तो यही कहा जा सकता है कि भ्रष्ट बैंक कर्मियों ने इससे भी कई गुना अधिक राशि के नोट कालेधन के कारोबारियों तक पहुँचाए हों। वैसे भी यह चर्चा जोरों पर है कि भ्रष्ट नेताओं, नौकरशाहों और उद्योगपतियों ने भ्रष्ट बैंक अधिकारियों से साठगांठ कर या फिर 20-30 प्रतिशत कमीशन देकर अपने कालेधन को सफेद कर लिया। इस तथ्य की अनदेखी नहीं की जा सकती कि अनुमान से कहीं अधिक धन बैंकों में जमा हो चुका है। ऐसे में यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि कालेधन का जखीरा कहाँ गया?

निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि कालेधनवालों के पास बड़ी राशि में दो हजार के नए नोट पहुँचना सरकार और साथ ही आमजनता से धोखाधड़ी हुई है। यह शर्मनाक है कि जब आम जनता को अपनी जरूरत

के दस-बीस हजार रुपए निकालने के लिए बैंकों के चक्कर काटने पड़ रहे हैं तब संदिग्ध किस्म के लोगों के पास बीस-तीस पचास लाख और किसी-किसी के पास तो एक-दो करोड़ से ज्यादा राशि के नए नोट मिल रहे हैं बावजूद इसके कि नेताओं में न तो किसी विधायक, सांसद, मंत्री अथवा बड़े उद्योगपति या बड़े ठेकेदारों को किसी बैंक या एटीएम के सामने कतार में कहीं खड़े लोगों ने देखा। इससे तो साफ जाहिर होता है कि भ्रष्ट बैंक अधिकारियों की हेराफेरी की वजह से ही बड़ी संख्या में एटीएम खाली पड़े रहे और बैंकों की आवश्यकता से कहीं कम नकदी पहुँची। इस छल-कपट को हर हाल में रोकना होगा, अन्यथा आम लोग खुद को ठगा हुआ महसूस करेंगे। सरकार और साथ ही बैंकों की साख बनाए रखने के लिए भ्रष्ट बैंक अधिकारियों एवं कर्मियों और साथ ही कालेधन के कारोबारियों पर कठोरतम कार्रवाई होनी चाहिए।

(46)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि पीड़ादायी होते हुए भी नोटबंदी की घोषणा को काफी हद तक जनसमर्थन मिला?

उत्तरः हाँ, आपका यह कहना सही है कि पीड़ादायी होते हुए भी नोटबंदी की घोषणा को काफी हद तक जन समर्थन मिला, क्योंकि जनता को भरोसा दिलाया गया था कि 50 दिनों में मुद्रा स्थिति काबू में आ जाएगी, मगर 30 दिन बीतने के बाद ही बहुत कुछ स्थिति नियंत्रण में आ गई और बैंकों में कतार की भीड़ में कमी दिखी। सरकार के आगे नोटों की छपाई फटाफट छपाई और वितरण के लिए जरूरी तंत्र की थोड़ी कमजोरी से भले ही पूरी तरह नकदी आधारित छोटे उपक्रमों के मौजूदा स्वरूप से थोड़ी समस्याएँ उपजी हैं, मगर मुझे लगता है कि इतने भारी समुद्र मंथन से गरल-सुधा दोनों के घट का बाहर निकलना तो स्वाभाविक था। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि पाँच राज्यों के विधानसभा चुनावों से पहले यदि इस किस्म का दाव खेला गया, तो तनावमय माहौल में गरल की हंडिया का ढक्कन कसकर बंद रखना तो टेढ़ी खीर होगा ही।

सरकारी वायदों और प्रतिपक्षी दलों की नुक्ताचीनी, आज दोनों की जड़ें प्रायः ठोस तर्क और वैज्ञानिक आकलनों की बजाय भावुकता में गड़ी हैं और गरीब और साधारण तबके के लोगों का कतार में लगना पीड़ादायी होते हुए भी उसे जब महसूस नहीं हो रहा है, तो जबरन उसकी पीड़ा को कुछ खास किस्म के नेता और शातिर लोगों को नकली कष्टों का रोना रोना कुछ अजीब-सा लगता है। मुझे तो ऐसा नहीं लगता कि नोटबंदी के बाद

हालात किसी तरह बिगड़ गए हैं। यहाँ तक कि किसी किसान या दूधवालों ने इसके खिलाफ सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा नहीं खटखटाया। ये सब मामला राजनीति से प्रेरित दिखा।

नोटबंदी एक अहम और साहसिक फैसला है तथा देश की भलाई के लिए लिया गया फैसला है। यह मैं नहीं कह रहा हूँ, बल्कि देश के करोड़ों-करोड़ लोगों का कहना है। यह कहना है उन लोगों का जो पिछले एक महीने से बैंकों और एटीएम की कतार में लगे रहे हैं। स्पष्ट है कि देश की अधिकांश जनता को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी का यह नोटबंदी का फैसला सही लगा है। दरअसल, व्यवस्था और व्यवहार का एक हिस्सा बन चुका भ्रष्टाचार भी नोटबंदी के सकारात्मक असर को कम करने में लगा हुआ है। कालेधन रखने वालों ने नोटबंदी के बाद एक से एक तरीके निकाल लिए हैं, फिर भी प्रायः प्रतिदिन आयकर विभाग और सीबीआई के अधिकारियों द्वारा किए जा रहे छापे में करोड़ों-करोड़ रुपए के कालेधन पकड़े जा रहे हैं। इसके अतिरिक्त कालाधन सफेद करने के लिए गरीबों के जनधन खातों का इस्तेमाल किया जा रहा है। ताजा खबरों के अनुसार बैंगलुरु और चेन्नई में बड़े पैमाने पर दो हजार के नए नोटों के साथ पाँच और हजार के पुराने नोट पकड़े गए हैं। जो सकारात्मक सोच रखते हैं वह इस नोटबंदी को सफल बनाने के लिए तमाम बदलाव सीख रहे हैं। यह हमारे आपके छोटे-छोटे, लेकिन अहम प्रयासों से ही संभव है कि जुगाड़बंदी पर भारी पड़ जाए।

(47)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि जनधन का कालाधन खाताधारकों के गले की फाँस बन सकता है? कैसे?

उत्तरः हाँ, जनधन के खातों में कालाधन जमा कर सफेद करने की कोशिश करने वालों के गले की फाँस बन सकता है, क्योंकि ऐसे लोग यदि पैसा वापस लेने के लिए खाताधारकों पर दबाव बनाते हैं, तो सरकार उनके खिलाफ बेनामी कानून के तहत कार्रवाई कर सकती है। वित्त मंत्रालय इस संबंध में जरूरी कदम उठा रही है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने भी कहा है कि अगर कोई व्यक्ति गरीबों के जनधन खाते में जमा धनराशि माँगने आए, तो वे प्रधानमंत्री को चिट्ठी लिखकर बता दें। वैसे पहले भी सरकार जनधन खाताधारकों को किसी व्यक्ति के जाल में फँसने के प्रति अगाह कर चुकी है। फिर भी ऐसी शिकायत मिलती है कि पुराने नोट जमा कराकर अब पैसा वापस माँगा जा रहा है, तो फिर खैर नहीं। कानून के तहत या धनराशि उस व्यक्ति की बेनामी संपत्ति मानी जाएगी और उसके खिलाफ कार्रवाई होगी।

केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड ने भी जनधन खाताधारकों से आग्रह किया है कि वे अपने बैंक खाते का दुरुपयोग न होने दें। अगर वे ऐसा करेंगे तो वे भी चोरी के मामले में फँस सकते हैं। आयकर विभाग ने उत्तरप्रदेश के वाराणसी, बिहार के आरा, प. बंगाल के मिदनापुर और कोलकाता तथा केरल के कोच्चि में जनधन के खाते में जमा हुए 1.64 करोड़ रुपए पकड़े गए हैं।

(48)प्रश्नः क्या नोटों के विमुद्रीकरण ने आर्थिक गतिविधियों को प्रभावित किया है? कैसे?

उत्तरः हाँ, नोटों के विमुद्रीकरण ने आर्थिक गतिविधियों को प्रभावित किया है, क्योंकि कई उद्योग और व्यापार मंदी की समस्या का सामना कर रहे हैं। स्वयं रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया ने जीडीपी अनुमान को 7.5 से घटाकर 7. 1 प्रतिशत कर दिया है। रिजर्व बैंक ने मुद्रास्फीति की दर 5 प्रतिशत रखी है जिससे महंगाई बढ़ने की आशंका है। नगदविहीन लेन-देन को बढ़ावा देने के लिए सरकार द्वारा कुछ रियायतें देने से लोग डिजिटल लेन-देन के लिए प्रेरित होंगे, लेकिन आबादी का बड़ा हिस्सा जो गाँवों-कस्बों में रहता है इस डिजिटल प्रणाली से अछूता है। यहाँ तक कि शहरों में रहने वाले लोग भी लेन-देन की इलेक्ट्रॉनिक प्रक्रिया से दूर हैं। वैसे भी डिजिटल भुगतान के लिए आवश्यक इन्फ्रास्ट्रक्चर पूरे देश में उपलब्ध नहीं है। सरकार को इस दिशा में तेजी से पहल करनी होगी।

आर्थिक गतिविधियों को पटरी पर लाना सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है। विमुद्रीकरण ने असंगठित क्षेत्र को बहुत अधिक प्रभावित किया है। छोटे उद्योग धंधों पर जमकर मार पड़ी है। इससे बेरोजगारी बढ़ेगी। इसलिए सरकार को रोजगार बढ़ाने के लिए निर्णायक कदम उठाने होंगे। दुनिया की आर्थिक गतिविधियाँ भी भारत को प्रभावित करेंगी। ओपेक देशों ने तेल का उत्पादन भी कम कर दिया है जिससे तेल की कीमत बढ़ने की आशंका है। सरकार को अपनी नीतियों का निर्धारण करते समय इन सब पहलुओं को ध्यान में रखना होगा।

(49)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि आधार परियोजना की बदौलत एक मूक क्रांति साकार हो रही है? आखिर कैसे?

उत्तरः हाँ, मुझे ऐसा लगता है कि आधार परियोजना की बदौलत एक मूक क्रांति साकार हो रही है, क्योंकि जब इस आधार की शुरुआत हुई थी, तब यही लगा था कि हर नागरिक के लिए जारी किए जा रहे 12 अंकों वाले एक खास नंबर से उसकी पहचान तो सुनिश्चित होगी, लेकिन इसके जरिए

पूरी व्यवस्था और अर्थव्यवस्था का संचालन किया जा सकेगा, ऐसा कोई दलील गले के नीचे नहीं उतरती थी। शुरू से ही आधार को लेकर तमाम तरह की आशंकाएँ की जाती रहीं। ऐसा लगता था कि अरबों की लागतवाली यह परियोजना फिजूलखर्ची के सिवा कुछ नहीं है, लेकिन आज देश नगदविहीन अर्थव्यवस्था की ओर कदम बढ़ा रहा है तब यही आधार नंबर मुख्य रूप से भूमिका निभा पाएगा।

फिलहाल इस देश में करीब 83 प्रतिशत आबादी के पास आधार कार्ड है और इसके जरिए ई-वॉलेट, यूनिफाइड पेमेंट इंटरफेस और मोबाइल आधारित पॉईंट ऑफ सेल्स जैसे पा रहा है। सरकार की जो योजना है उसके तहत आपको किसी भी तरह का भुगतान लेने या देने के लिए सिर्फ आधार नंबर और फिंगर प्रिंट की जरूरत होगी। क्रेडिट और डेविट कार्ड के अलावा भारी भरकम और खर्चीले डिवाइसेज तक की जरूरत नहीं होगी। सरकार ने मोबाइल बनाने वाली कंपनियों तक से कहा है कि वे देश में जो भी मोबाइल बेचें, उनमें इरिस या अँगूठे के जरिए पहचानवाला कार्ड के जरिए लेन-देन संभव हो सके। अब तो भारतीय रेल ने भी एक अप्रैल, 2017 से वरिष्ठ नागरिकों को रेल टिकटों में रियायत के लिए आधार कार्ड को अनिवार्य कर दिया है। यानी किसी वरिष्ठ नागरिक को रेलवे की ओर से तभी रियायत दी जाएगी, जब वे आरक्षण के समय अपना आधार नंबर देंगे। आरक्षण प्रणाली के सॉफ्टवेयर में ऐसी व्यवस्था की गई है कि ऑनलाइन आधार नंबर डालने से ही यात्री का पूरा ब्योरा आ जाता है। यह ऑनलाइन और रेलवे काउंटरों से खरीदी जा रही टिकटों पर भी लागू है।

आधार की सबसे बड़ी खासियत यह है कि यह डुप्लिकेसी की आशंकाओं को नगण्य कर देता है। इसी वजह से यह सबसे पहले जनधन योजना और सार्वजनिक वितरण प्रणाली के संचालन का सफर आधार साबित हुआ। अब भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान और बोर्ड की परीक्षाओं के साथ इसे जोड़ने से कई तरह की गड़बड़ियाँ रोकना संभव हो पा रहा है। अब इसके बहुआयामी उपयोग की संभावनाएँ जिस तरह सरजमीं पर उतरती दिख रही हैं उससे तो यही लगता है कि हम आधार की बदौलत एक ऐसी मूक कांति की राह पर कदम बढ़ा रहे हैं जो हमारी पूरी की पूरी जीवन शैली बदलकर रख देगी।

(50)प्रश्नः डॉलर के मुकाबले रुपए की कीमत में लगातार गिरावट के क्या कारण हैं और इसके क्या परिणाम होंगे?

उत्तर: यह सही है कि स्थानीय और वैश्विक कारकों के प्रभाव से डॉलर के मुकाबले रुपए की कीमत में लगातार गिरावट हो रही है, मगर यह संतोष की बात है। वर्ष 2013 के बाद यह सर्वाधिक गिरावट है। सुधार के संकेतों के साथ यह भी संतोष की बात है कि भारतीय अर्थव्यवस्था की स्थिति बीते तीन सालों में काफी बेहतर हुई है।

दरअसल, डोनाल्ड ट्रंप की जीत के दस वर्षीय बांड से मिलने वाली 1.82 प्रतिशत की आय बढ़ाकर एक नवंबर, 2016 से 2.35 प्रतिशत कर दी गई। दिसंबर, 2016 में अमेरिकी फेडरल रिजर्व ब्याज दरों में भी इजाफा तकरीबन तय है। इसके तुरंत ही बाद भारत तथा अन्य उभरती अर्थव्यवस्थाओं से 'पूँजी पलायन' प्रारंभ हो गया और विभिन्न पोर्टफोलियों में निवेश करने वाले विदेशी निवेशकों ने भारत में अपनी परिसंपत्तियों के कुछ हिस्सों से छुट्टी पा ली। एक अक्टूबर, 2016 से 23 नवंबर, 2016 तक की अवधि में उन्होंने कुल 16936 करोड़ रुपयों के शेयर बेच डाले।

इसी प्रकार दूसरे देशों की मुद्राओं में रखी गई परिसंपत्तियाँ हटाकर उनकी जगह डॉलरों में मौजूद परिसंपत्तियों की खरीदारी बढ़ी जिसके परिणामस्वरूप एक मुद्रा के तौर पर डॉलर की माँग चढ़ चली और इस माँग से निर्धारित होने वाली उसकी कीमत भी बढ़ गई। इसने डॉलर की विनिमय दर भी बढ़ा दी, जिससे दूसरे देशों की मुद्राओं की बनिस्पत डॉलर की कीमत में इजाफा आ गया। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप डॉलर के मुकाबले भारतीय रुपया कमजोर पड़ा और 24 नवंबर, 2016 को वह 68.73 रुपए प्रति डॉलर पर बंद हुआ, जो पिछले 39 महीनों के दौरान इसका सबसे निचला स्तर था।

भारतीय रुपए की इस जोरदार गिरावट के अन्य कारणों में से एक यह भी है कि विदेशी मुद्रा अनिवासी बैंक खातों में जमाराशियों के परिपक्व होकर निकासी के लिए उनके मुक्त होने को आरंभ है, जो और भी पहले सितंबर 2016 से ही शुरू हो चुका है। यह स्पष्ट है कि इनका भुगतान डॉलरों में किया जाना है, जो रुपयों के मुकाबले डॉलरों की माँग में बढ़ोतरी लाएगा। इस कारक ने भी रुपयों की गिरावट में अपनी भूमिका अदा की है।

जहाँ तक डॉलर के मुकाबले रुपयों की कीमत में लगातार गिरावट के परिणाम का सवाल है, दुनिया की अन्य उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं के

मुकाबले भारत की दशा इस लिहाज से बेहतर होने की उम्मीद है। अमेरिका में ट्रंप की विजय ने सभी तरह की ब्याजदरों में बढ़ोतरी की उम्मीदें पैदा कर दी हैं, जबकि दूसरी ओर भारत में विमुद्रीकरण ने उनमें कमी की अपेक्षाएँ खड़ी कर दी हैं। चूँकि यहाँ बैंकों में रुपए किसी न किसी रूप में जमा होते जा रहे हैं, व्यवस्था में आयी रुपयों की यह अतिरिक्त तरलता आगे ब्याजदरों में कमी लाएगी। एक विदेशी निवेशक के लिए यह एक अतिरिक्त वजह है कि वह भारतीय वित्तीय तथा शेयर बाजारों से अपने पैसे निकाल ले। अमेरिकी तथा भारतीय ऋण दरों में ये विपरीत रूझानें निकट भविष्य में भी रुपयों पर दबाव बनाए रखेगी।

रुपए के मूल्य में अत्यधिक कमी आने से भारत द्वारा चुकाए जाने वाले नि.. तथा सरकारी दोनों तरह के विदेशी ऋणों के भुगतान की लागत बढ़ जाने की वजह से उन्हें चुकाने की समय, सारणी खतरे में पड़ सकती है, क्योंकि जिसने भी यह ऋण लिया है, उसे उसके भुगतान में अब अधिक रुपए चुकाने होंगे। अतः इससे हमारे सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) पर प्रतिकूल असर पड़ सकता है।

(51)प्रश्नः क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि नोटबंदी पर सड़क से होकर संसद तक हो रही सियासत ने अभी तक विपक्ष के भ्रम और विभाजन को ही उजागर किया है?

उत्तरः हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि प्रधानमंत्री द्वारा 8 नवंबर, 2016 की आधी रात से पाँच सौ और एक हजार रुपए के नोटबंदी पर सड़क से होकर संसद तक हो रही सियासत ने विपक्ष के भ्रम और विभाजन को ही उजागर किया है। यही कारण है कि नोटबंदी के फैसले के दो सप्ताह बाद भी सरकार का रूख एक ओर जहाँ लगातार कड़ा होता जा रहा है, वहीं विपक्ष न एकजुट दिख पा रहा है और न ही अपनी रणनीति को स्पष्ट धार दे पा रहा है। दरअसल, केंद्र सरकार के इस कदम की आलोचना कर विपक्ष काले धन के पक्ष में खड़ा नहीं दिखना चाहता था, लेकिन जैसे ही उसे बैंक-एटीएम पर लंबी-लंबी कतारें नजर आने लगीं, उसने जनसाधारण की मुश्किलों व परेशानियों को मुद्दा बनाने का मन बना लिया। बेशक, जनसाधारण की मुश्किलों के प्रति राजनीतिक दलों और उसके नेताओं को संवेदनशील होना ही चाहिए, मगर सिर्फ दिखने भर के लिए नहीं। इस मुद्दे पर विपक्ष की विडंबना यही रही कि वह न तो संसद में कोई गंभीर चर्चा कर सरकार को घेर पाया और न ही जनसाधारण की मुश्किलों को कम

करने के लिए कोई सुझाव दे पाया। ममता बनर्जी और अरविंद केजरीवाल ने तो सरकार को नोटबंदी वापसी के लिए तीन दिन का अल्टीमेटम भले ही दिया हो, पर ऐसे महत्वपूर्ण फैसले वापस नहीं होते। यह सामान्य समझ रखने वाला भी समझ सकता है।

ऐसे में विपक्ष गंभीर चर्चा और व्यावहारिक सुझावों से अपनी सकारात्मक राजनीतिक पहचान बना सकता था, लेकिन यह अवसर वह चूक गया। जनसाधारण की परेशानियों पर चिंतित दिखते हुए भी विपक्ष का एकजुट न हो पाना कहीं-न-कहीं उसके अंतर्विरोधों और नेतृत्व की महत्वाकांक्षाओं को भी उजागर करता है। सच तो यह है कि विपक्ष जनसाधारण की परेशानियों पर अपनी चिंता जताकर घड़ियालू आँसू बहाना चाहता है। जनता अब उतनी बेवकूफ नहीं रह गई है जितना पक्ष या विपक्षी नेता समझते हैं।

मुझे लगता है कि जनसाधारण की परेशानियाँ कम करते हुए कालेधन की समानांतर अर्थव्यवस्था पर सरकार द्वारा निर्णायक चोट किया जाना जनसाधारण को भी पसंद है। अच्छा होता अगर इस मुद्दे पर राजनीति एकमत दिखती।

जो हो, पर मुझे तो ऐसा लगता है कि जिस देश में संतरी से लेकर मंत्री तक और ठेकेदार से लेकर नौकरशाह तक भ्रष्ट पाए जाते हों, उसमें कालेधन पर अंकुश लगाने के लिए नोटबंदी के कड़े फैसले लेना किसी क्रांति से कम नहीं। मोदी सरकार ने यह कदम उस समय उठाया है जब तकनीकी विकास ने हर व्यक्ति की एक-एक गतिविधि पर नजर रखना बेहद सहज कर दिया है। आखिर तभी तो सात दशक तक जो समाज कान में तेल डाल कर सोता रहा और जब भ्रष्टाचार पूरे समाज में आत्मसात हो गया, तब अकस्मात मोदी के नेतृत्व में केंद्र सरकार के नोटबंदी के इस कड़े फैसले पर जाति, वर्ग, धर्म, भाषा, क्षेत्र से ऊपर उठकर देश के हर वर्ग के लोग हर चौक चौराहे पर एक मत से इसकी सराहना कर रहे हैं और सभी के स्वर एक हैं कि भ्रष्टाचार की ताबूत में आखिरी कील ठोकें। विपक्ष के लोग जितनी जल्द इस चीज को समझ जाएँ उतना ही उनके लिए अच्छा होगा।

(52)प्रश्नः क्या भारतीय बैंकिंग व्यवस्था में शरीयत विंडो खोलने का प्रस्ताव खतरनाक नहीं है?

उत्तर: भारतीय रिजर्व बैंक ने अपने परंपरागत बैंकों में शरीयत के मुताबिक बैंकिंग सेवाएँ शुरू करने का प्रस्ताव रखा है, ताकि देश में धीरे-धीरे शरीयत

के अनुकूल इस्लामिक बैंकिंग लागू किया जा सके। रिजर्व बैंक की घोषणा में कहा गया है कि इस्लामिक बैंकिंग का मकसद मुस्लिम समाज को उन तबकों का वित्तीय समावेशन सुनिश्चित करना था जो धार्मिक कारणों से अब तक वित्तीय प्रणाली से बाहर है। यह लोगों की समझ से बाहर इसलिए है कि कहाँ तो एक तरफ भारत अपनी अर्थव्यवस्था को डिजिटलाइज और नकदी लेन-देन को हतोत्साहित कर स्वयं को 21वीं सदी की ओर ले जा रहा है, लेकिन दूसरी ओर वह भारतीय मुस्लिमों को मध्ययुगीन काल में जाने को प्रेरित कर रहा है जबकि दुनिया के किसी भी मुस्लिम देश में शायद ही यह व्यवहार में है।

दरअसल, 1920 में आए इस्लामिक बैंकिंग का विचार आने के बाद भी 1970 के दशक तक भी हकीकत इसलिए नहीं बन सका, क्योंकि एक तो भारत में जन्में जमात-ए-इस्लामी के अबुल अला मौहूदी और मिस्र के मुस्लिम ब्रदरहुड के हसल अल बन्ना के इस्लामिक सिद्धांत पर आधारित है। इस्लामिक आंदोलन के इन दो स्तंभों ने पश्चिम के खिलाफ जिहाद और युद्ध का प्रचार किया था। तब उन्होंने अपने राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका को भी स्वीकारा था।

मिलार्ड बर और रॉबर्ट कोलिंस ने अपनी किताब में दावा किया है कि मुस्लिम ब्रदरहुड ने पैसे के प्रबंधन के गुण सीखे जो कि उनके इस्लामिक विचारधारा को प्रचारित करने वाले विश्वव्यापी संगठनों को धन मुहैया कराने के लिए जरूरी था। यह सिद्धांत पाकिस्तान में अमेरिका समर्थित सैनिक तानाशाह जनरल जियाउलहक के सत्ता में आने के बाद व्यवहार में आया था। उन्होंने पाकिस्तान में शरीयत कानून लागू किया और सरकारी बैंकों पर इस्लामिक सिद्धांतों के अनुसार और ब्याज मुक्त व्यवस्था के तहत कामकाज करने का दबाव डाला। हालांकि दो जाने-माने मुस्लिम बैंकिंग विशेषज्ञों ने शरीयत बैंकिंग की कड़ी आलोचना की है। उनमें न्यूयॉर्क स्थित बैंक के पूर्व अध्यक्ष और सीईओ मुहम्मद सलाम ने इस प्रथा को एक ढकोसला और धोखा माना है, जबकि दूसरे तैमूर कुरान ने इसे इस्लाम के उद्देश्यों को बढ़ावा देने के लिए एक सुविधाजनक बहाना और धार्मिक अधिकारियों की जेब का अस्तर माना है।

कहा जाता है कि इस्लामिक बैंक ब्याज लगाते हैं, लेकिन इस्लाम की आड़ में उसे ढक देते हैं। इस प्रकार वे धोखा और बेईमान बैंकिंग प्रथा में लिप्त रहते हैं इसलिए कि इस्लाम सभी तरह के ब्याज पर रोक लगाता

है जबकि कुरान सूदखोरी पर रोक लगाता है, न कि ब्याज दर कानूनी या सामाजिक रूप से स्वीकार्य दर से अधिक ब्याज वसूली को सूदखोरी कहते हैं अथवा हद से अधिक ब्याज की दर को सूदखोरी की संज्ञा दी जाती है। मजहब के नाम पर बड़े पैमाने पर धोखाधड़ी और बेइमानी हो रही है, जबकि आम मुस्लिम को बताया जाता है कि मुख्यधारा के बैंक उनके लिए गैर इस्लामिक और हराम है। इस लिहाज से देखा जाए तो भारतीय बैंकिंग व्यवस्था में शरीयत विंडो खोलने का प्रस्ताव मुस्लिम तुष्टीकरण अथवा बिना सोचे-समझे किया गया है जो भारत के लिए निश्चित रूप से खतरनाक कदम कहा जाएगा।

(53)प्रश्नः क्या आपको ऐसा नहीं लगता है कि पाँच सरकारी साधारण बीमा कंपनियों में 25 प्रतिशत हिस्सेदारी कम होने से जहाँ इन कंपनियों की पूँजी के लिए सरकार पर निर्भरता घटेगी, वहीं स्वाभाविक ही प्रतिस्पर्धा बढ़ेगी?

उत्तरः हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि विगत 18 जनवरी, 2017 को हुई केंद्रीय मंत्रिमंडल की आर्थिक मामलों की समिति की बैठक में जनरल इंश्योरेंस कॉरपोरेशन, न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी, नेशनल इंश्योरेंस कंपनी, ओरएंटल इंश्योरेंस कंपनी और यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस के इन पाँच साधारण बीमा कंपनियों में सरकारी हिस्सेदारी का 25 प्रतिशत विनिवेश कम होने से जहाँ इन कंपनियों की पूँजी के लिए सरकार पर निर्भरता घटेगी, वहीं स्वाभाविक रूप से प्रतिस्पर्धा बढ़ेगी। नए शेयर जारी किए जा सकते हैं, वरना ऑफर ऑफ सेल के जरिए भी यह काम किया जा सकता है। सरकार की इस हिस्सेदारी का विनिवेश एक बार में भी किया जा सकता है और उससे अधिक बार में भी।

निश्चय ही यह प्रक्रियागत फैसले हैं और उनपर अमल भारतीय प्रतिभूति और विनियम बोर्ड तथा भारतीय बीमा नियामक एवं विकास प्राधिकरण के नियमों-प्रावधानों के तहत ही किया जाएगा। इसके लिए इन पाँचों साधारण बीमा कंपनियों की शेयर बाजार में लिस्टिंग करायी जाएगी। उल्लेखनीय है कि शेयर बाजार में लिस्टिंग के लिए अनिवार्य शर्त है कि कंपनी में सरकार की हिस्सेदारी 100 प्रतिशत नहीं, बल्कि 75 प्रतिशत हो जिसके मद्देनजर ही सरकार के ये फैसले हैं। उम्मीद की जा रही है कि इन सरकारी कंपनियों की लिस्टिंग से देश में साधारण बीमा बाजार का विस्तार भी होगा। इसलिए इसका स्वागत है।

(54)प्रश्नः आपने महालेखाकार कार्यालय में एक वरिष्ठ अधिकारी के पद पर रहकर अपने दायित्व का निर्वहण करने के बाद स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति ले ली है। इस हैसियत से क्या आपको ऐसा नहीं लगता है कि जब भारतीय रिजर्व बैंक की स्वायत्तता पर सवाल खड़ा हुआ है तो मौजूदा नियमों तथा स्थापित परंपराओं के आधार पर रिजर्व बैंक और भारत सरकार को संतुलित रवैए के साथ आगे बढ़ने की जरूरत है?

उत्तरः हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि नोटबंदी के फैसले और उसे लागू करने के तौर-तरीकों पर जारी बहस के दौर में रिजर्व बैंक की स्वायत्तता पर भी सवाल खड़ा हुआ है। इस संदर्भ में मैं आपको बता दूँ कि देश की मौद्रिक नीति तय करने का अधिकार रिजर्व बैंक को है और वित्तीय प्रबंधन का जिम्मा वित्त मंत्रालय का। ऐसे में केंद्रीय बैंक और केंद्र सरकार के बीच असहमतियाँ स्वाभाविक हैं। ऐसे में राजनीतिक खींचतान से परे अर्थव्यवस्था की बेहतरी को ध्यान में रखकर सुलझाया जाना चाहिए। मौद्रिक नीतियों पर बैंक को सरकार से राय-सलाह करनी चाहिए और सरकार को भी अंतिम निर्णय का अधिकार बैंक पर छोड़ देना चाहिए, भले ही वह कितना भी मुश्किल क्यों न हो। दुनिया के अन्य केंद्रीय बैंकों की तुलना में रिजर्व बैंक के अधिकारों का दायरा ज्यादा बड़ा है। स्वायत्तता के जरिए इस संस्था ने हमारी अर्थव्यवस्था को पटरी पर रखने और उसे गति देने में बड़ी भूमिका निभायी है जबकि भारत के नियंत्रक महालेखा परीक्षक एवं निर्वाचन आयोग की तरह रिजर्व बैंक को संवैधानिक संरक्षण नहीं है। ऐसे में मौजूदा नियमों तथा स्थापित परंपराओं के आधार पर रिजर्व बैंक और केंद्र सरकार को संतुलित रवैए के साथ आगे बढ़ने की जरूरत मैं भी महसूस करता हूँ।

(55)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि मैन्यूफैक्चरिंग से ही हमारी अर्थव्यवस्था को रफ्तार मिलेगी? आखिर कैसे?

उत्तरः हाँ, मुझे ऐसा लगता है कि मैन्युफैक्चरिंग से ही हमारी अर्थव्यवस्था को रफ्तार मिलेगी, क्योंकि नोटबंदी के बाद हमारी अर्थव्यवस्था की सुस्त चाल पर जब चौतरफा चिंताएँ जाहिर की जा रही थीं, तब वर्ष 2016-17 की तीसरी तिमाही के दौरान इंडिया मैन्युफैक्चरिंग परचेजिंग मैनेजर्स इंडेक्स (पीएमआई) के रिपोर्ट के अनुसार इस सेक्टर में लगातार वृद्धि का ट्रेंड बरकरार रखा है और इस अवधि में मैन्युफैक्चरिंग सेक्टर दर्ज की गई 8.3 फीसद की वृद्धि हमें सुकून देने वाली है।

अपनी अर्थव्यवस्था को मजबूती प्रदान करने के लिए मैन्युफैक्चरिंग

सेक्टर को लगातार प्रोत्साहित करना होगा। यह एक ऐसा सेक्टर है जहाँ न सिर्फ लाभदायी निवेश की बड़ी संभावनाएँ हैं, बल्कि रोजगार के ज्यादा से ज्यादा अवसर पैदा करने के लक्ष्य में यह मददगार है। चीन ने पिछले दो-तीन दशकों में इस सेक्टर में तेज प्रगति हासिल की और उसने भारतीय बाजार में अपनी बड़ी हिस्सेदारी कर ली। चीन के मुकाबले बढ़त हासिल करने के लिए यह जरूरी है कि हमारे उत्पादन की गुणवत्ता का पैमाना बेहतर तो हों ही, कीमतें भी चीन की वस्तुओं से ज्यादा न हों। मुकाबले में आगे निकलने के लिए हमें गुणवत्ता और कीमत दोनों पैमानों पर संतुलन साधना होगा। श्रम, संसाधन और कुशलता की कमी नहीं है हमारे पास, जरूरत केवल मोमेंटम बरकरार रखने की है।

(56)प्रश्नः बजट से अधिकतम लाभ कैसे हासिल किया जा सकता है? केंद्र सरकार के 2017-18 वर्ष के बजट को किन-किन के लिए याद किया जाएगा?

उत्तरः प्रत्येक वर्ष वित्त मंत्री बजट भाषण देते हैं जो महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि उससे वह दिशा पता चलती है कि किस ओर सरकार देश को ले जाना चाहती है, किंतु सबसे बड़ी बात यह है कि बजट की इस कवायद का नागरिक कैसे अधिकतम लाभ उठाएँ? मुझे लगता है कि सिर्फ यह देखना काफी नहीं है कि लोगों की आयकर दर कितनी बदल गई या कैसे वस्तुओं पर नई कर दरें किमतों पर प्रभाव डालेंगी? महत्वपूर्ण यह है कि सार्वजनिक धन के आने और बाहर जाने की विस्तृत योजनाओं के तहत कितना निवेश हो पाता है और कितना उससे अधिकतम रिटर्न मिल पाता है। यह रिटर्न नौकरियों, राष्ट्रीय सुरक्षा, वित्तीय प्राप्ति आदि के रूप में हो सकता है। सच तो यह है कि बुनियादी ढाँचे पर खर्च से नौकरियाँ निर्मित होती हैं और जीवन-स्तर में सुधार आता है।

बजट से अधिकतम लाभ तभी हासिल हो सकता है जब बजट में किए गए प्रावधानों से निवेशों का सामाजिक फायदा कितना मिलता है। नागरिकों को भी अपनी पसंद की योजनाओं पर निगरानी रखने के साथ ही अपने सोशल मीडिया समूह पर रिपोर्ट करना अपेक्षित होगा ताकि नागरिकों का यह योगदान सरकार को पारदर्शी, जवाबदेह और नतीजों पर केंद्रित बनाने के लिए पर्याप्त हो सके।

केंद्र सरकार की 2017-18 के बजट में विदेशी निवेश प्रोत्साहन बोर्ड को खत्म करना लाल फीताशाही हटाने की दिशा में एक कदम है और

स्पष्ट संकेत देता है कि हमें एफडीआई चाहिए तथा इसके लिए हम बहुत कुछ करने को तैयार हैं।

इस बजट में राजनीतिक दलों को नकदी के रूप में चंदा देने की सीमा 20 हजार रुपए से घटाकर 2 हजार रुपए करना और राजनीतिक चंदे के लिए ब्रांड लाना ताकि दानदाता के राजनीतिक झुकाव को छिपाकर भी लेन-देन को वैध रखा जा सके, दो साहसी उपाय हैं। किसी भी सरकार ने हाल के इतिहास में अपने ही हाथ बाँध कर अपने राजनीतिक दल के लिए नकदी की आसान राह रोकने जैसा कदम उठाया हो, ऐसा याद नहीं पड़ता। इस लिहाज से देखा जाए तो सरकार का यह कदम अप्रत्याशित है, क्योंकि ये सुधार की दिशा में उठाया गया सही कदम है।

मुझे लगता है कि 2017 का बजट उन चंद बजटों में शुमार किया जाएगा जो बुनियादी ढाँचे पर खर्च, ग्रामीण विकास एवं कृषि क्षेत्र पर पौने दो लाख से भी अधिक रुपए का प्रावधान और अन्य लोककल्याणकारी योजनाएँ आदि हासिल करने में कामयाब रहा। यह वह बजट है जो संभवत: यह संकेत देगा कि भारत आखिरकार परिपक्व और स्थिर अर्थव्यवस्था के रूप में विकसित हो रहा है। इस बजट में सबसे बड़ी बात तो यह है कि आर्थिक रूप से सबल बनने के लिए राजनीतिक सुधार की दिशा में सराहनीय कदम उठाया गया है।

(57)प्रश्न: क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि पैसे कमाने की हवस में लोग देश के खिलाफ कितने तरह के साजिश रच रहे हैं? आखिर कैसे?

उत्तर: हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि पैसे कमाने की हवस में लोग देश के खिलाफ कितने तरह की साजिश रच रहे हैं। सच मानिए समानांतर में चलने वाली अर्थव्यवस्था किसी भी देश के कारोबार को चौपट कर देती है। अमीरी और गरीबी के पाट को इतना चौड़ा कर देती है कि समाजवाद की बात बेमानी लगने लगती है। पिछले सत्तर साल से इस देश में यही होता आया है। दिल्ली से कोच्ची तक और बैंगलूरू से चंडीगढ़ तक 16 राज्यों के 11 जगहों पर तकरीबन तीन सौ फर्जी व्यापारिक ठिकानों पर विगत एक अप्रैल, 2017 को कालेधन के खिलाफ आयकर विभाग प्रवर्त्तन निदेशालय के 800 अधिकारियों एवं कर्मियों के विरूद्ध चलाए गए अभियान में जहाँ एक ओर 700 से ज्यादा शेल कंपनियों की पहचान हुई है, वहीं दूसरी ओर महाराष्ट्र की पूर्व उप मुख्यमंत्री और आंध्रप्रदेश के बड़े नेता का नाम सामने आया है। इन कंपनियों एवं नेताओं पर आरोप है कि इन्होंने नोटबंदी के दौरान बड़े

पैमाने पर कालेधन को सफेद किया है। इसके अतिरिक्त इन कंपनियों का मनी लान्ड्रिंग में भी शामिल होने का शक है।

दरअसल, सरकार तो भ्रष्ट परंपरा को बदलना चाहती है, लेकिन व्यवस्था की इच्छाशक्ति में कमी हालात को बदलने नहीं देती है। सच्चाई यह है कि कालेधन की इस व्यवस्था में सफेदपोशों की संलिप्तता इस पूरे खेल को खत्म होने नही देती। यही कारण है कि प्रवर्तन निदेशालय की इस छापेमारी में कारोबारी से ज्यादा सफेदपोशों में खलबली मची हुई है। नोटबंदी के बाद इन छापेमारी की अहिमयत ज्यादा इसलिए भी है, क्योंकि जहाँ कहीं भी बरामदगी हुई है वहाँ दस्तावेजों से अधिक नकद नोट मिले हैं। देश की अर्थव्यवस्था को नुकसान पहुँचाने के गुनहगारों को सजा देना व्यवस्था की जिम्मेदारी है, लेकिन इन्हें पहचाने रखना हमारी आपकी भी जिम्मेदारी है, क्योंकि इन फर्जी कंपनियों में किया हुआ हमारा-आपका निवेश देश को नुकसान पहुँचाएगा और हम में से किसी को भी यह गवारा नहीं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारत की वर्तमान मोदी सरकार उम्मीदों को हकीकत में बदलने की दिशा में प्रशंसनीय प्रयास कर रही है। एक अप्रैल, 2017 को कालेधन की तलाश में देशभर की तीन सौ फर्जी कंपनियों पर छापेमारी इसी दिशा में एक कोशिश थी। अब इस छापेमारी से कितना कालाधन बरामद हो पाता है यह तो समय बताएगा, पर हैरत का मसला यह है कि पैसे कमाने की हवस में लोग देश के खिलाफ कितने तरह की साजिश रच रहे हैं।

(58)प्रश्न: क्या आपको ऐसा लगता है कि जीएसटी (Goods and Sevices Tax) से बाजार की दुनिया बदलेगी? आखिर कैसे?

उत्तर: सरकार का दावा है कि जीएसटी (गुड्स एंड सर्विसेज टैक्स) के चलते आम लोगों को काफी फायदा होगा। इससे देशवासियों के बाजार की दुनिया हमेशा के लिए बदल जाएगी। मुझे भी ऐसा लगता है कि जीएसटी से बाजार की दुनिया बदलेगी, क्योंकि यह एक ऐसा टैक्स है, जो टैक्स के भारी जाल से आमजन और व्यापारियों को मुक्ति दिलाएगा।

1 जुलाई 2017 से लागू जीएसटी आने के बाद बहुत सी चीजें जहाँ सस्ती हो जाएँगी, वहीं कुछ चीजें महंगी भी हो जाएँगी, लेकिन सबसे बड़ा फायदा यह होगा कि टैक्स की पूरी व्यवस्था आसान हो जाएगी। व्यापारियों को 18 से ज्यादा करों से मिलेगी छुटकारा और पूरे देश में सिर्फ एक टैक्स जीएसटी जमा होगा।

वित्त मंत्री अरुण जेटली की अध्यक्षतावाली जीएसटी काउंसिल अबतक 1200 सामानों और 500 सेवाओं पर टैक्स की दरें तय कर चुकी है। काउंसिल ने सभी सेवाओं को 5, 12, 18और 28 प्रतिशत के टैक्स स्लैब में रखा है।

सच कहा जाए, तो एक तरह से कुल मिलाकर पूरी कर प्रणाली हर किसी के लिए आसान हो जाएगी। जो कभी दूर का सपना था, अब हकीकत है और इसका श्रेय बहुत सारे लोगों को है, जिन्होंने यह खुशनुमा नतीजा दिया है। मैं तो यहाँ तक मानता हूँ कि तानाशाही रवैए के लिए कभी-कभी आलोचना झेलने वाली वर्तमान सरकार ने धैर्य और सुनने की काबिलियत का उल्लेखनीय प्रदर्शन किया। मोदी सरकार ने एक ओर जहाँ हठी राज्यों की खुशामद की, संविधान में कष्टसाध्य संशोधन किए, वहीं दूसरी ओर जीएसटी काउंसिल में आम सहमति निर्मित की और असहमति के स्वरों को भी समायोजित किया। मुझे विश्वास है जीएसटी के रूप में यह व्यापक कर सुधार धीरे-धीरे भारतीय व्यापार के परिदृश्य को नया आकार देगा।

यूँ तो जीएसटी(गुड्स एंड सर्विस टैक्स) विश्व के 150 से भी ज्यादा देशों में लागू है, लेकिन भारत में इस कानून के 1 जुलाई, 2017 से लागू होने का महत्व इस बात से समझा जा सकता है कि ऐसा कदम उठाने वाला यह दुनिया का पहला संघीय देश है। इस नई आर्थिक व्यवस्था का सवा अरब आबादी की जिंदगी पर अच्छा-बुरा क्या असर होगा, इसका बेहतर मूल्याँकन तो बेशक आनेवाला कल करेगा, लेकिन इतना तो तय है कि यह देश की समूची अर्थव्यवस्था के लिए एक ऐतिहासिक बदलाव का क्षण है।

जीएसटी 1 जुलाई, 2017 से लागू होने के 48 घंटों में ही एक लाख फर्जी कंपनियों को बंद कर दिया गया और तीन लाख से अधिक कंपनियाँ शक के दायरे में हैं जिनमें से जाँच के बाद 37000 दिखावटी कंपनियों की पहचान कर ली गयी है और इन पर सख्त कार्रवाई की जा रही है।

(59)प्रश्न: क्या आपको ऐसा लगता है कि देश की अर्थव्यवस्था को मजबूती प्रदान करने में प्रवासी भारतीयों की भूमिका अहम रही है? कैसे?

उत्तर: हाँ, मुझे ऐसा लगता है कि देश की अर्थव्यवस्था को मजबूती प्रदान करने में प्रवासी भारतीयों की भूमिका अहम रही है, क्योंकि संयुक्त राष्ट्र के

कृषि विकास कोष द्वारा जारी की गई रिपोर्ट के मुताबिक, दुनिया भर में काम कर रहे प्रवासीयों द्वारा अपनी कमाई अपने-अपने देशों में भेजने के मामले में प्रवासी भारतीय पहले नम्बर पर हैं। प्रवासी भारतीय ने वर्ष 2016 में 62. 7 अरब डॉलर यानी 4,057 अरब रुपए की धनराशि अपने देश भेजी। ऐसी 40 प्रतिशत धन राशि देश के ग्रामीण क्षेत्रों में भेजी गई। प्रवासियों से प्राप्त धनराशि के मामले में चीन दूसरे नम्बर पर है।

दुनिया के 200 देशों में रह रहे करीब 3.12 करोड़ प्रवासी भारतीयों ने विभिन्न देशों में नई ऊँचाइयों को पाने के लिए भारी संघर्ष किया और अवसरों को खंगाला है। इन भारतीय कारोबारियों, वैज्ञानिकों, तकनीकी विशेषज्ञों, शोधकर्ताओं और उद्योगपतियों की प्रभावी भूमिका दुनिया के विभिन्न देशों की अर्थव्यवस्थाओं में सराही जा रही है। इस प्रकार प्रवासी भारतीय विकसित व विकासशील देशों के सबसे महत्वपूर्ण विकास-सहयोगी बन गए हैं। इससे पूरी दुनिया में भारत की नई पीढ़ी की श्रेष्ठता को स्वीकार्यता मिली है। दुनिया के कई राष्ट्र प्रमुखों ने अपनी अर्थव्यवस्थाओं में प्रवासी भारतीयों के योगदान का कई बार उल्लेख किया है। आईटी, कंप्यूटर, मैनेजमेंट, बैंकिंग, वित्त और कारोबार जैसे क्षेत्रों में दुनिया में भारतीय प्रवासी सबसे आगे हैं।

दरअसल, प्रवासियों या उसके धन को आकर्षित करने के लिए भारत लगातार प्रयास करता रहा है जिसके परिणामस्वरूप प्रवासी भारतीयों द्वारा अपनी कमाई को भारत भेजने में दुनिया के सभी प्रवासी लोगों से आगे बढ़कर नम्बर एक पर आने में प्रवासी भारतीय रहे हैं।

(60)प्रश्नः क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि जीएसटी कर व्यवस्था का एक बदलाव भर नहीं है, बल्कि देश की आर्थिक पुनर्रचना का एक बड़ा प्रयास भी है?

उत्तर: हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि जीएसटी कर-व्यवस्था का एक बदलाव भर नहीं है, बल्कि देश की आर्थिक पुनर्रचना का एक बड़ा प्रयास भी है, क्योंकि जीएसटी अधिक राजस्व और कम भ्रष्टाचार के तरीकों की खोज का एक नमूना भी है। जीएसटी से एक बड़ा फर्क यह जरूर पड़ेगा कि इससे 'एक देश, एक कर व्यवस्था' की अवधारणा साकार होगी। अब कम से कम यह नहीं होगा कि एक प्रदेश के लोग उसी सामान को महंगा खरीद रहे होंगे और दूसरे प्रदेश के लोग उसी सामान को सस्ता।

कर वह व्यवस्था है जिस पर हमारे सभ्यता तंत्र की इमारत खड़ी

होती है। कोई भी देश, कोई भी समाज बिना कर-व्यवस्था के न तो चल सकता है और न ही आगे बढ़ सकता है। जो कर-व्यवस्था हम अपनाने जा रहे हैं उसके लिए पिछले 19 साल से लगातार कोशिशें चल रही थीं। आखिर तभी तो भारत सरकार ने 1जुलाई, 2017 की आधी रात को जब से जीएसटी नाम्नी कर-व्यवस्था लागू की गई, संसद का एक विशेष सत्र बुलाया गया जिसमें इसे देश के महत्वपूर्ण बदलाव के तौर पर मनाया गया।

जीएसटी के लागू होने पर टैक्स चोरी पर लगभग अंकुश लग जाएगा जिसका सीधा असर देश के जीडीपी पर पड़ेगा। जीएसटी लागू होते ही केंद्र को मिलने वाली एक्साइड ड्यूटी, सर्विस टैक्स सब खत्म हो जाएँगे। राज्य सरकार द्वारा लिए जाने वाला वैट, मनोरंजन कर, लक्जरी टैक्स, लॉटरी टैक्स, एंट्री टैक्स, चुंगी आदि सभी तरह के स्टेट टैक्स आदि भी स्वत: खत्म हो जाएँगे। पहले की तुलना में कंपनियों का खर्चा और लागत कम हो जाएँगे, क्योंकि सामान एक जगह से दूसरी जगह ले जाने में कोई दिक्कत नहीं होगी। कंपनियों को अलग-अलग टैक्स ना चुकाने की वजह से उनकी लागत कम होगी लिहाजा इसका फायदा आम आदमियों को निश्चित तौर पर मिलेगा।

इसके अलावा जीएसटी के दायरे में शिक्षा, स्वास्थ्य और रेलवे को बाहर रखने का निर्णय निश्चित रूप से आम जनता के लिए काफी राहत की बात है। इससे जनसाधारण को क़म कीमत पर शिक्षा, स्वास्थ्य और रेलवे की सुविधा मिल पाएगी। इन सभी विशेषताओं के मद्देनजर जीएसटी सिर्फ एक कर-व्यवस्था ही नहीं है, बल्कि यह समूची एक आर्थिक प्रणाली है और समाज को बाह्य दबाव से विकास की ओर ठेलने वाली एक द्रुतगामी नीति है।

(61)प्रश्न: आम जनता और विशेषकर निर्धन तबके के लोगों को आर्थिक रूप से मुख्यधारा में लाने के लिए प्रधानमंत्री जनधन योजना के तहत अबतक खुले करीब 30 करोड़ बैंक खातों की क्या-क्या उपलब्धियाँ हैं?

उत्तर: आम जनता और विशेषकर निर्धन तबके के लोगों को आर्थिक रूप से मुख्यधारा में लाने के लिए प्रधानमंत्री जनधन योजना के तहत तकरीबन 30 करोड़ बैंक खाते खुल चुके हैं जिनमें से अब केवल 20 फीसद का ही जीरो बैलेंस खातों के दायरे में रह गए हैं । इसका मतलब है कि अब करोड़ों लोगों के बैंक खातों में कुछ न कुछ राशि है या फिर उन्हें सब्सिडी मिलने लगी है।

आपको मैं जानकारी दे दूँ कि जब मोदी सरकार ने जीरो बैलेंस वाले जनधन खातों की शुरुआत की थी तो तमाम लोगों ने यह कहकर इस योजना का मजाक उड़ाया था कि आखिर बिना पैसेवाले खातें खुलवाने से क्या हासिल होगा? एक तो जनधन खाते संख्या के लिहाज से 30 करोड़ खाते खुलना अपने आप में एक रिकार्ड है। हैरत नहीं कि इस योजना को वित्तीय समावेशन के लिहाज से दुनिया के सबसे बड़े अभियान के तौर पर देखा जा रहा है।

जहाँ तक जनधन योजना की उपलब्धियों का सवाल है, जनधन योजना से करोड़ों लोग न केवल बैंक खातों से ही लैस हुए हैं, बल्कि वे तमाम सरकारी योजनाओं के तहत मिलने वाली सब्सिडी के पात्र भी बन गए हैं। आम लोगों को बैंकिंग व्यवस्था से जोड़ने का एक लक्ष्य उन्हें पेंशन एवं दुर्घटना बीमा संबंधी योजनाओं से भी जोड़ना था। हर किसी के बैंक खाते से लैस होने का एक परोक्ष लाभ यह है कि व्यक्ति बचत के लिए प्रोत्साहित होता है और अपने आर्थिक भविष्य की चिंता करता है। इसी तरह वह सूदखोरों के चंगुल से फँसने से बचता भी है। वित्तीय समावेशन की बुनियाद को मजबूत करने के लिए यह आवश्यक ही है कि डिजिटल लेन-देन को बढ़ावा मिलने का सिलसिला कायम रहे। नोटबंदी के बाद डिजिटल लेन-देन में जो वृद्धि देखी गई थी उसे बरकरार रखने के लिए अभी काफी कुछ करने की जरूरत है। जबतक डिजिटल लेन-देन आम लोगों की आदत का हिस्सा नहीं बनता तबतक स्थाई बदलाव के प्रति सुनिश्चित नहीं हुआ जा सकता।

(62)प्रश्नः मोदी सरकार की आर्थिक नीतियों पर सवाल उठाने वाले भाजपा के वरिष्ठ नेता और भारत सरकार के पूर्व वित्त मंत्री यशवंत सिन्हा ने विगत 28 सितम्बर, 2017 को भारतीय अर्थव्यवस्था की धीमी गति के लिए चरमराई अर्थव्यवस्था में नोटबंदी को लागू करना और आकलन किए बिना जीएसटी थोपना को गलत बताते हुए जो भारत सरकार पर कड़ा प्रहार किया है उसे आप एक अर्थशास्त्र के विद्यार्थी होने के नाते किस रूप में आँकते हैं और क्यों?

उत्तरः विगत 28 सितंबर, 2017 को भाजपा के वरिष्ठ नेता और भारत सरकार के पूर्व वित्त मंत्री यशवंत सिन्हा ने भारतीय अर्थव्यवस्था की धीमी गति के लिए चरमराई अर्थव्यवस्था में नोटबंदी को लागू करना और आकलन किए बिना जीएसटी थोपना कहकर जो भारत सरकार पर प्रहार किया है उसे मैं पूर्वाग्रह से ग्रस्त करार देता हूँ, क्योंकि कई कारणों से वे नाराज चल रहे

थे तथा इन दिनों हाशिए पर खड़े 80 की उम्र में भी वे नौकरी के उम्मीदवार थे। कहा तो यह भी जाता है कि विश्व बैंक के शीर्ष पद पर या राजभवन में वे बैठने की इच्छा रखते हैं। इसके अतिरिक्त श्री सिन्हा ने खुद कहा है कि वे प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी से मिलने के लिए एक साल पहले वक्त माँगा था, जिसे प्रधानमंत्री ने आज तक नहीं दिया। सिर्फ इन तीन बातों को ही लिया जाए तो श्री सिन्हा के प्रहार से ऐसा लगता है कि वे पूर्वाग्रह से ग्रसित हैं। वैसे भी नरेन्द्र मोदी से नाराज चल रहे भाजपा के वरिष्ठ नेताओं की पंक्ति में वर्षो से वे खड़े भी दिखाई दे रहे थे। हालांकि प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के मंत्रिपरिषद में उनके सुपुत्र जयंत सिन्हा के शामिल किए जाने के बाद श्री सिन्हा एक-आध वर्ष तक चुप्पी लगा गए थे, किंतु इस बीच किसी पद के लालच ने उन्हें धर दबोचा और काँग्रेस नेता और पूर्व वित्तमंत्री पी. चिदम्बरम के साथ खड़े हो गए जबकि दोनों एक-दूसरे के वित्त मंत्रित्व काल पर तीखी टिप्पणी कर चुके हैं। चिदम्बरम ने एक वक्त श्री सिन्हा के लिए कहा था-वित्त मंत्री के रूप में 2002-2003 का सिन्हा का काल घातक था और इसीलिए प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी को उन्हें हटाना पड़ा था।

इस सिलसिले में जो प्रमुख बात मुझे कहनी है वह यह कि यशवंत सिन्हा सबसे पहले तो भारतीय अर्थव्यवस्था की वर्तमान धीमी गति पर अपने सुपुत्र जयंत सिन्हा, जो कभी केंद्रीय वित्त राज्यमंत्री भी रह चुके हैं और आज भी केंद्र में उड्डयन मंत्री हैं से आपस में बातचीत कर फैसला कर लें। जयंत सिन्हा ने तो अपने पिता के सवाल का जवाब देते हुए कहा है कि सरकार के कदमों से आने वाले दिनों में लाभ मिलेगा। यशवंत सिन्हा ने बेटे जयंत से बात होने के सवाल के जवाब में कहा कि 'न हुई है और न ही इस विषय पर करना चाहूँगा। मैं अपना धर्म निभा रहा हूँ। बेटा सरकार का धर्म निभा रहा है। मैंने जो सवाल उठाए हैं, वह पिता-पुत्र का नहीं है। यह अर्थव्यवस्था को लेकर है।'

भारतीय अर्थव्यवस्था को ठीक करने के लिए भारत सरकार ने जो भी आर्थिक फैसले किए हैं उसमें सरकार की इच्छाशक्ति साफ झलकती है और कालेधन पर प्रहार कर देश को आगे बढ़ाने की मंशा भी साफ दिखी है जो पहले नहीं थी। दरअसल, इधर हाल के वर्षो में भारतीय राजनीति के राजनीतिक दलों और उसके नेताओं में जो एक खास प्रवृति पनप चुकी है वह मुझे खतरनाक लग रही है, क्योंकि दलों के नेता जो एक बार किसी पद

पर बैठते हैं तो एक तो उससे वह हटना नहीं चाहते और यदि उनका कार्यकाल पूरा हो चुका है तो फिर वह टिकट के दावेदार हो जाते हैं। यानी जीवनपर्यन्त वह कोई न कोई पदधारण किए रहना चाहते हैं जैसे कि उनके अलावे और कोई उसका दावेदार नहीं है। दूसरी प्रवृत्ति यह उभर आई है कि प्राय: सभी नेता पद पर रहते हुए अपने सुपुत्रों को किसी न किसी पद पर विराजमान देखना चाहते हैं ओर दल को नेतृत्व कर रहे नेता का नवनीत-लेपन कर बेटा को किसी न किसी गद्दी पर बैठा भी देते हैं। यह प्रवृत्ति भाजपा सहित प्राय: सभी पार्टियों में देखने को मिल रही है। मुझे लगता है कि यशवंत सिन्हा भी इसी खतरनाक प्रवृत्ति के शिकार हुए हैं। पहले तो खुद मंत्री बने और जब उन्हें हटाया गया, तो नरेन्द्र मोदी सरकार में अपने सुपुत्र को बैठाया । फिर अधिक दिनों तक उनकी अपनी बेरोजगारी खलने लगी, तो लगे अनर्गल विलाप करने जैसे पटना के सांसद शत्रुध्न सिन्हा येन-केन-प्रकारेण केंद्र में मंत्री बनने के लिए कब से बेताब हैं, मगर नरेन्द्र मोदी उन्हें भी पुट्ठा पर हाथ धरने नहीं दे रहे हैं।

जहाँ तक भारतीय अर्थव्यवस्था की सेहत का सवाल है केंद्र सरकार द्वारा लागू की गई नोटबंदी और जीएसटी की खोखली आलोचना करने वाले लोगों की खोटी नियत पर सवालिया निशान लगाते हुए मैं कहना चाहूँगा कि किसी भी महत्वपूर्ण बदलाव के अच्छे-बुरे नतीजे का आकलन त्वरित रूप से करना उचित नहीं है। वस्तुत: जीएसटी और नोटबंदी देश की अर्थव्यवस्था में बदलाव लाने वाले ऐसे महत्वपूर्ण कारक हैं, जिनके प्रभावकारी परिणामों को परखने के लिए पर्याप्त समय की जरूरत है। बावजूद इसके हमें यह भी विस्मृत नहीं करना चाहिए कि काँग्रेस की गहरी जड़ों को उखाड़कर पूर्ण बहुमत के साथ अस्तित्व में आने वाले मोदी-शासन से आमजन को बहुत अपेक्षाएँ हैं। भाजपा विरोधी शक्तियाँ नोटबंदी और जीएसटी की ओट में आम जनमानस की इन्हीं अपेक्षाओं को भुनाने का काम कर रही हैं। कदाचित इसी उद्येश्य से जीएसटी लागू होने की प्रथम तिमाही में ही देश की गिरती हुई विकास दर को जीएसटी और नोटबंदी की असफलता बताकर मोदी सरकार को घेरने का असफल प्रयास किया जा रहा है। हैरत इस बात की है कि पूर्ववर्ती भारत सरकार में वित्त मंत्री रह चुके यशवंत सिन्हा भी जीएसटी की तथ्यहीन आलोचना करके मोदी विरोधियों की इस दुरभिसंधि को हवा देने का काम कर रहे हैं। इस दृष्टि से केंद्र सरकार को और अधिक चौकसी बरतने की जरूरत है।

यशवंत सिन्हा जी को यह नहीं भूलना चाहिए कि वर्तमान मोदी सरकार को विरासत में जो भी मिला उसपर उसने पिछले तीन वर्षो में अर्थव्यवस्था खड़ी की है। जीडीपी बढ़ा है, प्रति व्यक्ति आय बढ़ी है, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश ऐतिहासिक स्तर पर तकरीबन 160 अरब डॉलर तक पहुँच गया है, विदेशी मुद्रा भंडार लगभग 400 अरब डॉलर के रिकॉर्ड स्तर पर है, महंगाई कम हुई है। बरसों की विवेकहीन अराजकता के बाद सरकारी खर्च अब वित्तीय अनुशासन की राह पर है। बैंकों में क्रोनी कैपटलिज्म रूक गया है। भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ाई जारी है। व्यापार में निवेश करना और व्यापार करना आसान हुआ है। लंबी अवधि के निवेशकों में आत्मविश्वास बढ़ा है। नौकरियाँ निर्मित करने में चुनौतियाँ हैं, लेकिन पूरी दुनिया ही मैन्यूफैक्चरिंग में उथल-पुथल मचाने वाली बदलावों से गुजर रही है-ऑटोमेशन रोबोटिक्स में वृद्धि से नौकरी कम हो रही है। नौकरी बाजार में यह बदलाव बहुत गहरा और स्थाई है, इसलिए हमारी अर्थव्यवस्था को इससे निपटने के लिए अधिक समय और प्रयास की आवश्यकता है। जीडीपी में अस्थाई गिरावट की बात पर विश्व बैंक ने भी कहा है कि यह लंबे समय तक नहीं बनी रहेगी। यह जीएसटी की तैयारी में आई बाधाओं के चलते हुआ है। जीएसटी से आने वाले दिनों में भारत की अर्थव्यवस्था मजबूत बनेगी। अगर विश्व बैंक के अध्यक्ष जिम योंग किम कहते हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था में आई सुस्ती एक तात्कालिक विचलन है तो यह बात वह किसी को खुश करने के लिए नहीं कह रहे, बल्कि वास्तविकता बयान कर रहे हैं। इसलिए राजनीति के कीचड़ को साफ करते रहने की आवश्यकता है।

(63)प्रश्नः भारत दुनिया में हो रही आर्थिक वापसी और रोजगार वृद्धि से पूरी तरह बाहर क्यों है?

उत्तरः यह बात किसी से छिपी नहीं रही है कि दशकों तक भारत की आर्थिक तकदीर अन्य उभरते राष्ट्रों के साथ जुड़ी रही है, लेकिन हाल के महीनों में लगा कि उनसे नाता टूट गया है। वैश्विक अर्थव्यवस्था दुनिया भर में जीडीपी बढ़ने और रोजगार वृद्धि के साथ दशक के सबसे अच्छे साल का लुत्फ उठा रही हैं। बहुत कम अर्थव्यवस्था पीछे रह गयी है। जीडीपी वृद्धि धीमी पड़ने और बेरोजगारी बढ़ने के साथ भारत उन थोड़े से देशों में हैं, जो रफ्तार से बाहर रह गए हैं।

दुनिया के रोजगार परिदृश्य को देखें तो भारत दुनिया के तीन-चौथाई देशों के मुकाबले बुरी दशा में दिखता है। जे.पी. मार्गन शोध के अनुसार

दुनिया में बेरोजगारी दर 2008 के संकट के पहले की स्थिति यानी 5.5 की निम्न दर पर आ गई है। ब्रिटेन से लेकर जापान तक विकसित अर्थव्यवस्थाओं में बेरोजगारी दर निम्नतम है, जो कई देशों में नहीं देखी गई। उभरती अर्थव्यवस्थाओं में बेरोजगारी दर 2014 से गिर रही है और इस साल यानी 2017 में तो गहरी मंदी का सामना कर चुके रूस और ब्राजील जैसे देशों में भी लेबर मार्केट में उल्लेखनीय सुधार है। भारत में कमजोर आँकड़ों की वजह से नौकरियों की चिंता को आँकड़ों में बयान करना कठिन है, लेकिन जो भी आँकड़ा उपलब्ध है वह गंभीर स्थिति दर्शाता है।

भारतीय निर्यात खराब प्रदर्शन कर रहा है जिसकी एक संभावना तो रुपए की बढ़ती कीमत हो सकती है, क्योंकि उसी के कारण निर्यात उतना स्पर्धा के लायक नहीं रह जाता, लेकिन डॉलर की तुलना में रुपया उतना ही उठा है, जितनी उभरती अर्थवयवस्थाओं की मुद्राएँ इस साल उठी हैं। यानी करेंसी से भी यह रहस्य नहीं सुलझता। फिर ताजा रिपोर्ट से पता चलता है कि मुद्रा विनिमय दरों में हलचल की तुलना में माँग में बदलाव के प्रति व्यापार सात गुना अधिक संवेदनशील है। सबसे अच्छी व्याख्या तो हाल में उठाए गए नीतिगत फैसलों में है जिसमें पहला तो नोटबंदी का प्रयोग था। दूसरा जीएसटी जिसमें उम्मीद थी कि वह वैश्विक मानकों के स्तर पर ले आएगा, लेकिन इसकी बजाय खास भारतीय शैली की जटिलता की परतें और जुड़ गई। इन्होंने निर्यातकों सहित स्थानीय बाजार को विचलित कर दिया। भारत में खासतौर पर ऑटोमेशन के कारण लोगों के हाथों से नौकरियाँ जा रही हैं। हमेशा टेक्नोलॉजी परंपरागत नौकरियाँ खत्म करती हैं और नए उद्योगों में उन्हें निर्मित करती है। वैश्विक स्तर पर मैन्युफैक्चरिंग के लिए अधिक स्पर्धा के वातावरण और वैश्विक व्यापार में गिरावट के कारण देशों के लिए निर्यात के जरिए समृद्धि हासिल करना कठिन होता जा रहा है। मेरा ख्याल है कि भारत को विश्व को हमकदम बनाने के लिए इतना पर्याप्त हो और वह वैश्विक आर्थिक वापसी के साथ चलने का लुफ्त उठा सके।

(64)प्रश्नः कारोबारी माहौल सुगम होते जाने के इस दौर में जीएसटी इतने जटिल रूप में क्यों सामने आया और इसके लिए कौन जिम्मेदार है?

उत्तरः भाई के.एन.पी. सिन्हा जी, आपको याद होगा भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने आश्वासन देते हुए कहा था कि वह भारत को सुगम कारोबारवाले देशों की सूची में पहले 50 स्थान के भीतर लाना चाहते हैं।

एक आँकड़े के अनुसार अद्यतन रिपोर्ट यह है कि कारोबार करने की दृष्टि से सुगम वातावरणवाले देशों की सूची में भारत एक साथ 30 पायदान की छलांग लगा दी है जो एक बड़ी उपलब्धि है, मगर इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि विश्व बैंक की सूची में भारत और ऊपर नजर आए, क्योंकि विदेशी निवेश बढ़ने के साथ ही कारोबारी गतिविधियाँ भी तेज होती हुई दिखें, क्योंकि भारत उद्योगीकरण के मामले में अपनी तमाम क्षमता के बावजूद कहीं पीछे है। कायदे से भारत का कारोबारी माहौल वैसे ही दिखना चाहिए था, जैसा दक्षिण कोरिया, चीन के साथ ही अन्य एशियाई देशों में नजर आता है। इसे आप विडंबना नहीं तो और क्या कहेंगे कि कारोबारी माहौल में उल्लेखनीय सुधार दर्शाने वाली रैंकिंग एक ऐसे समय आई है जब देश का उद्योग व्यापार जगत जीएसटी के जटिल तौर-तरीकों से परेशान है। सच्चाई जो भी हो, पर आपका यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि कारोबारी माहौल सुगम होते जाने के इस दौर में जीएसटी इतने जटिल रूप में क्यों सामने आया है और इसके लिए कौन जिम्मेदार है?

भाई कृष्णनन्दन जी, जहाँ तक अर्थशास्त्र का विद्यार्थी होने के नाते मेरी समझ है नि:संदेह ये जटिल तौर-तरीके उस नौकरशाही की देन है जो उद्योग व्यापार जगत को संदेह की नजर से देखती है। संभवत: जीएसटी जटिल तौर-तरीकों का पर्याय इसलिए बना, क्योंकि नौकरशाह इस सोच के तहत काम कर रहे थे कि व्यापारियों को किसी तरह कहीं से बच निकलने का अवसर न मिले। नौकरशाह ऐसी तरकीबें निकालते रहे हैं कि लोगों को कदम-कदम पर अड़चनों का सामना करना पड़े। यह उनकी ऐसी ही तरकीबों का नतीजा है कि कथित तौर पर सरल कहे जाने वाले दस्तावेज भी कठिन ही बने रहते हैं।

इसलिए सुगम होते कारोबारी माहौल के वांछित नतीजे हासिल करने के लिए यह आवश्यक है कि सरकार नौकरशाही के रूख-रवैए में बदलाव सुनिश्चित करे। इस बदलाव की जरूरत केंद्रीय स्तर की नौकरशाही में भी है और राज्यों के स्तर की नौकरशाही में भी। कई बार कागजों पर जो चीजें आसान नजर आती हैं वे धरातल पर मुश्किल ही होती हैं। अब जब प्रधानमंत्री की प्रतिबद्धता के चलते यह स्पष्ट है कि आने वाले समय में कारोबारी माहौल में और अधिक सुधार देखने को मिल सकता है तब फिर यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि उद्योग-व्यापार जगत भी छलांग लगाता हुआ दिखे, क्योंकि रोजगार के अवसर बढ़ाने की सख्त जरूरत है। इस

जरूरत की पूर्ति तभी होगी जब छोटे-बड़े सभी तरह के उद्योगों को बल मिलेगा। दरअसल, यह बल ही कारोबारी माहौल के सुगम होने का प्रमाण साबित होगा।

(65)प्रश्नः क्या यह अच्छा नहीं होता कि विपक्ष कारोबारी माहौल पर विश्व बैंक की रपट पर बेजा सवाल उठाने की बजाय उन खामियों को दूर करने की बात करता जिनसे कारोबार जगत अभी भी दो-चार होता रहता है?

उत्तरः हाँ, सिन्हा जी, यह कितना अच्छा होता कि विपक्षी पार्टियाँ सुगम कारोबारी माहौल पर विश्व बैंक की रपट पर बेजा सवाल उठाने की बजाय उन खामियों को दूर करने की बात करतीं जिनसे कारोबार जगत अभी भी दो-चार होता रहता है। आपने देखा नहीं जब विश्व बैंक की रपट में सुगम कारोबारीवाली सूची में भारत की स्थिति अच्छी दिखाई गई तो काँग्रेस ने सुगम कारोबारी की सूची आते ही उस पर सवाल उठाने शुरू कर दिए। राहुल गाँधी ने तो यह कहकर उक्त सूची की सत्यता पर ही संदेह जता दिया कि सबको मालूम है कारोबारी सुगमता की हकीकत, लेकिन खुद को खुश रखने के लिए डॉ. जेटली का यह ख्याल अच्छा है। निःसंदेह शेरो-शायरी की नकल भी अपना असर छोड़ती है, लेकिन मुश्किल यह है कि वह कई बार बेतुकी और तत्वहीन ही होती है। यदि राहुल जी को यह लगता हो कि विश्व बैंक ने भारतीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की मदद करने के लिए या उन्हें खुश करने के ख्याल से उनके मनमाफिक सूची तैयार कर दी है, तो फिर इस शंका के समाधान के लिए उन्हें डॉ. मनमोहन सिंह से संपर्क करना चाहिए था, क्योंकि डॉ. सिंह विश्व बैंक में काम कर चुके हैं इसलिए उनसे बेहतर और कोई नहीं बता सकता कि विश्व बैंक अपना काम किस तरह करता है?

दरअसल, सच्चाई यह है कि राजनीतिक दल एक-दूसरे की राह रोकने की फिराक में ही अधिक रहते हैं। इस मामले में सभी दलों की स्थिति एक सी है। वे जिस मसले पर सत्ता में रहते समय जो कुछ कहते हैं, विपक्ष में आने पर उसी पर कुछ और कहने लगते हैं। अच्छा हो कि सभी राजनीतिक दल यह समझें कि भारतीय राजनीति में यह केकड़ा प्रवृत्ति कम से कम दिखने में ही देश का हित है। अच्छा होता विपक्ष विश्व बैंक की रपट पर सवाल उठाने की बजाय उन खामियों को दूर करने की बात करता जिनसे कारोबार जगत अभी भी दो-चार होता रहता है।

मोदी सरकार कारोबार जगत की मुश्किलों को आसान करने पर और अधिक ध्यान दे रही है। यह अच्छी बात है, क्योंकि वह जीएसटी की जटिलताओं को प्राथमिकता के आधार आसान बनाने की कोशिश में लगी है और साथ ही कारोबार शुरू करने-बढ़ाने में आने वाली अन्य अड़चनों को दूर करने की ओर अग्रसर है। आखिर तभी तो कारोबारी सुगमता में भारत की ऐतिहासिक 30 पायदान की छलांग के बाद भी सरकार ने सुस्त अर्थव्यवस्था को ठीक करने के लिए सुधारों का जो सख्त इंजेक्शन लगाया, उसपर विपक्ष ने खूब हंगामा मचाया। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि कई सुधारवादी कदमों ने त्वरित रूप से भले ही अर्थव्यवस्था को सुस्त किया है, लेकिन उसके उज्ज्वल भविष्य की नींव पड़ चुकी है।

(66)प्रश्नः पैराडाइज के दस्तावेज के मुताबिक 714 भारतीय व्यक्तियों और इकाइयों ने सरकार को बताए बगैर विदेश में निवेश किया है। क्या भारत के शीर्ष कर और वित्तीय अपराध एजेंसियों का पैनल पैराडाइज पेपर्स मामले की जाँच करेगा?

उत्तरः बरमूडा की कंपनी एपलबाई और सिंगापुर की कंपनी एशिया सिटी से लीक हुए दस्तावेजों के माध्यम से दुनिया के आर्थिक ताने-बाने की जो कहानी प्रस्तुत हुई है वह रोचक और रहस्यमयी है भले ही उसमें सबकुछ गैर-कानूनी और कालेधन से संबंधित न हो। सबसे आश्चर्यजनक बात तो यह है कि किस तरह से कंपनियाँ नियामक संस्थाओं से नजर बचाकर अपनी पूँजी को दूसरे देशों में कर्ज लेने के लिए इस्तेमाल करती हैं या उन्हें बेच देती हैं। दस्तावेज बताते हैं कि विजय माल्या ने कैसे यूनाइटेड स्प्रिट्स लिमिटेड इंडिया को 2012 में डियाजियो समूह को बेच दिया और इस तरह उन्होंने अपना धन उन जगहों पर भेजा जहाँ कर से छूट है।

पैराडाइज दस्तावेज के खुलासे में भारत के 714 लोगों के नाम हैं। ब्रिटेन की महारानी एलिजाबेथ से लेकर कनाडा के प्रधानमंत्री जस्टिन ट्रूडो और अमेरिका के राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप के करीबी लोगों के नाम के अलावे बॉलीवुड के महानायक अमिताभ बच्चन, केंद्रीय उड्डयन मंत्री जयंत सिन्हा, संजय दत्त की पत्नी मान्यता दत्त, विजय माल्या, राज्यसभा सदस्य आर. के. सिन्हा, सचिन पायलट, पी. चिदम्बरम के सुपुत्र कार्ति चिदम्बरम सहित रूसी राष्ट्रपति पुतिन के दामाद रॉश का नाम भी शामिल है।

उल्लेख्य है कि भारत ने दोहरे कराधान को रोकने के लिए कई ऐसे देशों से समझौता कर रखा है जहाँ पर कर की दरें कम हैं। इसलिए वहाँ

की कंपनियाँ अपने प्रमाण पत्र दिखाकर यहाँ कर से बच जाती हैं। दूसरी तरफ कर से पूरी तरह बचने को रोकने के लिए गार जैसा क़ानून भी है जिसे 2012 में तत्कालीन वित्त मंत्री प्रणव मुखर्जी की असफल कोशिश के बाद 2017 में कानूनी रूप दिया जा सका। इसके बावजूद इन कानूनों का कितना पालन ईमानदारी और पारदर्शिता के हित में हो रहा है और कितना कार्रवाई की चुनौती सभी सरकारों के समक्ष उपस्थित है।

पैराडाइज पेपर्स इसलिए हैरान करते हैं, क्योंकि उसमें कई ऐसी हस्तियों के नाम हैं जिनकी छवि साफ-सुथरे तरीके से काम करने की है। कम से कम राजनेताओं और साथ ही समाज सेवक छविवाली गैर-राजनीतिक हस्तियों को यह शोभा नहीं देती कि वे टैक्स बचाने के लिए उन कंपनियों की शरण में जाएँ जिनके तौर-तरीके अनैतिक दिखते हैं। इस लिहाज से बेहतर होगा कि भारत सरकार इस मामले में वैसी ही सक्रियता दिखाए जैसी उसने कालाधन को लेकर दिखाई थी। कहा तो यह जा रहा है कि दुनिया के बड़े नेता के साथ भारत के भी बड़े-बड़े नेता टैक्स चोरी की बहती गंगा में हाथ धोते नजर आने वाले लोगों पर भारत के शीर्ष कर और वित्तीय अपराध एजेंसियों का पैनल मल्टी जैसी ग्रुप समूह पाराडाइज पेपर्स मामले की जाँच करेगा। जाँच में सीबीडीटी, प्रवर्तन निदेशालय, रिजर्व बैंक तथा वित्तीय खुफिया इकाई के प्रतिनिधि शामिल हैं। इस पूरी प्रक्रिया में कालेधन का एक बड़ा भ्रष्टाचार स्पष्ट है। इसलिए उम्मीद की जानी चाहिए कि सरकार समाधान के लिए निष्पक्ष जाँच के प्रयास करेगी और इसके लिए जरूरी अंतरराष्ट्रीय सहयोग के लिए तत्पर होगी। हमारे देश जैसे लोकतंत्र में यह स्थिति सरकार पर आम लोगों का भरोसा बनाए रखने के साथ ही भ्रष्टाचार को खत्म करने के लिए भी जरूरी है।

पनामा पेपर्स लीक के बाद पैराडाइज पेपर्स खुलासा से यह स्पष्ट हो गया कि सार्वजनिक जीवन में शुचिता का पाठ पढ़ाने वाले हमारे नेता, अभिनेता और पूँजीपति व्यक्तिगत जीवन में कितने भ्रष्ट हैं जो टैक्स चोरी कर उन पैसों को फर्जी कंपनियों के जरिए विदेशों में जमा करवा देते हैं। विडंबना देखिए कि एक-दो नहीं, बल्कि इस गोरखधंधे में 714 भारतीय सार्वजनिक व्यक्ति शामिल हैं। सवाल मौजूं है कि ब्रांड एंबेसडर बने अमिताभ बच्चन जो खुद टैक्स-हैवन में गुपचुप धन रखने के आरोप में घिरे हैं वे सरकारी विज्ञापनों में लोगों को टैक्स नियमित रूप से जमा करने की सीख दे रहे हैं।

आज हमारे बीच न तो गाँधी, सुभाष, सरदार पटेल हैं और न तिलक और गोखले। आज जो कोई नेता राष्ट्र निर्माण की बात करता है तो उसके पीछे षड्यंत्र की बू आने लगती है। गरीबों के उत्थान की, नारी के सम्मान की कोई बात करता है तो लगता है वह आम देशवासियों को बेवकूफ बना रहा है।

(67)प्रश्नः नोटबंदी के एक साल बीत जाने के बाद क्या आप ऐसा महसूस करते हैं कि कारोबारी लेनदेन में पारदर्शिता का अर्थव्यवस्था पर प्रभाव पड़ा या अन्य कोई सकारात्मक बदलाव आपको नजर आया? क्या नोटबंदी को आर्थिक सुधार की एक कड़ी के रूप में स्वीकार करना श्रेयस्कर होगा?

उत्तरः कर्ण जी, आपको याद होगा आठ नवम्बर, 2016 को आठ बजे रात में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने अपने राष्ट्र के नाम संबोधन में पाँच सौ और एक हजार के नोटों का प्रचलन आधी रात से बंद करने का महत्वपूर्ण और साहसिक निर्णय की घोषणा की थी। उन्होंने कहा था कि पाँच सौ और एक हजार के नोट अब मात्र कागज के टुकड़े रह जाएँगे जिसकी वजह से देश भर में सनसनी फैल गयी, क्योंकि तीन दिन तक सभी एटीएम और दो दिन के लिए सभी बैंक बंद कर दिए गए थे। फिर एटीएम और बैंक खुलने पर लंबी-लंबी क़तारें लग गयीं और लोगों को परेशानी हुई थी, लेकिन कतार में लगने वालों को जितनी परेशानी नहीं महसूस नहीं हुई उससे अधिक विपक्षी के प्रायः सभी राजनीतिक दलों को परेशानी हुई थी। हाँ, दिहाड़ी श्रमिकों और छोटे कारोबारियों को भले ही अधिक दिक्कतें हुई थीं।

इन सबके बावजूद सबसे बड़ी बात यह थी कि कालेधन और भ्रष्टाचार के खिलाफ केंद्र सरकार के इस बड़े अभियान का जहाँ एक ओर विरोध हुआ, वहीं दूसरी ओर अधिकांश लोगों ने इसकी प्रशंसा भी की। यहाँ तक कि देश के आमजन जो राजनीति का क-ख-ग भी नहीं जानते वे सब इस अभियान के साथ होते दीखे और सुने गए, क्योंकि कालेधन की व्यवस्था पर प्रहार हुआ और हवाला कारोबार, आतंकियों और नक्सलियों के आर्थिक स्रोत टूट गए तथा नोटबंदी ने डिजिटल लेन-देन को प्रोत्साहित किया। डिजिटल भुगतान एक वर्ष में 40 से 70 प्रतिशत तक बढ़ा। मोबाइल भुगतान की प्रवृत्ति भी बढ़ी। नए एप व्यवहार में आए और नोटबंदी ने कर आधार बढ़ाने में भी योगदान किया। लगभग 57 लाख नए करदाताओं ने रिटर्न जमा किए। आयकर देने के लिए लोग प्रोत्साहित हुए। मगर सकारात्मक बदलाव

के इस नोटबंदी अभियान को विपक्षी पार्टियों ने जो राजनीतिक मुद्दा बनाया उसे कभी भी उचित नहीं कहा जा सकता। निश्चित रूप से इस नोटबंदी को आर्थिक सुधार की एक कड़ी के रूप में स्वीकार करना श्रेयस्कर होगा, क्योंकि किसी बड़े बदलाव के पूर्व संक्रमण की स्थितियाँ सहज ही आती हैं और यह गुण-दोष से पृथक नहीं है। नोटबंदी का एक साल कमोवेश ऐसा ही रहा।

सबसे बड़ी बात तो यह है कि भ्रष्टाचार के प्रति जन आक्रोश की भावना के आलोक में देखा जाए, तो स्पष्ट हो जाएगा कि लोगों ने नोटबंदी का समर्थन क्यों किया? विपक्षी पार्टियों के भरपूर उकसाने के बावजूद भारतीय जनमानस ने नोटबंदी के विरूद्ध कोई मोर्चा खोलने की बजाय केंद्र सरकार द्वारा किए गए नोटबंदी के फैसले को अपना समर्थन और सहयोग प्रदान किया। यहाँ तक कि 2017 के अर्थशास्त्र के नोबल पुरस्कार से सम्मानित अर्थशास्त्री रिचर्ड थेलर ने ट्वीट के जरिए भारत में नोटबंदी को कारगर कदम भी बताया था। नोटबंदी के बाद जीएसटी लागू करके सरकार ने अर्थव्यवस्था को स्वच्छ कां विकासोन्मुख एवं लोककल्याणकारी बनाने के अपने राज-धर्म का पालन भी किया है। आखिर तभी तो 99 प्रतिशत नोट मुद्रा प्रवाह में वापस आ गए हैं। सरकार ने सतर्कता और निगरानी के लिहाज से कई बुनियादी सुधार किए हैं। डिजिटल लेन-देन का बढ़ना इस दिशा में अगर एक संकेत है, तो आयकर विभाग की मुस्तैदी दूसरा संकेत है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि कड़े और साहसिक फैसले लेने का यह भी एक फायदा होता है कि उसकी सीख से आगे की योजनाओं के क्रियान्वयन में आसानी होती है।

(68)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि पाँच सौ और एक हजार रुपए के पुराने नोटों पर पाबंदी लगने से भ्रष्ट, रिश्वतखोरों और बेईमान लोगों की मानसिकता में बदलाव आ पाएगा?

उत्तरः नहीं, मुझे नहीं लगता कि पाँच सौ और एक हजार रुपए के पुराने नोटों पर पाबंदी लगने से भ्रष्ट रिश्वतखोरों और बेईमान लोगों की मानसिकता में बदलाव आ पाएगा। मुझे लगता है कि जबतक देश के शत-प्रतिशत लोग अपने अंदर नैतिकता, ईमानदारी और मेहनत की भावना नहीं लाते तब तक देश में भ्रष्टाचार या कालेधन जैसी बुराइयों का अंत नहीं हो पाएगा।

यही आप देखिए न, जब 8 नवंबर, 2016 की आधी रात से पाँच सौ और एक हजार रुपए के नोटों को प्रचलन से बाहर करने की घोषणा

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने की उसके दूसरे दिन से ही चाहे किराने के दुकानदार हों या सब्जी बेचने वालों की, कपड़े बेचने वाले दुकानदार हों या अन्य सामानों के, सभी दुकानदारों ने 500 रुपए के बदले 400 रुपए या 1000 रुपए के बदले 900 रुपए का समान देने लगे यानी एक सौ रुपए का कमीशन खाने लगे जबकि 31 दिसंबर 2016 तक पुराने नोटों को नए नोटों में बदलने अथवा खाते में जमा करने की घोषणा की जा चुकी थी। ऐसा भी सुनने और अखबारों में पढ़ने को मिला कि जिन कालेधन का कारोबार करने वालों के पास अकूत कालेधन के पैसे थे उन्होनें अपने सभी नौकरों को बैंकों में भेजकर नए नोट लाने को पंक्ति में लगा दिया, इसे आप भ्रष्टाचार नहीं तो और क्या कहेंगे? इसलिए लोगों में नैतिकता आए बिना कालेधन जैसी बुराईयों का अंत नहीं होगा। आपने देखा नहीं कई जगह वही लोग बार-बार नोट बदलवाने आए और कुछ असामाजिक तत्व भोले-भाले लोगों को फाँसकर अपने कालेधन को वैध बनाने की कोशिश की थी।

जब भी कोई बढ़िया काम होता है तो उसके एवज में कुर्बानी देनी पड़ती है। देश की सीमा पर जो सेना के जवान सुरक्षा के लिए तैनात हैं वे अक्सर दुश्मन देशों के घुसपैठियों की गोलियों के शिकार हो शहिद हो रहे हैं, तो देश की सुरक्षा के लिए उनकी यह कुर्बानी कही जाएगी। बिना कुर्बानी के कुछ भी संभव नहीं है। आज देश में 500 और 1000 रुपए के नोटों के बंद होने से देशवासियों को थोड़ी परेशानी हुई, मगर यदि यही परेशानी उठाने के बाद देश की अर्थव्यवस्था ठीक हो जाए, तो लोगों को बढ़-चढ़कर कुर्बानी देनी चाहिए यही नैतिकता का तकाजा है। इसमें किसी को शिकायत नहीं होनी चाहिए, लेकिन भ्रष्टाचार में लिप्त देश के बड़े-बड़े दिग्गज मोदी के गणित से इतने घबरा गए कि उन्हें नींद की गोलियाँ खानी पड़ी और कई लोगों ने तो नोट को नदी-तालाब में फेंकना शुरू कर दिया, तो कोई उसे जला दिया। घबराए लोगों के पास जितनी भी बुद्धि है उसका इस्तेमाल उन्होंने किया। अब समय ने करवट ले लिया है। ऐसी स्थिति में लोगों को अपनी मानसिकता में बदलाव लाने का प्रयास करना होगा।

दरअसल, मौजूदा भ्रष्ट तंत्र और पूरी व्यवस्था में आम जनता जो ईमानदार और कर्तव्यपरायण थी, वह भी भ्रष्टाचारियों के अधीन हो गयी थी। सरकार द्वारा पाँच सौ और एक हजार रुपए के नोटों पर पाबंदी लगाए जाने

से जो लोग भ्रष्ट तरीके से काले धन जमा कर रहे थे, वे भी लाचारी में ही सही ईमानदार लोगों की पंक्ति में खड़ा होने को मजबूर हो गये। यही नहीं, अर्थव्यवस्था के ठीक होने से जहाँ महँगाई तेजी से नीचे आएगी, वहीं इसका असर जमीन, फ्लैट और सोना-चाँदी पर भी पड़ेगा। यदि यह देश भ्रष्टाचारियों से मुक्त हो जाता है, तो देश का विकास भी सही दिशा में होगा।

(69)प्रश्नः एशिया पेसिफिक इकोनॉमिक कोओपरेशन (एपेक) की सदस्यता मिल जाने पर क्या भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए यह बूस्टर साबित होगी? एपेक की सदस्यता मिलने पर और भारत को क्या फायदे होंगे?

उत्तरः भाई पी. के. कर्ण जी, एपेक यानी एशिया पैसिफिक इकोनॉमिक कोओपरेशन का अगला समिट मनीला में होने वाला है जिसमें अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप भारत को एपेक का सदस्य बनाए जाने का प्रस्ताव रख सकते हैं और अमेरिका के अलावा जापान, ऑस्ट्रेलिया भी भारत का समर्थन कर सकते हैं।

जहाँ तक एपेक की सदस्यता मिलने पर भारत को फायदा मिलने का सवाल है। एपेक की सदस्यता मिलने पर एशिया क्षेत्र में चीन की एकतरफा नियंत्रण पर एक अच्छा संतुलन बनेगा तथा भारत की भूमिका भी अहम और निर्णायक होगी, जो किसी भी क्षेत्र विशेष में संतुलन के लिए जरूरी है। एपेक की सदस्यता भारत के लिए किसी बूस्टर से कम नहीं होगी। इससे एशियाई अर्थव्यवस्था में भारत को एक मजबूत खिलाड़ी के तौर पर खेलने का मौका मिलेगा, साथ ही भारतीय अर्थव्यवस्था भी बूस्ट होगी। अंतरराष्ट्रीय स्तर के आर्थिक समझौतों में भारत का कद बढ़ेगा। मेक इन इंडिया जैसे अहम प्रोजेक्ट में भारत की साख मजबूत होगी।

वैसे भी भारत और चीन के बीच जो प्रतिद्वद्विता चल रही है उसमें संतुलन समय की माँग की है। भारत अपने आर्थिक विकास से निकट भविष्य में चीनी अर्थव्यवस्था को पीछे छोड़ देगा, जबकि चीन इससे बौखलाहट में है। वह एशिया में अपने वर्चस्व के लिए चुनौती नहीं चाहता। ऐसे में देखना यह है कि ट्रंप का प्रयास कितना सफल होता है और चीन का क्या रवैया रहता है।

(70)प्रश्नः विभिन्न देशों को क्रेडिट रेटिंग देने वाली अमेरिकी संस्था मूडीज के क्रेडिट रेटिंग स्केल पर भारत का ऊपर चढ़ना क्या इस बात

का संकेत है कि केंद्र सरकार द्वारा आर्थिक सुधारों की दिशा में उठाए गए कदम सही राह पर हैं?

उत्तर: हाँ, विभिन्न देशों को क्रेडिट रेटिंग देने वाली अमेरिकी संस्था मूडीज के क्रेडिट रेटिंग स्केल पर भारत का ऊपर चढ़ना इस बात का संकेत है कि केंद्र सरकार द्वारा आर्थिक सुधारों की दिशा में उठाए गए कदम सही राह पर हैं, क्योंकि मूडीज का यह रेटिंग का यह सुधार भारत और भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए सकारात्मक कदम इसलिए माना जा रहा है कि इससे पूर्व 2004 में हुए सुधार में यह बीएए-3 दर्ज हुआ था जबकि 2017 में भारत की इस रेटिंग का बीएए-2 दर्जा दिया गया है।

उल्लेख्य है कि रेटिंग एजेंसी साख के मूल्याँकन का ऐसा तंत्र है, जो बड़ी-बड़ी कंपनियों या व्यापक स्तर पर उधार लेने वाले देशों की आर्थिक हैसियत आँकता है। इसी आधार पर उनकी कुल माली हालत और उधार लौटाने की क्षमता का निर्धारण भी होता है। यानी जितना अच्छा मूल्याँकन, उतनी ही बेहतर शर्तो पर कर्ज की गारंटी। मूडीज के निष्कर्ष आमतौर पर उधार लेने वाले देश की वित्तीय हालात और उसके बाजार की स्थिति के विस्तृत अध्ययन पर आधारित होते हैं, लेकिन उन देश विशेष की आर्थिक नीतियाँ, वैश्विक राजनीति में उसकी हैसियत और प्रबंधन कौशल भी इसमें बड़ी भूमिका निभाते हैं। ऐसे में माना जाना चाहिए कि बीते कुछ वर्षो में इस देश में लागू हुए आर्थिक सुधारों की इसमें खासी भूमिका रही होगी। ये सुधार आंतरिक तौर पर भले दिक्कत तलब पार गए हों, लेकिन वैश्विक स्तर पर इन्हें सकारात्मक माना गया है। ताजा उपलब्धि को भी इसी आईने में देखने की जरूरत है।

इस संदर्भ में यह कहना यथोचित होगा कि केंद्र सरकार द्वारा नोटबंदी व जीएसटी जैसे आंतरिक स्तर पर विवादित कड़े फैसलों को भी बाहरी दुनिया बड़े आर्थिक सुधार के तौर पर देख रहे हैं। स्वाभाविक तौर पर तेजी से बदलती अर्थव्यवस्था और वैश्विक कूटनीति में भारतीय सत्ता पक्ष के लिए यह इतराने का समय है, क्योंकि अब उसके लिए यह कहना और आसान हो जाएगा कि भारत में किए जा रहे आर्थिक सुधार किस तरह वैश्विक मान्यता हासिल कर रहे हैं, जो वैश्विक स्तर पर सकारात्मक नजरिया बनाने में तो सहायक होगी ही निवेश के लिहाज से महत्वपूर्ण इन्फ्रास्ट्रक्चर की बड़ी परियोजनाओं के लिए बुस्टर डोज भी साबित होगी। भारत की वृद्धि संभावनाएँ और पुख्ता होने से उत्पादकता बढ़ने तथा विदेशी

व घरेलू निवेश में तेजी आने से अंततः तेज व सतत आर्थिक वृद्धि का मार्ग प्रशस्त होगा।

(71)प्रश्नः क्या आप मानते हैं कि आर्थिक सुधारों और अन्य विसंगतियों के निवारण से भारत में निवेश के लिए उपयुक्त माहौल बनने के संकेत हैं? आखिर कैसे?

उत्तरः हाँ, मैं मानता हूँ कि आर्थिक सुधारों और अन्य विसंगतियों के निवारण से भारत में निवेश के लिए उपयुक्त माहौल बनने के संकेत हैं, क्योंकि अंतरराष्ट्रीय एजेंसी मूडीज ने भारत की रेटिंग बढ़ाकर और विश्व बैंक ने 'ईज आफ हूइंग बिजनेस रिपोर्ट' में भारत की स्थिति का स्तरोन्नयन कर इसकी पुष्टि कर दी है। विश्व के उद्यमियों के लिए यह अच्छा अवसर है कि वे भारत में खुले दिल से निवेश करें।

यही नहीं भारत की सरकार ने 21 क्षेत्रों में विदेशी निवेश के नियमों को सरल बना दिया है। 12 सौ से अधिक पुराने कानूनों को समाप्त कर कई प्रक्रियाओं को ऑनलाइन कर दिया गया है। कर प्रणाली और कालेधन के सन्दर्भ में भी महत्वपूर्ण कदम उठाए गए हैं। हाल ही में अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप की पुत्री और व्हाइट हाउस की सलाहकार इवांका ट्रंप ने विगत 27 नवम्बर, 2017 को हैदराबाद में आयोजित आठवें सालाना वैश्विक उद्यमिता सम्मेलन को संबोधित करते हुए कहा कि उद्यमिता में लैंगिक अंतर को पाटने से वैश्विक जीडीपी में दो प्रतिशत तक की अतिरिक्त वृद्धि होने के साथ-साथ नौकरियों में स्त्री-पुरुष में भेदभाव कम होने से 150 डॉलर बढ़ सकती है अर्थव्यवस्था। जिस प्रकार इवांका ट्रंप ने रुचि दिखाई है उससे भारत में अमेरिकी निवेश की संभावनाएँ बढ़ी हैं। अन्य देश भी प्रभावित होंगे। इससे औद्योगिक गतिविधियाँ और रोजगार के अवसर भी बढ़ेंगे।

(72)प्रश्नः क्या जीएसटी काउंसिल ने 29 वस्तुओं और 53 सेवाओं पर कर दरों में छूट देकर आर्थिक तरक्की को रफ्तार देने की कोशिश की है? कैसे?

उत्तरः हाँ, कृष्णनंदन जी, जीएसटी काउंसिल ने 29 वस्तुओं और 53 सेवाओं पर कर दरों में छूट देकर आर्थिक तरक्की को रफ्तार देने की कोशिश की है, क्योंकि इस छूट से छोटे एवं मंझोले उद्योग भी प्रोत्साहित होंगे। कारोबार में गैर कर योग्य वस्तुओं व सेवाओं को नहीं जोड़ा जाएगा। छूट का दायरा उद्योग, आवास, ऑटोमोबाइल और शिक्षा सभी तक फैला हुआ है और निश्चित तौर पर मध्यवर्ग को राहत मिलेगी। बायोजल, बोतलबंद पानी, हीरा,

शुगर कैंडी, टेलरिंग, चमड़े का सामान, मनोरंजन पार्क, शिक्षा और कम दाम वाले आवास को छूट पाने वालों की सूची में डाला गया है।

जीएसटी परिषद ने केंद्र राज्य के बीच सहमति बनाने के लिए जो जटिल सूत्र निर्धारित कर रखा है और जिसमें बार-बार सुधार किया जाता है उसके औचित्य को समझ पाना कठिन है। इसलिए छूट मिलने के बाद भ्रम और बढ़ जाता है। इस भ्रम को दूर करने की कोशिश की जानी चाहिए। इसके लिए टर्न ओवर की गणना से संबंधित प्रावधान में बदलाव किया जाना चाहिए। आशा है जीएसटी परिषद द्वारा कानून में संशोधन का मसौदा अगली बैठक में तैयार किया जा सकेगा।

नि:संदेह केंद्रीय आम बजट से ठीक पहले जीएसटी परिषद ने 29 वस्तुओं और 53 सेवाओं पर जीएसटी की दरें घटाकर आम लोगों को बड़ी राहत दी है। परिषद के इस कदम से हीरे, पुरानी कारें, बॉयोफ्यूल से चलने वाली बसें, सिंचाई के उपकरण और कई हस्त शिल्प उत्पाद सस्ते हो जाएँगे। साथ ही टेलरिंग और चमड़े के काम जैसी सेवाओं पर भी जीएसटी की दर घटाने का फैसला किया गया है। जीएसटी की नई दरें 25 जनवरी, 2018 से लागू हो गईं। परिषद ने जीएसटी के रिटर्न दाखिल करने की प्रक्रिया को सरल बनाकर तीन अलग-अलग मासिक रिटर्न भरने की जगह सिर्फ एक रिटर्न दाखिल करने की दिशा में कदम बढ़ा दिया है।

इसी प्रकार जीएसटी परिषद ने रिजनल एयर कनेक्टिविटी स्कीम यानी उड़ान के तहत एयरलाइनों के देय वॉयबिलिटी गैप फंडिंग को तीन साल के लिए जीएसटी से मुक्त करने का फैसला किया है। तय किराए पर छोटे शहरों के लिए हवाई सेवा संचालित करने वाली एयरलाइनों को सरकार वीजीएफ यानी वॉयबिलिटी गैप फंडिंग का भुगतान करती है। जीएसटी परिषद ने एक अन्य निर्णय में जीएसटी रिटर्न दाखिल करने पर लगने वाला विलंब शुल्क घटाकर 50 रुपए प्रतिदिन कर दिया गया है। अगर किसी कारोबारी का टर्न ओवर शून्य है तो उस पर यह फीस 25 रुपए प्रतिदिन के हिसाब से लगेगी।

♦♦♦

प्रष्टाओं का परिचय

(1)श्री अवधेश प्रसाद सिन्हा

जन्म स्थान : नालन्दा, बिहार

शिक्षा : एल.एल.बी

कार्यक्षेत्र : वरीय अधिवक्ता, उच्च न्यायालय, पटना

अधिवक्ता रिटेनर, कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार

पूर्व अधिवक्ता रिटेनर, बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड, पटना

(2)श्री कामेश्वर प्रसाद सिन्हा

जन्मतिथि : 11.04.1955

जन्म स्थान : अनन्तपुर, अमरपुरा, नौबतपुर,पटना(बिहार)

शिक्षा : एम.ए. (हिन्दी) भागलपुर विश्वविद्यालय, एल.एल.बी.(टी.एन.बी.लॉ कॉलेज, भागलपुर)

कार्यक्षेत्र : अधिवक्ता, उच्च न्यायालय, पटना एडवोकेट एसोसियेशन, नया रूम नं.-1, हाइकोर्ट, पटना

अभिरुचि : प्रतिबद्धता-सामाजिक न्याय से जुड़े साहित्य अध्ययन एवं तत्सम्बन्धी विचारों के लेखन एवं प्रकाशनार्थ कार्यकलापों से जुड़े समाज सेवा एवं सामाजिक अभिरुचि के कार्यों में बढ़ चढ़कर काम करना।

वर्तमान पता : 'सुरभि विहार' भूपतिपुर रोड, (पो.-ढेलवाँ) पटना-20
मो.-9334206700, 9470233494

(3) श्री नागेश

शिक्षा : एल.एल.बी.
कार्यक्षेत्र : अधिवक्ता, सुप्रीम कोर्ट, नई दिल्ली
अभिरुचि : नियम-अधिनियम एवं कानून
मो.9971972629

(4) श्री घनश्याम मिश्र

जन्म स्थान : सासाराम, रोहतास
शिक्षा : एल.एल.बी.
कार्यक्षेत्र : अधिवक्ता, पटियाला हाउस, दिल्ली
अभिरुचि : नियम-अधिनियम, कानून आदि

(5) श्री अखिलेश पाठक

शिक्षा : एम.ए., पटना विश्वविद्यालय, एल.एल.बी.
कार्यक्षेत्र : बिहार प्रशासनिक सेवा के पूर्व वरिष्ठ अधिकारी, बिहार
अभिरुचि : लेखन, संवाद एवं न्यायिक मामले
वर्तमान पता : अधिवक्ता, रोड नं.-8ए, राजीव नगर, पटना
दूरभाष : 0612-264862/2936399

(6) श्री सतीश कुमार

जन्म तिथि : 05.12.1980

जन्म स्थान : ग्राम+पो.-विशुनपुर पकरी, थाना-बेउर, जिला-पटना

शिक्षा : एल.एल.एम. चाणक्य राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय

कार्यक्षेत्र : एडवोकेट, उच्च न्यायालय, पटना एडवोकेट एसोसियेशन, नया रूम नं. 1 हाइकोर्ट पटना

अभिरुचि : सामाजिक न्याय से जुड़े समाज सेवा एवं सामाजिक अभिरुचि के कार्यो में बढ़-चढ़कर कार्य करना।

वर्तमान पता : मीठापुर बी एरिया, जक्कनपुर पटना-80001

दूरभाष: 9430603011, 9525998293

(7)डॉ. करण कुमार

जन्मतिथि : 04.02.1982

जन्मस्थान : ग्राम+पो.-पड़वा, थाना-जयनगर, जिला-मधुबनी पिनकोड-847226

शिक्षा : एम.बी.ए. एम.ए., एल.एल.बी., पी.एच.डी.

कार्यक्षेत्र : चेयरमैन विट्स कॉलेज, पटना
चेयरमैन वालमन ग्रुप

अभिरुचि : शिक्षा के क्षेत्र में बिहार को आगे लाना

वर्तमान पता : एफ/164, पी.सी. कॉलोनी, कंकरबाग, पटना-800020

दूरभाष : 9470708703, 9334493115

(८) आचार्य रामविलास मेहता

जन्म स्थान: ग्राम-बचनू चकला, पो.-रतनपुर
भाया-करजाईन बाजार, जिला-सुपौल (बिहार)
शिक्षा : बी.एस.सी., बी.ए., एल.एल.बी., साहित्याचार्य, व्याकरणाचार्य
कार्यक्षेत्र : आठ वर्षो तक नेपाल के विभिन्न उच्च विद्यालयों में अध्यापन, श्री जनता बौधी गंगाय प्रा. सह मध्य संस्कृत विद्यालय ढ़ेना, सुपौल
अभिरुचि : संस्कृत शिक्षा के उन्नयन हेतु निरंतर प्रयासरत, पत्रकारिता, समाज कल्याण, शैक्षणिक कार्य, वाद-विवाद एवं लेखन कार्य
भाषाई ज्ञान: संस्कृत, हिंदी, अँग्रेजी, मैथिली उर्दू एवं नेपाली
सम्मान : राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रीय पुरस्कार से 5.9.1998 को सम्मानित
स्थायी पता: ग्राम-बचनू चकला, पो.-रतनपुर
भाया-करजाईन बाजार, जिला-सुपौल (बिहार)

(९) श्री कृष्ण प्रसाद (योग प्रेमी)

जन्मतिथि : 18.01.1954
जन्मस्थान : ग्राम-जुआफर डीह, पो.-नीरपुर पंचायत बड़गाँव (नालन्दा)
शैक्षणिक योग्यता : आई.एससी
कार्यक्षेत्र: पैथोलोजी विभाग में 35 वर्षो से कार्यरत
अभिरुचि: कृषि कर्म एवं साहित्य साधना, आकाशवाणी से काव्य-पाठ
प्रकाशित रचनाएँ : जीवन तर्पण
सम्मान : अनेक साहित्यिक पुरस्कारों से सम्मानित
वर्तमान पता: पटेल सेवा नगर, रोड नं.-5, भागवत मिलन मन्दिर मेन रोड
पटना-26

(१०) श्री के. एन. पी. सिन्हा

जन्म स्थान : नवादा, जिला-नवादा, बिहार
शिक्षा : एम.ए.
कार्यक्षेत्र : पूर्व वरीय लेखा परीक्षा अधिकारी, महालेखाकार कार्यालय
अभिरुचि : लेखा एवं लेखा परीक्षा
वर्तमान पता : माईनुल हक स्टेडियम के सटे दक्षिण, राजेन्द्र नगर, पटना

(11) श्री नंदलाल सिन्हा

जन्म स्थान : ग्राम-गोपालपुर, जिला-नालंदा, बिहार
शिक्षा : एम.ए.
कार्यक्षेत्र : पूर्व प्रमंडलीय लेखा अधिकारी, बिहार
अभिरुचि : लेखा एवं लेखा परीक्षा
वर्तमान पता : अधिवक्ता, ए. जी. कॉलोनी, शेखपुरा, पटना
मो. : 9934411497

(12) श्री जयप्रकाश

जन्म स्थान : जहानाबाद, बिहार
शिक्षा : एल.एल.बी.
कार्यक्षेत्र : अधिवक्ता, उच्च न्यायालय, पटना
अभिरुचि : नियम-अधिनियम एवं कानून
वर्तमान पता : कुनकुन सिंह लेन, लोअर रोड, पटना
मो.-8271186251, 9334767648

(13) श्री रवीन्द्र प्रसाद यादव

जन्म तिथि : 04.11.1963
जन्म स्थान : ग्राम-कराय परशुराय, नालन्दा
पिता का नाम : स्व. रामेश्वर प्रसाद यादव
पत्नी : श्रीमति प्रियंका कुमारी
शिक्षा : एम.कॉम., बी.डी. कॉलेज, पटना, मगध वि. वि.
एम.ए.(श्रम एवं समाज कल्याण विभाग), ए. एन. कॉलेज
एल.एल.बी., कॉलेज ऑफ कॉमर्स, पटना, मगध वि. वि.
कार्यक्षेत्र : अधिवक्ता, उच्च न्यायालय, पटना
लेखालिपिक, बिहार राज्य प्रदूषण नियंत्रण
अभिरुचि : संगठन एवं सामाजिक कार्य
वर्तमान पता : बापूपथ, पुरन्दरपुर, पटना-800001
मो.-9431808053

(१४) श्री ध्रुव प्रसाद

जन्मतिथि : 12 फरवरी 1954
जन्मस्थान : ग्राम+पत्रा.-सोहागपुर, पो. हथुआ, जिला-गोपालगंज
शिक्षा : एम.ए(हिन्दी) पटना विश्वविद्यालय
कार्यक्षेत्र : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद के अनुसंधान विभाग में शोधकार्य
तदुपरान्त परिषद् पत्रिका (त्रैमासिकी) का संपादन
उपाध्यक्ष, राष्ट्रभाषा हिंदी प्रसार परिषद्, बजरंगीपुरी, पटना-7
संस्थापक, छत्रपति शिवाजी पुस्तकालय सह वाचनालय एवं
सरदार वल्लभभाई पुस्तकालय सह वाचनालय, गोपालगंज
अभिरुचि : संयोजक, ग्रामीण पुस्तकालय आंदोलन
वर्तमान पता : ग्राम+पत्रा.-सोहागपुर, पो. हथुआ, जिला-गोपालगंज
मो. : 9572035919

हमारी आपकी कल्पना को जाग्रत करेंगे इनके प्रश्नोत्तर

सत्य और निष्ठा के साथ अपने कर्तव्यों का निर्वाह करने वाले सिद्धेश्वर जी कानून की गुत्थियों को समझने में भी माहिर हैं, क्योंकि महालेखाकार, बिहार के कार्यालय में तीन दशक से अधिक वर्षों तक अपनी सेवा प्रदान करने के दौरान नियम-कानून की गुत्थियों को इन्होंने बखूबी सुलझाया है। सभ्यता, संस्कृति, राजनीति और कानून जैसे विषयों पर इनकी प्रतिभा उन्मुक्त रूप से उजागर हुई है उनकी इस कृति 'उम्मीद जताते न्यायिक एवं आर्थिक फैसले' में। समय-समय पर विगत तीन-चार वर्षों के दौरान देश की निचली अदालत से लेकर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा देश की आम जनता से जुड़े मुद्दों पर दिए गए फैसलों पर प्रबुद्धजनों, उच्च एवं सर्वोच्च न्यायालय के अधिवक्ताओं ने इनके समक्ष साक्षात्कार में जो प्रश्न प्रस्तुत किए गए हैं उनके उत्तर इन्होंने बड़े सलीके से दिए हैं जिससे इनके अद्यतन ज्ञान और विचार की जानकारी मिलती है।

- अवधेश प्र. सिन्हा

साहित्य और समाज के प्रति गहरी समझ का परिचायक

अपनी सृजनात्मकता के जरिए साहित्य जगत, पत्रकारिता, संगठन और राजनीति में निरंतर अपनी उपस्थिति दर्ज कराते रहने वाले सिद्धेश्वर जी एक ऐसे जीवंत साहित्यकार हैं जिनकी साहित्य और समाज के प्रति गहरी समझ है और इनके अध्ययनशील व्यक्तित्व से लोगों ने बहुत कुछ सीखा है। इनकी अबतक डेढ़ दर्जन पुस्तकें साहित्य की विभिन्न विधाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। ये अपनी कृतियों के माध्यम से वर्तमान व्यवस्था की विसंगतियों पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रश्न चिह्न लगाते रहते हैं।

- डॉ. नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम'

अक्ल की खिड़कियाँ खोलतीं कृतियाँ

सिद्धेश्वर जी अपने प्रश्नोत्तर के दौरान वर्तमान भारतीय समाज और राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार, बलात्कार, सत्ता की चाटुकारिता के प्रति जहाँ अपना आक्रोश व्यक्त करते हैं, वहीं उभरती जनशक्ति के प्रति आस्था भी। क्रूर व्यवस्था के उत्पीड़न-शोषण से समाज के विपन्न वर्ग प्रायः द्वंद्व-ग्रस्त रहते हैं। वे सोचते हैं कि हम किससे अपना संबंध जोड़ें। संघर्षशील लोक से अथवा शोषक प्रभुवर्ग से, लेकिन भीतरी द्वंद्व की तीव्रता उन्हें समाज की परिवर्तनकामी जनशक्ति से जोड़ता है।

- डॉ. रामनिवास 'मानव'

कृति में उभरा है राजनीति सहित समाज का विश्लेषणात्मक पक्ष

कोई भी व्यक्ति अनेक स्तरों पर सक्रिय रहकर सारे काम एक साथ कर सकता है, सिद्धेश्वर जी इसके ज्वलंत उदाहरण हैं, क्योंकि आप एक सम्मानित सामाजिक कार्यकर्ता तो हैं ही, साहित्य एवं पत्रकारिता में भी इनकी अभिरुचि सराहणीय है। देश के प्रबुद्धजन, साहित्यकार, पत्रकार और राजनेता बहुत सम्मान और आदरभाव से सिद्धेश्वर प्रसाद को 'सिद्धेश्वर जी' कहते हैं।

- डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार

प्रश्नोत्तर में जीवन की उत्कट-तीव्रता और अनुभव की तीव्र-तीक्ष्णता

सिद्धेश्वर जी समाज के प्रबुद्धजनों से लेकर सामाजिक एवं राजनीतिक कार्यकर्ताओं तक के दिलों की धड़कन हैं और आज भी सभा-संगोष्ठियों में मुक्त भावों के साथ सुने जाते हैं, क्योंकि वे उन्हें नेह की डोर से बाँधे हैं। समाज, साहित्य और पत्रकारिता में किया गया इनका योगदान अविस्मरणीय के साथ-ही-साथ प्रतियोगितात्मक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है।

- डॉ. लखन लाल सिंह 'आरोही'

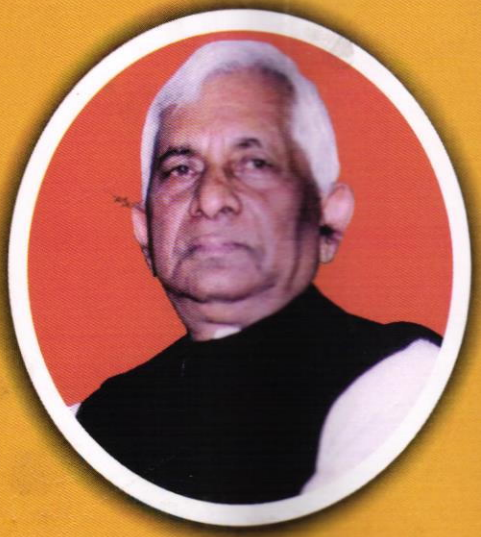

संपादक व रचनाकार

सिद्धेश्वर

प्रकाशक – सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन
दिल्ली-92